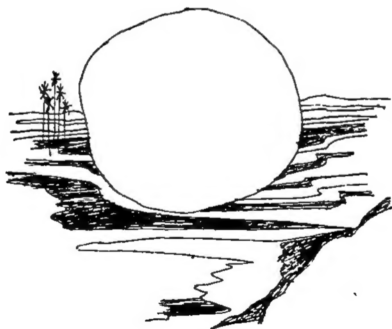
असूर्यउपनिवेश

[बहुचर्चित उड़िया उपन्यास का
हिंदी रूपांतर]

असूर्य उपनिवेश

चन्द्रशेखर रथ



नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

अनुवादक :
शंकरलाल पुरोहित

सभी देशो के
सभी युगो के
वरेण्य कृष्णद्वैपायनो को

सूरज डूबने के बाद उसके उगने की एक सभावना सारे आकाश में गूंजती रहती है। निर्वाण दीप की तरह वह बुझ जाये तो सारी दिशायें खो जाती हैं। अहोरात्र बुझ जाते हैं। वहां सूर्य अब अनुपस्थित नही, वरन असूर्य राज्य मे वह तथाकथित आलोक-पिंड बिलकुल नहीं, कभी न था।

ऐसे एक उपनिवेश का भौगोलिक ठिकाना क्या होगा? शायद वह यहां है, फिर यहां नही। कभी-कभी देखने पर अत्यंत विशाल कैलाश की चोटी की तरह सनातन मूल्य देवात्मा हिमालय का मुकुट मंडित करता है और ऐसे ही सानुमान क्षणों की रचना है 'यथारूढ' उपन्यास। फिर कभी सारे भास्वर मूल्य बुझने के बाद मानो कोई विवर दिख रहा है। उस दिग-हारे निरालोक विस्फोट के गर्भ से जन्म लेता है 'असूर्यउपनिवेश'।

दोनों सत्य दो विपरीत मेरु की तरह हैं। उनके बीच विराट वर्तुल पृथ्वी के असख्य अक्षांश दोनो ओर सकुचित, समन्वित होकर दो बिंदुओ मे समाहित हो जाते हैं। उन दोनो के बीच व्यवधान और उस व्यवधान मे छुपा संपर्क देखेंगे सुधी पाठकगण।

महाविषुव
१९९४

—लेखक

आकाश में उस दिन बेशुमार मेघ थे। इस्पात के कारखाने की भट्ठी से उबल उठती जहरीली तांबई भाप की तरह मेघ आकाश के कोने-कोने को घेरे थे। सारी दुनिया उबल रही थी, असहनीय ज्वर भोग रही थी दसों दिशाएं। मांस रुंधी जा रही थी। पेड़ डालियों और पत्तों में जब्त हुए सुलग रहे थे। निहाणी की नोक से सचमुच जैसे कोई अंदर हाड़ों तक मास की परत-दर-परत छीलकर फेंकता जा रहा है। आध आषाढ़ की उमस भरा वह दिन।

फिर भी उस दिन हवा हल्की-हल्की वह लेती थी। उन निर्जल मेघों का आस्तरण एक ओर कर वह जरा-सा चांद अपना समय जानकर उग आता कुछ समय के लिए तो क्या नुकसान होता किसी का?

जयराम अंदर के बरामदे के किनारे लालटेन तेज किये बैठे हैं। कांच पर एक मोटी पर्त कालिख जमा हो गयी है और उसके अंदर दिख रहा है थोड़ा-सा रोगी-सा जर्द प्रकाश। वह और भी मैला दिखता जब उसके पास कागज की चिट्ठियों का ढेर नया आहार पाकर फिर जग उठता। एक पुराने सूटकेस में से आधा गाडी तो पुरानी चिट्ठियां और कागजात होंगे। जयराम उनमें से एक-एक निकालते जाते और आंख फिरा लेते, डाल देते सुलगती आग पर। शायद बहुत दिनों के कागजात हैं। सूटकेस भी तो वैसे ही बहुत दिनों का है। अठारह-उन्नीस बरस पहले वह इनके घर में आयी थी। अठारह-उन्नीस साल हुए जयराम को विवाह किये।

'''शिखरेश्वर भैया ने लिखा है—"बापू के देहांत के बाद और कोई नहीं। मेरे भी और वैसे दिन नहीं। तू तो जानता है इस संसार से कुछ

प्रत्याशा न करने की बात मैंने तुझे कितनी बार कही है। यहां कोई किसी को नहीं पहचानता।···ठीक है, उसके लिए इतना रूठना क्या?" सचमुच, भैया चले गये उसी साल। चिट्ठी धीरे-से आग पर रखते समय जयराम की स्थिर आंखों के पीछे खड़े थे भैया। वैसा ही तीखा चेहरा, वही दप-दप जलती-सी दो सुजान आंखें।···यह शायद वाहिनीपति का निमंत्रण है। तीन लाख रुपयों का तिमंजिला मकान। उसमें गृह-प्रवेश के लिए दोस्तों को बुलाया है भोज पर। अमला-अफसरों का हो-हा मेला। वाहिनीपति की थैली में खाली सौ के नोट। मोटा निमंत्रण-पत्र जल जाने के बाद मुड़कर उलट गया। चकमक करते आग के संतरी उस पर तैर गये।

गौरमोहन बाबू के बेटे के विवाह का निमंत्रण-पत्र। ··डेंगुरीडीह कॉलेज का प्रथम वार्षिकोत्सव।···फिलिप्स रेडियो के नये विज्ञापन का पतला कागज। अतीत की ये सारी चिड़ियां एक-एक कर फुर्र-फुर्र करती उड़ गयीं। भक-भक कर वे सारे कागज जल गये एक-एक। फिर मोटा-सा पुलिंदा चिट्ठियों का। पीले रेशमी रिबन से बंधा है। जयराम कुछ क्षण उसे नाक के पास रखते हैं। धीरे से हटाकर अलग रख देते हैं। तरुणाई की कुछ मुलायम महक उनकी आंख और मुंह पर हल्की गुलाल बिखेर गयी। विवाह के पहले वर्ष की ये चिट्ठियां जयराम आग में विसर्जित कर नहीं पाये।···सपनों के फंदे से खुलकर उनके दोनों हाथ फिर टटोल गये उस कागज के पुलिंदे में कुछ और स्मृतियां।

एक दो इधर-उधर की चिट्ठियां।···पुरानी कवर फटी दो-चार पत्रिकाएं।···फिर हाथ चला गया—लंबे-से एक लिफाफे पर। अचानक सब एक तरह से निस्तेज, बरफ हो गया। जयराम के अंदर सारा बोझ मानो सूख गया। सचमुच जैसे वे कागज के बने हल्के-फुल्के खिलौने हैं। बहुत दिन पुरानी निर्जीव ममी कोई। खोल को एक बार देखने के बाद दुबारा देखने की न इच्छा थी और न साहस। जहर का घूंट पीकर आदमी जिस तरह शून्य की ओर ताकता ढेर हो जाता है, उसके अंदर का जल-भुन जाने तक वह इस यंत्रणा को भी नहीं समझ पाता।

माथे से उनके पसीना टपक आया। चेहरा दिख रहा था जैसे कोई झुका हुआ बरसनेवाला मेघ है। एक मिनट में शायद उझल जायेगा। पेट

के अंदर मरोड पर मरोड उठ रहे थे। समूची देह काप उठी। आंसू की बाढ छाती मे से उफन कर गले के पास उभर आयी। कोई थोडा-सा वे रो लेते तो क्या बुरा था ? जयराम रोये नही।

जिस तरह कि उस दिन के मेघ बरसे नही। अंदर और बाहर खाली रुंधी भाप जैसी उमस की यत्रणा। लवे लिफाफे को लाकर धीरे-से उसमें से कुछ खुली हुई चिट्ठिया निकाली।

विपिन बाबू पडित आदमी—लिखते हैं—"इससे बडी जीवन मे और क्या अग्नि-परीक्षा होगी, जयराम बाबू ? आपको आश्वासन देने लायक शब्द मेरे पास नही हैं, न हिम्मत। रामचंद्र को समझाने के लिए वशिष्ठ के पास भी भाषा न थी सीता के पाताल-प्रवेश के बाद।"···

गुरुकृष्ण बाबू ने अपने आश्रम से लिखा है—"ससार मे रहोगे तो पत्थर भी सहने होंगे। यह आपकी बहुत बडी परीक्षा है।"···यदुमणि, बचपन के गहरे दोस्त लिखते हैं - "आह जयी ! तुझे फिर यह सहना था ! दोषो का विचार कर दंड देने के लिए आंखवाला क्या ऊपर कोई नही ? भला तूने किसी का क्या किया था ?···तेरे सूने घर मे रानी अनसमझ बनी रो रही होगी। सात बरस की बिन मा की बेटी के लिए सचमुच तू क्या करेगा ? ओफ हे प्रभु ! अगर तुम कही हो, ऐसा क्यों करते हो ?"

···जयराम का सिर से पैर तक रोम-रोम से जो निचुड रहा था, वह शायद पसीना न था, आंसू। मगर वे दात दिखा रहे थे, मानो हस रहे हों। दस साल पुरानी चिट्ठिया है। दस बरस पुराना है यह घाव। जयराम गोद में वे ही चार-पाच चिट्ठिया बिछाये पथराये-से बैठे हैं। उनका समूचा बदन सुबक रहा था। आखिर पता नही क्या हुआ उसी तरह हसते-से दांत दिखाकर अंजुरी मे सारी चिट्ठियां भर आग पर उठा ली। वह लंबा लिफाफा भी। काले-काले कागजों के श्मशान के नीचे आग सुलग उठी। धुआं उठा। बालू के ढेर पर कोई कह रहा है—"अरे वह घी का टिन उडेल दे, नीचे वाला काठ आग पकड लेगा। ··ऊपर से कपड़ा हटा दो वरना काली परत लग जायेगी तो दाह नही हो पायेगा।" खरगोश को शायद बाघ इसी तरह कडमड चबा जाता होगा। जाडो का भोर का पहर। जयराम को हाथ पकडकर कोई ले आया शीतल अमराई होते हुए

गुजरनेवाले रास्ते पर। चिट्ठियां हुत-हुत कर जल रही थीं।

जयराम ने अचानक बायें हाथ से रिबन में बंधी चिट्ठियां खींच लीं। रिबन तोड़कर कपूर के चूरे की तरह छिड़क दिया आग पर अपने जीवन का सारा सौरभ—वे चिट्ठियां। और फिर झुककर बक्से से दोनों हाथ डालकर बंडल की बंडल चिट्ठियां निकालते और आग पर लादते गये। बक्स का पेंदा टटोला···सब कुछ फेंकते समय एक क्षण उनका हाथ थम गया।

चारों कोनों पर हल्दी दाग, बीच में एक गीत है। उनके विवाह के अवसर पर उनके साले और सालियों ने मिलकर उपहार दिया था।

उसे आग में डाल दिया। खड़े हुए। अब किधर जायें?···सारा घर अंधेरा। समूचा घर सूना है। रानी का विवाह कर वे उसी शाम लौटे हैं।

रानी सुख से रहे! रानी का घर बसे! वह सौभाग्यवती हो!

वह घर छोड़ गयी थी जिस दिन···। रानी झरझर रो रही थी और उनकी टेबुल, उनकी किताबों की थाक सजा रही थी। सब साफ कर झाड़ कर रख दे रही थी, समझ रही थी कि पिताजी के आने के बाद यह काम उनके लिए करनेवाला और कोई नहीं। उधर गाड़ी का समय हो रहा था।

बाहर रास्ते से जयराम ने आवाज लगायी—"रानी, रानी, आ बेटी, टाइम हो गया।" कुछ उत्तर न मिला तो अंदर चले आये। देखा रसोई के किवाड़ बंद कर रही है। शायद उनसे विदा मांग रही है। बहुत दिन की बात, बहुत बाद में होनेवाली बातों के साथ मिलाकर कह रही है वह. मेरी मां इसी तरह इस कोने में बैठ मुझे गोद में लिए खिलाया करती थी। कुछ दिन बाद शायद बापू अंदर आयेंगे। वे कभी इसमें नहीं आये।···धार की धार आंसू बह आये। रानी ने रसोई में सांकल लगायी न: मेरा पिताजी बुला रहे हैं। उनके चांदी के ग्लास में जरा-सी कॉफी लेकर आंसू पोंछती-पोंछती आंगन पारकर पढ़ाईवाले कमरे की देहरी के पास उन्हें पकड़ा देती है।

जयराम क्या जरा-सी कॉफी पी सके? क्या मालूम। गाड़ी का समय हो गया इसलिए शायद हड़बड़ाकर तेजी से निकल पड़े।

जयराम लालटेन लेकर आये रसोई की तरफ। रात में वे जल्दी ही खाना खाते आये हैं सारी जिंदगी।···पीछे कागज की आग जल रही है। वे बढ़ गये रसोई की ओर। कसमसाती भूख भी जाग उठी है।···पट्टे पर कतार में टिन के डिब्बे सजे हैं। प्रत्येक पर कागज से नाम लिखा है—'जीरा,' 'धनिया,' 'मिरच'।

कदम बढ़ाकर अंदर दाखिल हुए। तलुवों में सिहरन-सी लगी। शायद उन्हें अनुभव हुआ, फिर नहीं। दो-तीन लंबे कागज के पट्टों को गोंद लगाकर झुला दिया गया था। पढ़ने के लिए आगे बढ़े।

···"बापू! क्या चूल्हा जलाना जानते हो? कैसे सगाओगे? कोने में नारियल के रेशों का गोला बनाकर रखा है। थोड़ा पुआल मोड़कर रखा है। पहले उन्हें रखो, फिर उन पर छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़े रख ··।"

दूसरे कागज पर—

"उपमा बनाने के लिए सूजी, मीठे नीम के पत्ते···"।

उन्हें उपमा अच्छा लगता है। उनकी सुविधा होगी इसलिए रानी यह सब लिखकर रख गयी है।

हे-हें-कर जयराम हंस पड़े। मगर इसी से वह रुंधा रास्ता खुल गया। उस पट्टे पर सिर रखकर हू-हू फट गया बहुत दिनों का संचित कोह। उनकी आंखों में कभी किसी ने आंसू नहीं देखे। उस दिन भी कोई न था देखने के लिए। बौछार पर बौछार बरस गयी आंसू की। समूचे घर में जयराम की हिचकियां भर गयीं। उन्हें लगा जैसे बाहर भी बरस पड़े हैं मेघ। हवा और बतास में उमड़-घुमड़ कर ढेर सारी बरसा झर गयी है।···

काफी देर बाद बाहर बरामदे में आकर देखा तो बूंद भर भी पानी झरा न था। पहले की तरह समूची रात भर की अंधी कृपणता डेरा जमाये पड़ी है। तृपार्त मेघ ताकते खड़े हैं। उनके आंसुओं में कुछ, उनके पसीने से कुछ पीकर जी जायेंगे, उनके कोह से कुछ अंजुरी दिखाकर मांग लें तो उनकी रुंधी सांस कुछ आ-जा सकेगी।

भयंकर उमस। विराट एक हांडी की तरह पृथ्वी सांय-सांय कर रही है। ऊपर ढंके है एक बंद तपती तिलौड़ी। बीच में उबल रहे हैं, तप रहे

हैं, भुन रहे हैं ढेर सारे जीव ! ! ···कागज के ढेर की वह जरा-सी आग, लालटेन के काजल के अंदर रुंधी किरोसिन की आग, आकाश में तपती भाप की तरह असहनीय आग। मन में दस साल निरंतर जलती चितागिन के साथ जयराम की हांव-फांव करती भूख की आग के साथ कैसे भी मिली होगी, कहना मुश्किल है।

दो

उस रात के बाद अगली भोर।

कोई आ जाये अचानक तो उसे लगेगा कि उनकी टेबुल, किताबों की थाक और वे खुद धुआं हो गये हैं। असीम के वे सफेद-सफेद निर्जल मेघ मानो पृथ्वी की सांस रुंधने के बाद उनके घर की सीमा को भी बंद किये दे रहे हैं।

उस धुएं में जयराम के असंख्य पूर्वज तैरते फिर रहे हैं। तैर रहे हैं उनके अपने जीवन के असंख्य अतीत के क्षण।

जयराम बहुत सारी बातें याद करते बैठे हैं। उनमें कुछ तो इतनी विकराल हैं कि उन पर धुएं का खोल मढ़कर भी उधर नहीं देख पाते।

तभी कोई घर के अंदर दाखिल हुआ। बाहर खूब उजाला हो चुका है। मगर धुएं के समुद्र में उभरता-डूबता यह कौन है ? रानी क्या स्कूल से लौट आयी है ? तो फिर खड़ी क्यों है ? सदा की यह तो बेवकूफ ही रही। मगर उसे स्नेह किये बिना भी तो चारा नहीं।···रानी उनकी बिलकुल लाड़ली बेटी ठहरी। मगर···

"क्यों जयराम बाबू ! कल लौटे ?"

मगर वह तो उनका नाम लेकर कभी नहीं बुलाती।

"सोचा था कल रात ही आकर मिल जाता।"

"ऐं···इतनी मोटी आवाज तो नमिता की भी नहीं।···ओह···तो

यह कोई और है।

"कौन ?"

"मैं।"

"अच्छा, विश्वंभर बाबू ! बैठिये।"

"कल रात तो गरमी पड़ी।···मगर आप बहुत जल्दी सो गये।"

जयराम बाबू खों-खो कर खास उठे। शायद इसी ढंग से हंसे क्या !

इसके लिए वे सचमुच तैयार न थे। बस सिगरेट मुंह से निकाल कर फेंक दी।

हवा में धुआ बुझता-बुझता लग रहा था।

विश्वभर भी उनकी चुप्पी से संक्रमित होकर और कुछ नहीं कह पा रहा था। धुआ कुछ सरक गया।

बाहर के उजाले मे विश्वभर को देखकर, उनके शोकसभा जैसे चेहरे के बीच काली पट्टी जैसी मूछें देखकर जयराम बाहर का आदमी बनने की चेष्टा कर रहे थे। उस कोशिश का फल शायद उनके चेहरे पर दिख गया, वरना विश्वंभर इतना विस्मित क्यों होता ?···

सिगरेटों के इतने टुकड़े एक साथ उसने पहले कभी नहीं देखे। एक रात न सोओ तो आंखों के नीचे इतना गहरा काला दाग उभरना उसने कभी न देखा था, और न ही उदास हंसी का यह मुर्दा जुलूस कभी देखा।

"आप जयराम बाबू ! कल शायद खाना नहीं खाया।···लगता है रात सोये भी नहीं ?···कल यही सोचकर आवाज लगायी। वरना होने पर क्या कुछ ला ही देता। मगर देखा आपका कमरा तो अधेरा है। शायद थककर सो गये इसीलिए उठाया नहीं। मगर आपने कल न खाया है और न आप सोये हैं।"

जयराम सिर्फ हंस दिये।

आंखें शायद कह रही हैं—"ओह समझा।···मगर सचमुच इससे कुछ फरक पड़ता है ?···छोडो।"

"विश्वंभर बाबू यह रिक्शा बिकवा देते।"

विश्वभर समझ गया कि उन्होंने बिलकुल उसकी बात नहीं सुनी है। वरना बिना बात के अचानक यों रिक्शा की बात क्यों उठाते।

हैं, भुन रहे हैं ढेर सारे जीव ! !···कागज के ढेर की वह जरा-सी आग, लालटेन के काजल के अंदर रुंधी किरोसिन की आग, आकाश में तपती भाप की तरह असहनीय आग। मन में दस साल निरंतर जलती चिताग्नि के साथ जयराम की हांव-फांव करती भूख की आग के साथ कैसे भी मिली होगी, कहना मुश्किल है।

दो

उस रात के बाद अगली भोर।

कोई आ जाये अचानक तो उसे लगेगा कि उनकी टेबुल, किताबों की थाक और वे खुद धुआं हो गये हैं। असीम के वे सफेद-सफेद निर्जल मेघ मानो पृथ्वी की सांस रूंधने के बाद उनके घर की सीमा को भी बंद किये दे रहे हैं।

उस धुएं में जयराम के असंख्य पूर्वज तैरते फिर रहे हैं। तैर रहे हैं उनके अपने जीवन के असंख्य अतीत के क्षण।

जयराम बहुत सारी बातें याद करते बैठे हैं। उनमें कुछ तो इतनी विकराल हैं कि उन पर धुएं का खोल मढ़कर भी उधर नहीं देख पाते।

तभी कोई घर के अंदर दाखिल हुआ। बाहर खूब उजाला हो चुका है। मगर धुएं के समुद्र में उभरता-डूबता यह कौन है? रानी क्या स्कूल से लौट आयी है? तो फिर खड़ी क्यों है? सदा की यह तो बेवकूफ ही रही। मगर उसे स्नेह किये बिना भी तो चारा नहीं।···रानी उनकी बिलकुल लाड़ली बेटी ठहरी। मगर···

"क्यों जयराम बाबू ! कल लौटे?"

मगर वह तो उनका नाम लेकर कभी नहीं बुलाती।

"सोचा था कल रात ही आकर मिल जाता।"

"ऐं···इतनी मोटी आवाज तो नमिता की भी नहीं।···ओह···तो

यह कोई और है।

"कौन ?"

"मैं।"

"अच्छा, विश्वभर बाबू ! बैठिये।"

"कल रात तो गरमी पड़ी।···मगर आप बहुत जल्दी सो गये।"

जयराम बाबू खों-खो कर खास उठे। शायद इसी ढंग से हंसे क्या !

इसके लिए वे सचमुच तैयार न थे। बस सिगरेट मुंह से निकाल कर फेंक दी।

हवा में धुआं घुझता-बुझता लग रहा था।

विश्वंभर भी उनकी चुप्पी से संक्रमित होकर और कुछ नहीं कह पा रहा था। धुआं कुछ सरक गया।

बाहर के उजाले में विश्वभर को देखकर, उनके शोकसभा जैसे चेहरे के बीच काली पट्टी जैसी मूंछें देखकर जयराम बाहर का आदमी बनने की चेष्टा कर रहे थे। उस कोशिश का फल शायद उनके चेहरे पर दिख गया, वरना विश्वभर इतना विस्मित क्यों होता ?···

सिगरेटों के इतने टुकड़े एक साथ उसने पहले कभी नहीं देखे। एक रात न सोओ तो आंखों के नीचे इतना गहरा काला दाग उभरना उसने कभी न देखा था, और न ही उदास हंसी का यह मुर्दा जुलूस कभी देखा।

"आप जयराम बाबू ! कल शायद खाना नहीं खाया।···लगता है रात सोये भी नहीं ?···कल यही सोचकर आवाज लगाली। वरना होने पर क्या कुछ ला ही देता। मगर देखा आपका कमरा तो अंधेरा है। शायद थककर सो गये इसीलिए उठाया नहीं। मगर आपने न खाना है और न आप सोये हैं।"

जयराम सिर्फ हंस दिये।

आंखें शायद कह रही हैं—"ओह समझा।···मगर सचमुच इससे कुछ फरक पड़ता है ?···छोड़ो।"

"विश्वभर बाबू यह रिक्शा बिकवा देते।"

विश्वभर समझ गया कि उन्होंने बिलकुल उसकी बात नहीं सुनी है। वरना बिना बात के अचानक यों रिक्शा की बात क्यों उठाते।

"रहने दें, यह पास होने पर आपको आने-जाने की सुविधा होगी।"

"उंहूं।" एक और सिगरेट मुंह में लगाकर बोले जयराम। धुआं छोड़कर बोले—"वो तो रानी के कॉलेज जाने के लिए खरीदा गया था।"

जयराम के गंभीर स्वभाव के कारण सभी उनसे कुछ बचकर रहते। परंतु विश्वंभर साथ काम करता है, एक ही दफ्तर में, पास-पास की टेबुल पर। इस नाते उसे कुछ विशेष अधिकार प्राप्त है। विभिन्न परिस्थितियों में जयराम के चेहरे पर आनेवाले भावांतर को निकट से देख पानेवाले कुछ लोगों में से है वह।

विश्वंभर शायद और कुछ पूछता। मगर रानी के बारे में कोई प्रश्न पूछने पर वे बहुत असहिष्णु हो जाते हैं। वे दफ्तर गये होते और रानी की छुट्टी रहने पर वह कभी-कभी घर पर आ जाता। मगर बाप को जैसे भनक भी न पड़े इसकी पूरी कोशिश करता।···वैसे रानी देखने में अद्भुत सुंदर। चली जाये तो एक बार मुड़कर न देख ले, ऐसा शहर में कोई न होगा। मगर लोगों ने कभी यह सत्य समझा या नहीं···रानी सिर्फ दूर से देखने की चीज है। उसके चेहरे पर बहुत कुछ कारुण्य देखकर उसके पास पहुंचा नहीं जा सकता। वह कसकर खींचती है। पर अपना नहीं पाती। खूब तृप्त कर देती है लेकिन जला नहीं पाती। मगर है कितनी सुंदर यह रानी!···

कुछ क्षण इसी तरह बेमन से घूम-फिर विश्वंभर ने देखा कि कंधे पर बंदूक रखे दो संतरी चुपचाप स्थिर भाव से प्रतीक्षा कर रहे हैं। जयराम की दो अपलक आंखें।

विश्वंभर तनिक इतस्ततः हुए, मगर संतरी जैसे के तैसे खड़े थे, मानो आकाश के खाली मैदान की रखवाली कर रहे हैं।

विश्वंभर ने गला खंखारकर कहा—

"एक अनुरोध था!"

संतरी हिल गये। उनके कंधे पर और वह बंदूक न थी।

"क्या?"

"इस वक्त आप हमारे घर भोजन करें।"

जयराम को कुछ कौतूहल हो गया (चेहरे पर ढेर सारी लहरदार-सी

हंसी। सचमुच तो संसार समझ गया कि वह उन्हें कुछ सहानुभूति दिखाये।! वाह! बुरा क्या है!

विश्वंभर का बात को यों अनकहा करके कहने का आग्रह था। उसे जानकर जयराम शिष्टाचारवश हंस पड़े—मुंह पर ही मना करने की संभावना सी में निरुत्तर प्रतिक्षण···अब कहकर वह प्रतीक्षा करता रहा वह जरा-सी हंसी सुनने और "ओहो! बहुत-बहुत धन्यवाद विश्वंभर बाबू! आपकी बात रख पाता तो बहुत खुशी होती।"

मगर जयराम बाबू कह रहे थे—"आप क्यों मेरे लिए इतना कष्ट करेंगे?"

पहले विस्मय को पचाकर कुछ रुककर विश्वंभर ने कहा—"नहीं जी, बिलकुल नहीं। इसमें कष्ट जैसा क्या है? आपके हमारे यहां कदम पड़ें तो हमारे लिए सौभाग्य की बात है।···तो ठीक है, मैं फिर बुलाने आऊंगा।"

विश्वंभर इस घटना से एक तरह चौंका-चौंका-सा उठकर चला गया। उसे दिख रही थी सामने अनेकानेक घटनाएं। सूखी छड़ी की तरह ये जयराम बाबू। नीति-नियमों की तलवार की धार पर चलनेवाले आदमी। उनके आगे पान नहीं खाया जा सकता। "अच्छे तो हैं।" इतना पूछना भी हिम्मत की बात होगी। सबके साथ हंसी-खुशी में शामिल होकर जयराम अपने बेशुमार घावों पर मरहम आने का मौका दें, यह सबकी इच्छा है। मगर यह बात कहे कौन उन्हें। बल्कि उन्हें पीछे कर, उनसे बचकर अपने ही दायरे में रहने की विश्वंभर और उसके सहकर्मियों की आदत हो चुकी है। छोटी-सी पौध होने पर पानी डाल, ठोंगे से ढंककर उसे बढ़ाया जाता है। वयोभार से अभग्न विराट बरगद के ध्वंसावशेष देखकर तो मात्र अवाक रह जाना पड़ता है। सहानुभूति के लिए चेतना की कुंठा नहीं होती। अनेक बातें जयराम जानते हैं। अपने जमाने में मद्रास जाकर बी० ए० पास कर आये थे। बहुत बड़े आदमी बन सकते थे। यह आदमी बिलकुल झुक नहीं सकता। सह नहीं सकता। हाथ फैलाकर कुछ नहीं ले सकता, अतः वह सब कुछ खोकर सिर्फ टेक रखता आया है। दूरवालों से श्रद्धा और पासवालों से सहानुभूति की ऊपरी छाप में एक तरह की विस्मयानुभूति का पात्र होता आया है। इसी अक्खड़पन के कारण विश्वंभर भी यह

आदमी अच्छा लगता है, मगर तब बिलकुल अच्छा नहीं लगता जब ज को लेकर वह एकदम बिलकुल उत्तेजित हो जाता है, उसका तो नाम नहीं सुहाता। कितना भी मौके-बेमौके समझाता, वे पांच लोगों की प बातें सुनकर बहक जाते हैं। मगर जयंत ने कई बार उनके साथ दोस्ती हाथ बढ़ाया है, उनके घर भी बार-बार गया है, लेकिन साफ-साफ घर भगा देने के बाद से फिर कभी नहीं गया। जयंत उसका बचपन का साथी वह उसके घर आता नहीं था वह मना कर देता। सुजाता के साथ उसक खुलकर बातचीत कोई बुरी है, क्योंकि उसके पिता के घर से ही जयंत औ सुजाता की जान-पहचान है।

विश्वंभर की पलकें झुक आयीं, बाहरी जगत से। पलकों के नीचे अंधेरे में असंख्य अपरिचित सांप फन उठाकर फिर अंधेरे में दुबक गये। विश्वंभर विचलित होकर मामूली रोशनी में जाग उठा। उनकी बिना अनुमति के एक अननुगत गहरी सांस उसे समूचे हिलाकर निकल गयी। आंख टिमटिमाकर देखा, लौट आया उसका सामाजिक कर्त्तव्य-बोध, शिष्टाचार, किसी सज्जन का आमंत्रण।··· 'हूं।' जयराम भोजन पर आयेंगे। यह आदमी चुनींदा खाता है। रसूल मियां को पहले ही आगाह कर मांस का जुगाड़ करना होगा।···

विश्वंभर के जाने के बाद जयराम आश्वस्ति में देहरी के पास देखते रहे। घर-बाहर का यह अंतर उन्हें कांच की बाड़ की तरह पतला होता लगा और फिर मानो यह क्रमशः निश्चिह्न होता जा रहा है। आकाश के सूने इलाके मानो लहरें बने उनके कमरे में बढ़ते आ रहे हैं। सारे कमरे में केवल भरपूर आकाश ही आकाश है, खूब ठंडा, खूब निर्मम, खूब निःसंग। चूने और पत्थर को मिलाकर जो दीवार उन्होंने खड़ी की थी, उसके बीच अपने अधिकार का स्वाद लेकर जीने की चाह मिट्टी के कच्चे घड़े की तरह कब की ढह गयी थी। बाहर-भीतर एकाकार हो गया है। बीच की रेखा मिट गयी है!! शायद विश्वंभर खाने का इंतजाम करने गया है! हुंअ! बुरा नहीं!

मगर वे बैठे रहे ध्रुव पर कातर बक की तरह। चलती गाड़ी में घूं-घां शोर के बीच से अचानक खिसक गये हैं, तारों भरी रात के कुछ-कुछ

परिचित इलाके में। उनके आगे लंबी रेलगाड़ी धड़धड़ाती जा रही है। उनके चारों ओर रात छायी है और तारों का बहुत बड़ा ठंडा विस्तार।

इसी रेल में दिन के समय वे भी यात्री थे। बहुत से हरे-भरे स्टेशन कच्चे गुलमुहर की तरह हाथ हिलाकर उनका स्वागत कर चुके हैं। बहुत व्यग्रता, अनेक यात्री, काफी रेल-पेल की आवाज, मगर उन सबमें मटर दाने की तरह सब अलग-थलग हैं। सबको इस तरह गोल-माल बारीकी में देखने की आदत उनको शुरू से ही है। इसीलिए वे शायद किसी को पास नहीं ला सके, न किसी की कक्षा के अंदर जा सके। शिवराम ही उनका रिश्ते में भाई होगा। बहुत दिन पहले उसके पास गये थे, अकेले। एक मतही हाँ-हाँ के अलावा कोई मन छूने लायक आतरिकता तो नहीं मिली। उसने अतिथि-चर्या की, मगर किसी केंद्र में यह अनुभव नहीं हो सका कि शिवराम ने उन्हें अपनाया है। मन में वही सवाल नहीं उठा—"भैया को लिए बिना मेरा जीवन अधूरा हो जायेगा।" जयराम एक ही दिन रहे और उस एक दिन में चाय-नाश्ता भी खूब किया। मगर साफ अनुभव हो रहा था उन्हें कि वे बस बाहरी कमरेवाले मेहमान हैं। उसी गांव में बहन-बहनोई तो उसी गांव में फूफा-फूफी। बस उसी दिखावे की सामाजिकता में देखते हैं, हँसते हैं, बुलाते हैं, पिंजरे के तोते की तरह। सब जगह खाली व्यवसाय, हानि-लाभ का हिसाब, ब्याज-सूद की दरें। चले आने के बाद शायद शिवराम ने सिर पर हाथ पीटकर लंबी सांस ली होगी राहत की, महीने के हिसाब खाते में खर्च का इधर-उधर फेर-बदल किया होगा।

मगर आज विश्वंभर ने खाने पर बुलाया है।

तीन

विश्वंभर मंगराज स्वयं नहीं जानता कि उसने क्यों मायाधर राय की लड़की से शादी की। यह खबर फैल गयी कि मायाधर राय ने सिर्फ

एक क्लर्क के पल्ले जान-बूझकर अपनी लड़की बांध दी। मगर वह जानता था कि आखिर जयंत परिड़ा ही सुजाता से शादी करेगा। वह एस० पी०के बेटे को पढ़ाता, प्रायः उनके घर पर ही रहता। सुजाता के साथ अपनी घनिष्ठता की बातें विश्वंभर को कहता। कहां कोई बात न चीत, अचानक अफवाह फैली कि सुजाता की शादी होगी और सात दिन में शादी होनी है। अचानक प्रस्ताव आया कि यह शादी विश्वंभर के साथ होगी। हक्का-बक्का। इस परम सौभाग्य पर वह विश्वास ही नहीं कर पा रहा था। आखिरकार जयंत ने स्वयं आकर हाथ-पांव जोड़कर राजी किया। सात दिन की दौड़-धूप। हो-हल्ले के बीच शादी हो गयी।···सुजाता, खूबसूरत लड़की, फिर एस०पी० की बेटी। वह कान्वेंट में पढ़ी है। उसका गला जोर दार है, नाचने में भी तेज है। बड़े घर की बेटी। खूब अदब-कायदे में पली है। हाथ से खाना कैसे पकायेगी ? हाथ में जरा कलौंस लगी तो विश्वंभर की चौदह पीढ़ी को गंवार कहकर हंस देगी। वह क्या जमीन पर बैठ-कर खाना खायेगी ?···सूती साड़ी पहनेगी ?···विश्वंभर की जमींदारी वाली इज्जत कुछ देहाती किस्म की ठहरी। वहां रेशमी साड़ी का चलन है। बड़े-बड़े कांसे के थाल में खिचड़ी खायी जाती है। सरौते की मूठ में सोना खुदा होता है। आमलेट-कटलेट और छुरी-कांटा उन लोगों के लिए कुछ नया ही है। विश्वंभर अपने सहज बड़प्पन के बल पर सब चला लेता है। कुछ ऐसी उदारता से वह कई बातें सुनकर भी अनसुनी कर देता है। देखकर अनदेखी कर देता है। कहते हैं सुजाता और जयंत के बीच अंदरूनी दोस्ती अब भी बरकरार है।···जयंत चूंकि रखैल से पैदा हुआ इसलिए सुजाता की उससे शादी न हो सकी। कहते हैं विश्वंभर को उल्लू बनाकर उस पर यह विवाह लाद दिया—ताकि फिर उनका बिना किसी रुकावट के मेल-मिलाप चल सके।···जब छवि पैदा हुई तो सबमें फुस-फुसाहट फैल गयी—यह तो विश्वंभर की बेटी नहीं लगती। "···छिः दुनिया कितनी जलती है।" जयंत कहता। कोई उन्हें देख नहीं सकता। इतनी सारी अफवाहें गढ़ ली गयीं ताकि लोगों के मन की भड़ास मिट सके। शायद सच ही कहा था उसने···निपट गंवार, सरल, जमींदारी ढंग का आदमी। घर से अनाज जाता है। कुछ रुपल्ली मिल जाती हैं इसलिए

वह रसोई में चली गयी।

उधर विश्वंभर चला रसूल मियां से कुछ अच्छा मांस लाने की खातिर...।

चार

मगर जयराम बाबू उसी तरह देहरी पर बैठे देख रहे हैं, जिधर विश्वंभर की पीठ अचानक गायब हो गयी थी। इस कमरे की लीक लांघकर वे कदाचित ही कभी बाहर गये हों। शायद ही कभी कोई इसे लांघकर अंदर भी जाता हो।

"क्या जरूरत थी आज विश्वंभर मंगराज के टुकड़ों की ओर यों जीभ पसारने की? ईडियट।...कुछ रोटी के टुकड़े, कुछ औरत, कुछ छलछंद, कुछ स्नायुओं के सहारे दुनिया मापने का काम अभी तक क्या खत्म नहीं हुआ?"

जयराम की मटमैली आंखों के ऊपर सिगरेट का धुआं तैर आया।... सब कुछ पुरानी तेल की घानी में चक्कर लगाने की तरह पुनरावृत्ति। उन्हें कुछ खिला देने पर शायद समाज में थोड़ा नाम हो जाये। बात-बात में यह सब आगे-पीछे जोड़कर कहा जा सकेगा। और फिर शायद किसी दिन... उनके घर वे हो जायेंगे पेइंग गेस्ट। फिर बदनामी, कुत्सा। सब कुछ टूट-टूटकर किरच-किरच हो जायेगा। फिर नया क्षत लेकर जीवन की डोर पसर जायेगी। सारे संपर्क ढीले पड़ जायेंगे। दूर चले जायेंगे सारे विश्वंभर मंगराज और अंत में वही अविनश्वर सत्य...'अकेलापन'...सुनसान वन में एक पक्षी पंख फड़फड़ाकर शांत हो गया। चारों ओर बिखर गयी उसकी वही नीरवता।

"मुझे अफसोस है विश्वंभर बाबू! आज नहीं फिर कभी देखा जायेगा।" सोचने लगे जयराम। विश्वंभर इस बात का उत्तर देकर सचमुच जैसे

कहेगा—"देखिए वाबू ! आपके कहने पर ही तो मैं जाकर यह सब खरीद कर लाया।"—फिर तनिक हंसेंगे जयराम—"देखिए विश्वंभर वाबू, मैं लाचार हूं। कुछ खास असुविधाओं के कारण आज मैं आपकी बात नहीं रख पा रहा।"

विश्वंभर चुप होकर चला जायेगा। विश्वंभर भला आदमी ठहरा। वह बड़े घराने का है।

और उसकी स्त्री ! छि: जितने मुंह उतनी बात। यह तो होता ही है। इसमें क्या ? लोग तो बाबा आदम के जमाने से इसी तरह कहते आये हैं। किसी सुंदर नारी के लिए वही एक बात कहना तो हमारी शुरु से ही आदत रही है।

किंतु पुरुष जरायु से निकल उसी जरायु में बढ़ता और लीन होता है। नारी अपनी संतान को ही चूस-चूसकर खाती है। इन दो शब्दों को ढंककर अनेक आलतू-फालतू, आलू-प्याज, सेंज-बिस्तर और अनेक जाल-फिसाद। ढेर सारे मेघ। तभी आदमी बहुत-सी बातें नहीं समझ पाता। समझ ही नहीं पाता पुरुष का अंधा असहाय आकर्षण, नारी की लपलपाती भूख। सब कुछ ढंक जाता है एक दुर्भेद्य खोल में, चौरासी को घमंडी ढके रहती है।

पांच

…विश्वंभर चला जा रहा है रसूल मियां के चौराहे की ओर। सुबह है सुबह कई लोगों का वह चौराहा तीर्थभूमि हो जाता है। शहर के अनेक शौकीन बाबू एक-एक थैला लटकाकर वहां खड़े होते हैं। [illegible] के सामने चार-छह बकरियां खड़ी निर्विकार भाव से [illegible] जब खरीददार खाविंद बराद करते हैं, उनमें से एक [illegible] हट्टा-कट्टा नौकर अंदर ले जाता है। बाकी उसे जरा [illegible]

समझ नहीं पाती। वैसे और कौन है जो समझता है ? हम भी भला कहां समझते हैं ?

विश्वंभर प्राय: उस रास्ते नहीं जाता। बांछा ही जब-तब आकर मांस ले आता है।

हालांकि उस दिन जयराम बाबू की खातिरी में वह खुद लेने आया है, जयराम बाबू की रुचि भी तो खूब चुनींदा है ना !

"अरे विश्वंभर ! क्या हाल है ?"

सिर उठाकर देखा तो सामने जयंत परिड़ा...शायद जयंत की परीक्षा खत्म हो गयी। छुट्टियां भी समाप्त।

"आज बांछा क्या कर रहा है ? सामंतजी कैसे झोला उठाकर निकल पड़े ?"

विश्वंभर के बहुत बड़े मैदान सरीखे चेहरे पर एकमात्र क्लांत खिलाड़ी-सा दिख रहा है—छोटा-सा स्मित हास्य। वह बहुत दूर से दौड़ता आया है, शायद कहीं देर न हो जाये।

"हां, आज जयराम बाबू को खाने पर बुलाया है।"

"रानी के पिता की बात कर रहे हो ? वह अड़ियल राजी हुआ ? ठीक है। तुम शायद पहले लौटोगे...थोड़ा काम है। घर पर कह देना कि मैं आया था।

मुड़कर जयंत बायीं ओर के रास्ते से चला गया। लाख के चूरे में अचानक आग सुलग गयी, परंतु वैसे ही झप से बुझ भी गयी। विश्वंभर उसी ढंग से सिर झुकाये कुछ देर तक चलता रहा। कंधे पर लदा था मोटे-मोटे मृत पत्थरों का बेशुमार बोझ।

मगर यह जयंत परिड़ा—उसका बचपन का दोस्त। कितना अपनापन भरा, कितना आत्मीय न था ? वह अचानक आकर घर में घुस जाता तो मेघ छंट जाते। पंखुड़ी-पंखुड़ी बनकर बिछ जाता सुजाता का व्यक्तित्व। छवि-रवि आपाढ़ी वर्षा में दो हरिण शावकों की तरह उछलते-फिरते। विश्वंभर आश्वस्त हो जाता—जयंत उसके परिवार की ही तो एक शाखा है। पिछले सात वर्षों में उसके विवाहित जीवन में जितने फूल खिले हैं, सबके वृंत में जयंत है, जितनी पिकनिक, हंसी-खुशी के मौके आये सबके

केंद्र में जयंत। लोगों की बातें कानों में पड़ती तो अंदर ही अंदर फन उठ जाता, तो भी वह उदार होने की हमेशा कोशिश करता आया है।

अब वैसे और ढककर नहीं रखा जा सकेगा। जयंत शायद इस तरह सुराग लेकर दूसरे रास्ते घूमकर गया है। यहीं से लौट जाऊं तो कैसा रहे? मास कोई इतना जरूरी है? ना'''ना'''भले आदमी को बुला लिया है, फिर पीछे हटना कोई अच्छा है? यही तो रहा वह चौराहा। जल्दी से लेकर लौटने से भी चलेगा। बल्कि डेढ़ की बजाय दो किलो लेना होगा। जयंत भी तो खायेगा।'''

सुजाता अपने आईने की बिलकुल अंदर की कोठरी में झांक रही है। कुछ देर हुई वह अलमारी-सी आंखों में उस अपनी दुनिया को देख रही है। फिर मेकअप के लिए बैठ गयी। ''ऐं'''सच विवाह को सात वर्ष हो गये। कल की-सी बात तो लग रही है—कुमारी सुजाता राय मां के साथ क्लब के डिनर में जायेगी। उसी गौरव, उसी आभिजात्य के अनुपात में घंटों चल रहा है तूली थामे बारीकी से बनाव-सिंगार।

उसी अतीत से एक रेखा अंजन ले सुजाता ने भविष्य की बरौनियों पर लगाकर चिकनाया। थाक की थाक सिल्क की ब्लाउजों की तरह ताजा-ताजा मुलायम स्मृतियां। प्रत्येक को वह बड़ी सावधानी से देख लेती और फिर रख देती। किसी को किसी पर पड़कर मुड़ने-तुड़ने नहीं देती। प्रत्येक स्वतंत्र है, प्रत्येक का मूल्य अलग-अलग है।

इस आईने की बाड़ के पीछे उसने सजा रखे हैं कतार की कतार रंग-बिरंगे सीप, घोंघे और कंकड़ जो उसने समुद्र के किनारे से चुन-चुनकर रखे हैं। उसकी इच्छा है कि सबको लुभाकर रखती। जैसाकि रखा था। ढेर के ढेर आदर के फूल बिछे रहते उसके सिर से पैर तक, अंग-अंग में। फूल के सौंदर्य की तरह नारी। किसी अनिश्चित रुचिवाले आदमी की अपेक्षा या आदर के लिए उसे पथरीली दीवार के घेरे में बंद रखना निपट मूर्खता है, घोर अपमान है। मन की विलास भूमि पर वह अनेक निषिद्ध इलाकों का आश्लेष पाकर सिहर उठी, कुछ देर तक बेरोक-टोक प्रणय में बहकती रही।

अचानक आईने में दिख गया जयंत। और पीछे-पीछे विश्वभर की

आंखें।

"अरे जयंत।" वेणी खोलने की भंगिमा में सुजाता खड़ी हुई और मुड़कर देखा।

"मैंने अपने आने की खबर विश्वंभर के हाथ भेजी। फिर सोचा कि खुद आकर रिपोर्ट करना बेहतर होगा।"

खुली हंसी की धारा अचानक संकरी होती गयी और फिर मिट गयी। विश्वंभर ने कमीज खोलते हुए कहा—"आज रसूल मियां मांस नहीं काटता। शुक्रवार है।"

"अरे, कहीं और से नहीं ले आये ? जयंत आये हैं।"

"नहीं, आज मांस नहीं मिलेगा।"

जयंत विश्वंभर के पास सरक आया और बायें हाथ से दबाया—"क्यों सामंतजी नाराज हो गये ?"

तभी विश्वंभर मंगराज स्मृतियों के पुराने ऊष्म कंबल को ओढ़कर चुपचाप बाहर की ओर चला गया।

अंदर से आवाज आयी—"तुम्हीं जाओ जयंत ! कुछ मांस ले आते।"

"बाबू हैं ?"—किसी ने बाहर से आवाज दी। बाहर दरवाजे पर कालू खड़ा था। हाथ में एक टिफिन कैरियर। वह जयराम बाबू का रिक्शा चलाता है।

विश्वंभर ने पूछा—"क्यों, क्या बात है रे ?"

"बाबू ने कहा है—वे आज नहीं आ पायेंगे।"

अचानक किसी की और कुछ पूछने की इच्छा नहीं हुई। कालू इन सबको पीछे छोड़कर सड़क तक जा चुका था। शायद विश्वंभर ने सीढ़ी से दो कदम आगे जाकर धीरे से पूछा—"क्यों ?" उत्तर की उसे भी प्रतीक्षा न थी।

कालू बिना मुड़े सीधा चला गया। उसे ऊंचा सुनता है। पचास से ऊपर ही होगा।

छह

शायद तीन महीने बाद कालू झाडू बरामदे की दीवार के सहारे टिकाकर चारों ओर निगाह फिराकर खड़ा है। नीचे, ऊपर, किवाड़ों की फांक, किताबों की थाक, सारे कांच साफ हैं। कहीं मैल नहीं। हजार औरत रहे, क्या घर इस तरह साफ-सुथरा होगा? खुद जयराम चकाचक पायजामा पहने नहा-धोकर आरामचेयर पर बैठे हैं। कालू के आने से पहले ही। सारे कमरों का कूड़ा आकर आंगन में जमा हो गया था। पहले उसे साफ कर आया और फिर बाबू के आगे खड़ा हो गया। किसी ठूठ की जड़ में पानी सींचते-सींचते माली अचानक एक दिन देखता है कि ठूठ से कोई कोंपल फूट रही है। ओह! खैर, तो यह जिंदा है! कालू की आंखों में इसी तरह का भाव था।

"बाबू, नाश्ते में क्या लाऊं?"

जयराम ने अखबार हटाकर उसकी ओर देखा। हंस पड़े। दाढ़ी बनाने के बाद उसके बाबू सचमुच जवान जैसे लगते हैं।

"अरे नहीं। आज तो स्टोव में खुद हलवा पकाया है। रसोई के पास तेरे लिए थोड़ा है। चखकर बताना कैसा है?

कालू विभोर-सा हो गया है। ठीक से देख-सुन रहा है?

यह तो अजीब बात है!

खाकर खुशी से गदगद हो गया। चारों ओर देखकर बाबू से पूछने लगा—"आज कोई आयेगा बाबू? घर यों चकाचक सजा हुआ है।"

हो-हो कर हंस उठे जयराम। कालू को बड़ी अजीब लगी यह हंसी। वह भी अनसमझ की तरह खीस निपोरकर खड़ा रह गया।

"कौन आयेगा तेरे ख्याल से?"

जयराम की आंख की गहराई में अपरिचित-सी आग, अनेक लंबी-लंबी धूमर छाया के बीच से झलक आती है।

पेड़ को काट-कूटकर पोछ देने पर भी उसकी जड़ें उसके पेट में उचाट पैदा करती हैं, उसे बाध्य करेंगी नये पत्र लगाने, पंख फैलाने के लिए,

कुल्हाड़ी की चोटें भूल जाने के लिए, उन्हें नकारने के लिए। हो सकता है वे अपनी निर्लज्जता के वावजूद समझती हैं कि जीना उनका अनिवार्य धर्म है। उनकी अंदरूनी जड़ें सूख-सूखकर न झरने तक असंख्य लहरें उठेंगी ही उठेंगी, उनकी नाल में, उनके रक्त प्रवाह में ! संसार की ऊंची-ऊंची लहरें हो सकता है इन्हें अपने छंद में समेट लें, अपना ले जायें।

एक ठंडी चिता पर सोये रहने का कुछ मतलव नहीं। दुनिया को पहचान लेने के वाद उसमें अगर रहना ही पड़े तो जिया जाये।···आदमी को क्या सिर्फ खुद के लिए जीना मना है ? जितना कूड़ा-करकट होना था, हो चुका। अव अपने खुद के लिए अपने ऊपर निर्भर रहकर जहां तक संभव हो जिया जाये।

कालू अभी भी वावू के सवाल के वारे में सोच रहा था—"सच···वावू का तो कोई नहीं।—कौन आयेगा और ?"

परंतु जयराम इंतजार में थे।···खूव अनजान में, एकदम अकेले में। ···प्रतीक्षा कर रहे थे अनिर्दिष्ट काल के लिए, कुछ अनिर्दिष्ट लोगों के लिए।

खुद शायद वे जिंदा रहें। हें···हें···हें पर किसके लिए ? इस चक्कर का केंद्र कहां ?

वाहर दरवाजे पर कोई आवाज दे रहा ··

कालू देख आया—"जयंत वावू हैं···"

हें···हें···हें ··वुरा भी क्या है ? जीने के लिए कोई घनिष्ठ केंद्र न रहे, ऐसे ही कुछ उल्का पिंडों की तरह शून्य में खो जाने से क्या नहीं चल जायेगा ?···

"नमस्कार जयराम वावू ! आपको सुवह ही सुवह हैरान करने चला आया, कुछ वुरा न मानना।"

"नमस्कार···कोई वात नहीं। आपको वैसा ही कोई जरूरी काम आ गया होगा तभी आये हैं। कहिए।"

"जयराम वावू ! विना मतलव लोगों को आहत करने में आपको क्या सुख मिलता है ?"

"मैं सच ही कहता हूं। हो सकता है लोग उससे आहत होते हों।"

"आपका वह सच ही आहत करता है, आप इस बात को अच्छी तरह जानते हैं।"

"हो सकता है जानता होऊं।"

"तो आप सच बोलते हैं या जानबूझकर आघात करते हैं।···सच कहना तो एक बहाना है।"

"अरे वाह! लगता है इसी बीच आपका तो बहुत विकास हो गया है। बोलना खूब सीख गये। वाकई बहुत खुशी हुई जानकर।"

"ना, आपने फिर चोट करने की ही कोशिश की है। मैं सब समझता हूं जयराम बाबू! आपके मन की हालत स्वाभाविक न होने का भी खैर कारण है। इसका यह मतलब तो नहीं कि आप जिसे पायें उसे ही चोट करते रहें?"

"अच्छा! बात क्या है? सुबह-सुबह यह उपदेश बांटने की नौबत कैसे आ गयी?"

"उपदेश नहीं। एक तरह से सावधान करने आया हूं। कई दिनों से इसकी प्रतीक्षा में था। कल पता चला। अतः सोचा, सुबह ही आपको आगाह कर दिया जाये।"

"अच्छा! ऐसे किस भूकंप की सूचना लेकर सावधान करने पधारे हैं?"

"आप खुद समझ जायेंगे। मुझे ओ० ए० एस० मिल गयी है और मेरी पोस्टिंग यहीं हुई है।"

"अरे वाह! यह शुभ संवाद तो मेरी बजाय और अनेक लोगों को जानना चाहिए। उनका अधिकार तो मुझसे कहीं अधिक है।···मगर मुझे कोई खास आश्चर्य नहीं हो रहा। ऊपर तबके में आपका प्रभाव, मैं सोचता हूं आपका प्रमोशन बिना ओ० ए० एस० हुए भी हो जाता।"

"मेरे ऊपरवालों से संपर्क की बात कहकर मुझे लज्जित या कुंठित करने की आशा करते हैं? आपकी आवाज से ऐसी ही गंध आ रही है जयराम बाबू!···याद रखें जयराम बाबू! जो उठना चाहता है वह किसका कंधा है, किसके सिर पर पैर रखकर उठा है, इन बातों पर विचार का वक्त उसे नहीं रहता। इसकी तब जरूरत भी नहीं रहती।

नीति-नियम, लाज-शरम केवल कमजोरों के लिए हैं, काहिल और निकम्मे लोगों के लिए हैं, मेरे लिए नहीं। मैंने जो चाहा, वही करता आया हूं। और जो चाहूंगा, वही करूंगा भी। मुझे कोई रोक नहीं सकता। रोक सकेगा भी नहीं।...आप खुद को पादरी मानकर कई वार दूसरों के सामने मुझ पर कीचड़ उछालने की कोशिश करते हैं। यह मैंने खुद सुना है। यह किरानियों का दल आपकी खातिरी करता है, मुझे पता है। मुझसे यह सब आशा न करें तो अच्छा है। मुझे आपके बारे में सब पता है। इस-लिए थोड़ी-सी सामयिक दया ही काफी है। इस महीने की एक तारीख से तुम मेरे अधीनस्थ कर्मचारी हो।"

अब जयंत ने उठने का उपक्रम किया। मगर कुछ सोचकर फिर बैठा रह गया। कालू सिर्फ आवाज, भंगिमा और नजर से पता नहीं क्या समझा, वह सिर के पीछे खुजाता-खुजाता अंदर चला गया।

जयराम ने चुपचाप एक सिगरेट लगा ली और कुछ सामान्य-से हो गये।

"सुनिए जयंत बाबू! इस खबर को या इस खबर के लानेवाले को मैं अचानक खास मूल्य नहीं दे पा रहा। मुझे इस बात का दुःख है। जिनका अनुग्रह पाकर आप कृतार्थ हैं, उन्हें भी यह अधम खास- सम्मान नहीं दे सका। वरना आपको आज ऐसा जोरदार मौका नहीं मिलता।"

अपने में मूल्य-बोध न हो तो मूल्य नहीं दिया जा सकता। सम्मान-बोध न होने पर आदमी सम्मान भी नहीं दे सकता। ऐसा होता, वैसा होता—ये सब सिर्फ परास्त आदमी के खुद को ठगने के लिए बनाये गये तर्क हैं। जो असंतुष्ट हैं, काहिल हैं, जिनके लिए सारा भविष्य एक अंधेरा नाला है, वह अपनी कटुता में सबको कटु बना लेता है। वह असामाजिक बन जाता है, दूसरों की निंदा, चुगली ही उसका धंधा हो जाता है। मैं भी बेरोकटोक सच कहा करता हूं, इससे किसी को चोट लगे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप अर्से से नौकरी कर रहे हैं, जिसके अन्न पर जिंदा हैं अब उसे सम्मान देने में कुंठित न हों। अब सरकार की निंदा करेंगे तो उसका फल भोगने के लिए तैयार रहना। मेरे साथ सोच-समझकर चलें, मैं किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता। ठीक है। तो मैं चलता हूं।"

"बैठिए। आपको निकाल दूंगा, इस बात का डर है? आपके नीति-उपदेश के लिए कुछ धन्यवाद तो लेते जायें। मुझे पत्ते की तरह धारा में पड़े रहना सीख लें तो बिना प्रयास ही आगे-आगे बढ़ता चला जायेगा आदमी। धारा के बीच रहकर स्रोत को अस्वीकार करने पर पानी की धार से कटकर चोटी टूट जाती है। आप धारा में बह रहे हैं और बहेंगे भी। मैं इस धारा को देखते-देखते स्थाणु होने को आया। आपका धर्म मेरा धर्म नहीं है। मैं जो कुछ रहता आया हूं, वही रहूंगा भी, जो कुछ कहता आया हूं, वही कहूंगा। आज आप मेरे अफसर हो गये तो मैं हर बात में झुक जाऊंगा—यह आशा करना बेकार है"···

सिगरेट की कश खींची। फिर बोले—"बहत्तर दर्जन प्रमोशन देखे हैं और तिहत्तर दर्जन देखूंगा। आप और आपके अनुग्राहक मेरे बारे में निश्चिंत रह सकते हैं।"

"जयंत परिडा अब वह किरानी अफसर नहीं है। शायद यह बात आप अच्छी तरह नहीं समझ पा रहे हैं। ठीक है जल में रह कर मगर से बैर करने से क्या होता है, पता चल जायेगा।"

आहत हाकिमाई बगुले की तरह उड़ गया।

परंतु जयराम वहीं बैठे-बैठे प्रतीक्षा करते रहे। प्लेटफार्म पर खड़े देखते रहे कि कोई और सामने गाड़ी में लटककर निकल गया—और वे अपने पैरों तले की माटी-ईंट से चिपके रहे। उनके पास न किसी ट्रेन का टिकट है और न टिकट के लिए पैसे। उनके पास जो सिक्के हैं, उनकी धातु ठीक है, मगर वे चलते नहीं। उनके ऊपर की छाप पुरानी है। धातु की दर पर हो सकता है वे बिक जायें। मगर जयराम इस बदलाव की बात सोच नहीं पाते।

ऐसे कई जयंतों को लसर-पसर होकर बरसा-पानी में मुर्गों की तलाश में फिरते देखा है। हाकिम के परिवार के मन को भापकर वैसी ही चीजों का जुगाड़ करते देखा है। अचानक देखा तो एक दिन वे कार में फिर रहे हैं और पलक झपकने भर में देखते हैं तो उनकी विशाल अट्टालिका की नींव पड़ चुकी है··· डेढ़ हजार का किराया तक कूता जा चुका है उसका। ···चिकने अंधेरे में रोड पर उनकी गाड़ी ऊंघती रात में फिसल रही है।

नीति-नियम, लाज-शरम केवल कमजोरों के लिए हैं, काहिल और निकम्मे लोगों के लिए हैं, मेरे लिए नहीं। मैंने जो चाहा, वही करता आया हूं। और जो चाहूंगा, वही करूंगा भी। मुझे कोई रोक नहीं सकता। रोक सकेगा भी नहीं।...आप खुद को पादरी मानकर कई वार दूसरों के सामने मुझ पर कीचड़ उछालने की कोशिश करते हैं। यह मैंने खुद सुना है। यह किरानियों का दल आपकी खातिरी करता है, मुझे पता है। मुझसे यह सब आशा न करें तो अच्छा है। मुझे आपके वारे में सब पता है। इस-लिए थोड़ी-सी सामयिक दया ही काफी है। इस महीने की एक तारीख से तुम मेरे अधीनस्थ कर्मचारी हो।"

अव जयंत ने उठने का उपक्रम किया। मगर कुछ सोचकर फिर वैठा रह गया। कालू सिर्फ आवाज, भंगिमा और नजर से पता नहीं क्या समझा, वह सिर के पीछे खुजाता-खुजाता अंदर चला गया।

जयराम ने चुपचाप एक सिगरेट लगा ली और कुछ सामान्य-से हो गये।

"सुनिए जयंत वावू! इस खवर को या इस खवर के लानेवाले को मैं अचानक खास मूल्य नहीं ले पा रहा। मुझे इस वात का दुःख है। जिनका अनुग्रह पाकर आप कृतार्थ हैं, उन्हें भी यह अधम खास- सम्मान नहीं दे सका। वरना आपको आज ऐसा जोरदार मौका नहीं मिलता।"

अपने में मूल्य-वोध न हो तो मूल्य नहीं दिया जा सकता। सम्मान-वोध न होने पर आदमी सम्मान भी नहीं दे सकता। ऐसा होता, वैसा होता—ये सव सिर्फ परास्त आदमी के खुद को ठगने के लिए वनाये गये तर्क हैं। जो असंतुष्ट हैं, काहिल हैं, जिनके लिए सारा भविष्य एक अंधेरा नाला है, वह अपनी कटुता में सवको कटु वना लेता है। वह असामाजिक वन जाता है, दूसरों की निंदा, चुगली ही उसका धंधा हो जाता है। मैं भी वेरोकटोक सच कहा करता हूं, इससे किसी को चोट लगे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप अर्से से नौकरी कर रहे हैं, जिसके अन्न पर जिंदा हैं अव उसे सम्मान देने में कुंठित न हों। अव सरकार की निंदा करेंगे तो उसका फल भोगने के लिए तैयार रहना। मेरे साथ सोच-समझकर चलें, मैं किसी का कुछ नहीं विगाड़ता। ठीक है। तो मैं चलता हूं।"

"बैठिए। आपको निकाल दूंगा, इस बात का डर है? आपके नीति-उपदेश के लिए कुछ धन्यवाद तो लेते जायें। मुझे पत्तें की तरह धारा में पड़े रहना सीख लें तो बिना प्रयास ही आगे-आगे बढ़ता चला जायेगा आदमी। धारा के बीच रहकर स्रोत को अस्वीकार करने पर पानी की धार से कटकर चोटी टूट जाती है। आप धारा में बह रहे हैं और बहेंगे भी। मैं इस धारा को देखते-देखते स्थाणु होने को आया। आपका धर्म मेरा धर्म नहीं है। मैं जो कुछ रहता आया हूं, वही रहूंगा भी, जो कुछ कहता आया हूं, वही कहूंगा। आज आप मेरे अफसर हो गये तो मैं हर बात में झुक जाऊंगा—यह आशा करना बेकार है"···

सिगरेट की कश खींची। फिर बोले—"बहत्तर दर्जन प्रमोशन देखे हैं और तिहत्तर दर्जन देखूंगा। आप और आपके अनुग्राहक मेरे बारे में निश्चित रह सकते हैं।"

"जयंत परिड़ा अब वह किरानी अफसर नहीं है। शायद यह बात आप अच्छी तरह नहीं समझ पा रहे हैं। ठीक है जल में घर कर मगर से बैर करने से क्या होता है, पता चल जायेगा।"

आहत हाकिमाई बगुले की तरह उड़ गया।

परंतु जयराम वहीं बैठे-बैठे प्रतीक्षा करते रहे। प्लेटफार्म पर खड़े देखते रहे कि कोई और सामने गाड़ी में लटककर निकल गया—और वे अपने पैरों तले की माटी-ईंट से चिपके रहे। उनके पास न किसी ट्रेन का टिकट है और न टिकट के लिए पैसे। उनके पास जो सिक्के हैं, उनकी धातु ठीक है, मगर वे चलते नहीं। उनके ऊपर की छाप पुरानी है। धातु की दर पर ही सकता है वे बिक जायें। मगर जयराम इस बदलाव की बात सोच नहीं पाते।

ऐसे कई जयंतों को लसर-पसर होकर बरसा-पानी में मुर्गों की तलाश में फिरते देखा है। हाकिम के परिवार के मन को भापकर वैसी ही चीजों का जुगाड़ करते देखा है। अचानक देखा तो एक दिन वे कार में फिर रहे हैं और पलक झपकने भर में देखते हैं तो उनकी विशाल अट्टालिका की नींव पड़ चुकी है··· डेढ़ हजार का किराया तक कूता जा चुका है उसका। ···चिकने अंधेरे में रोड पर उनकी गाड़ी ऊंघती रात में फिसल रही है।

वंश-परंपरा के दारिद्र्य में जो प्रभुत्व, क्षमता और ऐश्वर्य का सपना उनके पूर्वज देखते आये, वह उनके दिमाग में अचानक आग भभका देता है। जयंत अपने पूर्वजों को तृप्यन्ताम कहकर तिलांजलि देते समय साथ में तर्पण करता है तिकड़मों से खड़ा किया गया वह तीन मंजिला मकान और घूस-चोरी से सैंकड़ा के हिसाब में मिले पैसों का स्रोत। ईडियट्स!!

जयंत परिड़ा ने किरानी की नौकरी शुरू की तबसे इसी तरह भूखे-प्यासे रहकर सदाशिवन साहब या मुथुस्वामी साहब की रात-दिन सेवा कर उन्हें संतुष्ट किया है। लोग जानते हैं कि मंत्रियों के आगे-पीछे फिरनेवालों को किस तरह वश में रखता रहा है। फिर ओ० ए० एस० परीक्षा में नंबर पाने के लिए भेंट की टोकरी उठाये-उठाये परीक्षकों के जान-पहचानवालों के यहां धरना देने की बात कौन नहीं जानता? जयराम सब सुनकर सिर्फ चुपचाप थोड़ा हंसकर इतने में उसे रफा-दफा करते, जयंत के दलवालों से यह बात छुपी न थी···। बहुत दिनों की भड़ांस आज खुलकर आयी है—यह सांप चोट किये बिना बिल में जानेवाला नहीं।

यों ही लापरवाही से जयराम सिगरेट का कश ले रहे थे, अचानक लगा कोई दूर पुरानी आवाज में कुछ कह रहा है। ढेर सारी पदचाप अंधेरे बरामदे में पास आ रही हैं।···उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहे हैं जयराम। पता चला कि कई दिनों की परित्यक्त सिल पर कोई कुछ पीस रहा है। रानी तो उस पर पीसना जानती नहीं इसलिए इलेक्ट्रिक ग्राइंडर आया था।···बहुत दिन पुरानी बात है। कौतूहलवश उठे उसे देखने के लिए।

देखा तो कालू झुका बैठा कुछ पीस रहा है। पूछ लिया—"क्या कुछ है कालू?"

"सरसों की खली और काली मिर्च।"

"क्या करेगा इसका?"

"चोकर और गेहूं के थोड़े से आटे में मिलाकर रोटी बना लेता हूं और इसके साथ मैं खा लूंगा। कुनू हर रोज भात खाता है। भिंडी का भुरता खाता है। एक किलो राशन का चावल उसका छह दिन चल जाता है। फिर रविवार को बाकी बचा हम दोनों बाप-बेटे मिलकर खा लेते हैं। मेरे लिए हफ्ते में एक वक्त चावल है।" थोड़ा हंसकर फिर कहने

लगा—"उसकी माँ क्या जानती थी कि इतना महंगा जमाना हो जायेगा।" मरते समय कह गयी—"मेरे बुनू का राशन का चावल कम न होने पाये।"

कालू ने सिल पर से पोंछकर दुबारा पीसने के लिए बट्टा चलाया। अतीत के झुंड के झुंड कुहासे के झीने परदे सरक गये। पत्थर पर पत्थर घिस रहा यह निपट बूढ़ा जिंदगी भर इस तरह निरर्थक झूम-झूमकर मूछों से पसीना चाटता रहेगा। सोचता है कि वह बुनू को पालता है। हफ्ते में बाकी छह दिन भातों के सारे सपने एक साथ गूंथकर वह, उसका बेटा, बेटे का बेटा ''यों पीढ़ी दर पीढ़ी तक अभिषेक कर रहा है। इंडियट!

कालू ने, जब उमर थी उन दिनों की बेहिसाब मरदानगी छोड़ दें, तो भी सब जानते हैं कि तीन बार विवाह किया था। दो तो छोड़कर भाग गयी, तीसरी कालू से तीस बरस छोटी थी। दो बरस में उससे लड़का हुआ तब कालू पचास का था। सबका यही कहना था कि उद्धव पाइकराय का बेटा है।

जयराम आकर गलियारे कमरे के बीच में खड़े हो गये। जैसे चारों ओर आग के पतंगे उछल रहे हैं। लगता है जैसे अभी यह आग उन्हें चारों ओर से लील जायेगी। और अगले क्षण लगता है कि आग उनके अंदर से जीभ लपलपा रही है—सारी दुनिया को राख कर डालेगी। शठता और मूर्खता के बड़े-बड़े मुंह पहाड़ की तरह चारों ओर गड़े हैं। कोशिश की है संसार के ऊपर से ये अनगिनत आवरण हटाकर देखने की कि उसके अंदर कुछ है भी या सब सिर्फ खोखला है। यह मुखौटे का पहाड़ जलाना होगा। मगर इसके पीछे यो पत्थर पर पत्थर रखकर दारिद्र्य को हरदम घिसने-वाले अनेक मूर्ख दुर्बल विडंबित जीव ही मिलेंगे।

यह बुनू का ढीठ रक्त ही लो। अब भी हफ्ते के छह दिन इस बूढ़े की शिराओं से रस चूसकर अपनी धार बढ़ाये चल रहा है—यह जारज ही बनेगा जयंत ''इसे क्या अभिशाप से मारा नहीं जा सकता? इसकी दुष्ट जननी क्या अपनी संतान के विपाक्त शव पर आभिचारिक पाठ कर उसका कलेवर पान नहीं कर सकेगी? वेण राजा का भेद मथन कर क्या पृथु को जन्म नहीं दिया जा सकता?

जयराम की टेबुल पर नजर पड़ गयी—

"कारिडेपर्स ऑफ पावर"···आधुनिक शासन का गोरखधंधा। उसकी अवश्यंभावी जटिलताएं। उसकी अंधी दमघोंटू गली में सबकी लाचारी। भविष्य के अनेक धुंधले व उदास आंगन सांझ के समय एक प्रकाशहीन अनिश्चितता में घिर गये हैं। इस निशाचरी रक्त के जीव जयराम के चारों ओर कीड़ों की तरह कुलबुला उठे हैं। असंख्य जयंत।··· जयंत परिड़ा···कच्ची उमर से ही प्रभावशाली लोगों के आश्रित। इनकी दुष्ट परंपरा···उनका विपाक्त भविष्य···परंतु आज वह उनके ऊपर अफसर बन गया है। उनका हाकिम जयंत परिड़ा, ओ० ए० एस०।···

पता नहीं क्यों ये सारे तंतु एक ओर हटाकर उनके आगे आ खड़ी हुई रानी!···तंतु जाल की ओट में एक कोई सोया जंतु तभी अयाल झाड़कर खड़ा हो गया।

जयराम की समग्र सत्ता चीख उठी—ना-ना-ना···।

सृष्टि का प्रकाश बुझ गया। उसीमें दिख रहा है यह बदशक्ल जंतु—उसकी नीरव जंभाइयां और साथ में अनेक विकट दृश्य।

कालू कब से आकर बाबू को आवाज दे रहा है।

जयराम के माथे से पसीना टप-टप चू रहा है। आंखें स्थिर हैं। चेहरा विवर्ण। सांस तेज हो गयी है।

"बाबू! बाबू!!"

जयराम को उस अंधेरी दुनिया के क्षितिज से सुनाई पड़ रहा है। जयंत का आक्रोश—"मैं तेरा सर्वस्व मिटा दूंगा। तुझे नंगा कर दूंगा। गले में काटकर छेद कर दूंगा। तेरी नमिता, तेरी रानी को दोनों बांहों में लिए घूमूंगा, फिरूंगा, नाचूंगा। वे मेरे नशे के एक-एक क्षण हैं। मैं उनकी छाती पर अपनी गाड़ी दौड़ा दूंगा।"

कोई गोली खाया जंतु लुढ़क गया। जयराम कुर्सी पर ही निढाल। पानी के छींटें मारकर बाबू को होश कराया कालू ने। जयराम के हाथ-पैर देर तक फड़फड़ाते रहे।

आंखों की उभरी-उभरी पुतलियां बहुत बेचैन थीं।

सात

"मेरी बेटी अलबत जायेगी सिनेमा देखने। उस भिखमगे मास्टर की यह मजाल कि मेरी बेटी को धमकाये। उसने क्या समझ लिया है कि गाव के अंधेरे कोने मे चू-चां करती मूअरियों की तरह रहेगी? कल से वह कंगला मेरे दरवाजे पर पैर न रखने पाये। मेरी लाडली ने पढाई न की, उसके बाप का इसमें क्या गया? वह खुद ऐसा क्या पढ़ आया है जो यों हो रहा है। मैं ग्रेजुएट हूं, मेरे मां-बाप सब ग्रेजुएट हैं। हमारी लड़की भी तो फिर अपने समाज मे चलने लायक आचरण सीखेगी या इसकी बातों में पड़कर लंगूर की तरह डालों कूदती-फांदती रहेगी।"···बाछा रे! कल आने पर इस मासटरिया से कह देना, अपनी विद्या कहीं और ले जाकर बेचे। पिताजी जैसे अफसर नहीं हैं आजकल, वरना इनका मुह इतना ऊपर हो जाता! बूट की एक ही ठोकर मे बत्तीसी झड़ जाती।"

"अरी भागवान क्या हुआ? इत्ती ऊंची आवाज।"

"आवाज की जरूरत पड़ने पर ही जोर से बोला जाता है। तुम तो कही काम से गये थे, कल आने की बात थी, आज आ टपके। तुम क्या जानोगे जी क्या हो रहा है।"···

विश्वंभर एक मटमैले खंभे की तरह चुपचाप। शायद अभी आग फट पड़ेगी। मगर सिर्फ सुनाई पड़ा—

"बच्चों के ट्यूशन सर ने कोई बुरी बात तो नही कही। मैं खुद था। हाथ-मुंह धोकर आने के बीच ही इतना बवाल हो गया। वह बिचारा अपमानित होकर गया।"

"क्या कहा? अपमान हो गया उस बदजात किरानी छोकरे का? और हम हैं आप सामतजी के घर की दासी? वह बेटी की बेइज्जती करेगा। फिर तुम बाप कहाते हो मैं मरद होती तो वहीं उसकी आतड़ी दुह लेती।"

विश्वंभर की आवाज मे खूब गंभीरता होने के बावजूद खूब स्वाभाविकता थी—"उसने तो किसी की बेइज्जती नही की। मेरा तो ख्याल

है तुम सारी दुनिया को बेइज्जत करने पर आमादा हो। तुम मरद नहीं यह सोचना तुम्हारी विनयशीलता है। आंतड़ी दुहना तो खूब जोरदार काम होगा तुम्हारे हाथों।"

वह किसी अपरिचित की तरह गंभीर है। आवाज के किसी पद में जरा भी आवेग का कंपन नहीं।

सुजाता कुछ क्षण चकित-सी गंभीर होकर रह गयी। बाकी बातों में मानो तेज मर गया। मानो किसी कारणवश वह सतर्क हो गयी लगती है।

"कबसे ऐसी बातें सीख गये जी? खेलती-फिरती बच्ची···मैंने उसे बुलाया तभी तो वह गयी—वह कोई अपने मन से जानेवाली है? इसके लिए यह मास्टर उसे धमकायेगा? बच्चों पर शासन करने से मैं कोई मना करती हूं? तुम तो खुद थे, बताओ वह क्या कर रहा था?"

"कोई जरूरत नहीं। क्यों छवि, क्या सिनेमा देखा? बता तो।"

वैसी ही निस्पृह, स्थिर आवाज। चेहरे पर भाव की कहीं रेखा तक नहीं।

"कल हम सिनेमा नहीं गये थे पापा! मां ने कहा सिनेमा गये थे ऐसा बोल देना। हम···"

"चूप! बदमाश छोकरी!! बाप के आगे झूठ बोलना कबसे सीख गयी। हैं?"···

और फिर छवि का चीखना—"बाप रे, मर गयी, मर गयी।"

सुजाता पागल की तरह थप्पड़ पर थप्पड़ लगाये जा रही है।

विश्वंभर और भी भयंकर निस्पृह, चुपचाप।

जब छवि 'बाप रे' कहकर चीखी तो विश्वंभर ने देखा कि सुजाता दोनों हाथों से उसका गला भींचे खड़ी है। एक क्षण में अनेक युद्ध, अनेक लाश रात के अंधेरे का सहारा लिए पड़ी हैं। विश्वंभर के संयत आवरण में से कोई वृषभ निकलकर रौंदता चला गया। उसी धक्के से सुजाता दीवार के सहारे ढेर हो गयी।

सब कुछ फिर स्वाभाविक होने तक वांछा की आंखों में भरा था विस्मय, ग्लानि और आतंक। वह दोनों बच्चों को सहेज रहा है।

सुजाता मानो दीवार से चिपक ही गयी।

विश्वंभर यह सब पीछे छोड़कर बाहर के कमरे की ओर बढ़ गया। चेहरे पर किसी आदमखोर जंगल की निस्तब्ध छाया। आखो की लाली के पीछे संत्रास पूर्वजों की लाज किसी राह भूली हिरणी की तरह छुप नहीं पाती।

आगन के किनारे ठीक आमने-सामने आकर खड़ा है जयंत और उसका स्पंदित सिगरेट का धुआ। उन कुछ क्षणो तक ग्रह, नक्षत्र जड़ रह गये आकाश मे—आदमी के विडबित खोल मे से उछलकर सारे आगन मे भर गयी अनेक प्रवृत्तिया—चतुष्पदी, द्विपदी और सरीसृपों के स्वेच्छा-चार।

धुएं के पीछे से आवाज सुनाई दी—"क्यो विश्वम्भर! दौरे से कब लौटे?"

सारे जंतु हड़बड़ाकर पिंजरे में घुस गये। वहा [illegible] खड़ा है। मगर एक जंतु कटमटाकर देख रहा था [illegible] को और फिर अनिच्छा के बावजूद वह भी अदर घुस गया।

विश्वभर सिर्फ एक ओर हटकर बाहरवाले [illegible] वहीं से आवाज आयी—"आज सुबह।"

आगन के इधर से सुनाई दिया सुजाता का [illegible]।

"ओ! आई एम सॉरी। समझ गया। मैं तो [illegible] कि मैं आज लंच पर नहीं आ सकूगा। मेरा [illegible] तो चला।"

"बिलकुल नहीं। तुमने कुछ नहीं [illegible] रादर आई एम सॉरी। तुम्हें बुलाकर भी मैं [illegible] सकी।" ढिठाई, हंसी, सज्जनता, अभियोग [illegible] कर एक साथ टिके हैं सुजाता के चेहरे के [illegible]

विलकुल वहीं कोई परिवर्तन नहीं।

जयंत का धुआ एम्बेसडर जूतो के [illegible] में चला आया।

नीचे की ओर ताकता विश्वभर कुर्सी पर बैठा है।

उसकी पीठ थपथपाकर जयत ने कहा—"[illegible]

हो रहे हो ? तुम्हारा केस चला गया है। कल सेक्रेटरी के पास पहुंचेगा। मैं सब समझता हूं। डीलिंग असिस्टेंट खुश है, इधर विभागीय मंत्री भी और कोशिश कर सेक्रेटरी को भी खुश कर दिया गया है। यह कोई मुझसे भी बढ़ जायेगा ? खैर, तो मैं चलता हूं। तुम आज ऑफिस आ रहे हो तो ? हालांकि आर्डर के मुताबिक आज तुम्हारा स्टेशन लीविंग परमिशन है। खैर, वह भी देख लेंगे।"

बाहर रास्ते पर सुनाई पड़ा—"छवि-रवि की ड्रेस खलीफा मियां ने तैयार कर दी हैं। आज आकर दे जायेगा। दामोदर मिल का मालिक सुरजीत जैन बारीक चावल का बोरा दे जायेगा। चंपाकुल पंचायत के पोखर से मछली भिजवाने के लिए बी० डी० ओ० से कह दिया है।"

गाड़ी का हार्न सुनाई पड़ा, फिर बुझ गया। सबकुछ उलट-पलट। विश्वंभर की दोनों आंखें जड़ हो गयी हैं। सामने की दीवार पर टंगी है दिगंबर मंगराज की फोटो। छवि और रवि ने वहां चंदन के छींटे लगा दिये हैं।

वही कान, वही नाक, वही आवाज, वैसी ही व्यभिचारी आंखें !! विश्वंभर को लगा जैसे सारा घर चीख रहा है। बाकी सबको लगा जैसे विश्वंभर चीख रहा है। टेबुल पर से फूलदानी उठाकर फोटो पर दे मारी पागल की तरह।

कांच किरच-किरच होकर छितरा गये।

दिगंबर मंगराज का चौड़ा अभिजातवाला माथा फूट गया। नाक, आंख पीतल की चोट से धंस गये।

विश्वंभर की आंखों से धार के धार आंसू और आग।···पीतल की फूलदानी से चोट कर उसने अपने बाप की हत्या की है। उन्हीं दहकती दोनों आंखों को और उस लंबी नाक को वह कभी क्षमा नहीं कर सकेगा। दिगंबर मंगराज का चेहरा किसी आदिम सरीसृप की तरह सिर निकाल कर झांक रहा है किसी गर्त में से। उसके चेहरे से बिखरती विष-ज्वालाओं में विश्वंभर का रोम-रोम जला जा रहा है।

आंखों के आगे हैं वांछा, रवि, छवि और अंत में सुजाता। उसे कुछ नहीं दीखता। फिर भी उसकी आंखें वैसे ही दहक रही हैं। दीवारें एक-एक

तले की धरती शायद धक्तिरानी-सी लगी। छिन-डुल गया वह।

अब की बिलकुल पास में ही कोई बुला रहा है उसे। पीतल की फूलदानी की चोट से कराहते समय शायद दिगंबर मंगराज की प्रतिमा उसे तरह बुला रही थी। विश्वंभर ने शायद अपनी हत्या न कर अपनी परंपरा की हत्या की थी। वही परंपरा तो फिर उसे साधु, सच्चा मगर इतना दुर्बल, बुद्धू, उल्लू, बेलज्ज, गधा होने को बाध्य कर रही है—या नहीं वह उसे महादेव की जलहरी में उनके पादाबु की तरह चुलु-चुलू कर एक दम अपाहिज कर गयी है। चोट खाने पर भी सीमने की ताकत हरण कर गयी है।...अरे बुद्धू! इतने उदार होने का मतलब क्या है? यों चारों दरवाजे खुले कर क्या इस बानामी दुनिया में कोई जी सकता है? खुद नालायक हुआ तो लोग उसे लूट खायेंगे, तो इसमें क्या बुरा हुआ? मेरे बाप-दादों के जमाने में ऐसा कुछ हो जाता तो उसे पहले बांस फाड़ने की तरह चीरकर फेंक देते या नहीं? तू भी कर देना। पीछे क्यों रहा? विश्वंभर मंगराज उसी वंश का होकर इतनी बेइज्जती सह कैसे रहा है तू?

ठीक है! ऐसे अपमान से बचने का और उपाय भी तो नहीं कुछ। वह एकमात्र रास्ता है?...मगर फिर तो फांसी पाना भी अनिवार्य है। किसी काले गाउन पहने जज के इजलास में तिल-तिलकर फिर इस सारी घटना में जलना होगा और फिर झूल जाना होगा फांसी के तख्ते पर। अखबार में बड़े-बड़े अक्षरों में छपेगा कि दिगंबर मंगराज के बेटे की बहू दुश्चरित्र है। उसका बेटा हत्यारा आसामी है। भोर के तड़के में चेहरे पर काला बांधकर उसे फांसी पर लटका देंगे।...बुरा क्या है? परंपरा एक देखो, उसकी पुरानी डाल में कैसे यह महाकाल फल (एक फल जो सुंदर दिखता है मगर अंदर से गधाता होगा) लगा है।

देह में कीलें चुभोने पर वह माटी में वहीं लटपटाकर मुड़ता छाती में छुरा भोंकने पर क्या वैसा होता होगा? ठीक गव से एक वार कर दो, शायद छटपटायेगा, और फिर की तरह।...मगर आदमी जा रहा है, पीछे से गोली खाकर गिर पड़ेगा। जैसेकि सांप पेट दिखाकर चित किसी विषधर सांप को फूलदानी के हत्ये से चोथ-चोथ

बांह उखाड़कर रक्त पी जायगा।

फिर भी अंदर घमासान युद्ध होने के कारण वह काफी क्लांति का अनुभव कर रहा था।

आंखें फिराकर देखा तो वाहरवाले कमरे में सुजाता वेपरवाह बैठी है। ढेर सारी हंसी का ज्वार आकर मानो उस पर टूट पड़ा। सारे शहर की हंसी, लोकनिंदा का अजस्र ज्वार। उसके भीतर वाड़वाग्नि की पतली धार की तरह गुंथी है सुजाता की हंसी।···इस उसके लिए इतनी घृणा के वीच वह अव तक जिंदा कैसे रहा ?···

विश्वभंर खाट पर से भड़ासकर उठ खड़ा हुआ। कमीज डाला गले में और चप्पलें घसीट ले गया वाहर चवूतरे तक। पीछे से देख रही थी वह विना पलकोंवाली चौकोर आंख।···सुजाता निर्वेद भाव से वैठी थी, शायद खूव अनमनी-सी।

इस···सच यह ऐसा नामरद है।

विश्वभंर को सचमुच मन नहीं दिया जा सकता। उसके पास हिंस्रता का नितांत अभाव है। नख-दंत रहित एक पालतू खरगोश है वह तो। ऐसे को लेकर भला कौन औरत घर वसा पायेगी ? वह सिर्फ गरमा देता है। मरद की छाया ही है, समूचा मरद नहीं। एक खोल है, सिर्फ खाली ढांचा भर है।···वाह वाह रे सामंत के वच्चे ! हिजड़ा कहीं का ! !

इतनी घटना के वाद वह सुजाता की चोटी पकड़ घसीट न सका। गला काटकर छेद नहीं कर सका, कसकर गला घोंट नहीं सका···इतने में शायद सुजाता का विवाहित जीवन सार्थक हो जाता। वह कम से कम किसी प्रवल पुरुष को चाहती ! !

विश्वभंर वायें हाथ से जूते के वोताम लगाता चप्पल घसीटता निकल गया। दोपहर की धूप का चिलचिलाता प्रकाश। इतने अधिक प्रकाश में भी कैसा एक अंधेरा वीच-वीच में उसे ढांपे दे रहा था।

कुछ दूर एक सांस में चले जाने के वाद विश्वभंर को सुनाई पड़ा जैसे कोई दूर से पुकार रहा है, वहुत दूर से।···नाम साफ सुनाई पड़ रहा है, मगर एकदम क्षीण, शायद वांस के वन में पवन पुकार रहा है।

कुछ दूर से शहर के मकान दिख रहे थे पानी की तरह झलमलाते पैरों

तले की धरती शायद धकियानी-सी लगी। हिल-डुल गया वह।

अब की बिलकुल पास से ही कोई बुला रहा है उसे। पीतल की फूल-दानी की चोट से कांच टूटते समय शायद दिगंबर मंगराज की प्रतिमा उसी तरह बुला रही थी। विश्वंभर ने शायद अपनी हत्या न कर अपनी परंपरा की हत्या की थी। वही परंपरा तो फिर उसे साधु, सच्चा मगर इतना दुर्बल, बुद्धू, उल्लू, बेलज्ज, गधा होने को बाध्य कर रही है—या नहीं? वह उसे महादेव की जलहरी में उनके पादावु की तरह चुलू-चुलू कर एक-दम अपाहिज कर गयी है। चोट खाने पर भी चीखने की ताकत हड़प कर गयी है।···अरे बुद्धू! इतने उदार होने का मतलब क्या है? यों चारों दरवाजे खुले कर क्या इस चालाक दुनिया में कोई जी सकता है? खुद नालायक हुआ तो लोग उसे लूट खायेंगे, तो इसमें क्या बुरा हुआ? तेरे बाप-दादों के जमाने में ऐसा कुछ हो जाता तो उसे पहले बांस फाड़ने की तरह चीरकर फेंक देते या नहीं? तू भी कर देना। पीछे क्यों रहा? विश्वं-भर मंगराज उसी वंश का होकर इतनी बेइज्जती सह कैसे रहा है तू?

ठीक है! ऐसे अपमान से बचने का और उपाय भी तो नहीं कुछ। वही एकमात्र रास्ता है?···मगर फिर तो फांसी पाना भी अनिवार्य है। किसी काले गाउन पहने जज के इजलास में तिल-तिलकर फिर इस सारी घटना में जलना होगा और फिर झूल जाना होगा फांसी के तख्ते पर। अखबार में बड़े-बड़े अक्षरों में छपेगा कि दिगंबर मंगराज के बेटे की बहू दुश्चरित्रा है। उसका बेटा हत्यारा आसामी है। भोर के तड़के में चेहरे पर काला कपड़ा बांधकर उसे फांसी पर लटका देंगे।···बुरा क्या है? परंपरा एक बार देखो, उसकी पुरानी डाल में कैसे यह महाकाल फल (एक फल जो बाहर से सुंदर दिखता है मगर अंदर से गंधाता होगा) लगा है।

केंचुवे की देह में कीलें चुभोने पर वह माटी में वहीं लटपटाकर मुड़ता है। आदमी की छाती में छुरा भोंकने पर क्या वैसा होता होगा? ठीक कलेजे के ऊपर गप से एक वार कर दो, शायद छटपटायेगा, और फिर लोट जायेगा मछली की तरह।···मगर आदमी जा रहा है, पीछे से गोली दाग दो, वह पछाड़ खाकर गिर पड़ेगा। जैसेकि सांप पेट दिखाकर चित लोट जाता है?···किसी विषधर सांप को फूलदानी के हत्थे से चीथ-चीथ

कर मारना भी एक मजे का काम होगा। शायद हिम्मत का काम भी हो।

कुछ देर बाद विश्वंभर को लगा जैसे किसी पेड़ की अयाचित छाया में हाथ-पांव पसारे पड़ा है। चारों ओर आंख फिरा ली। जगह कोई अपरिचित तो नहीं। वो कुछ दूर पर ईसाइयों का कब्रिस्तान है, उसके चारों ओर ऊंची चारदीवारी है। सामने संतरी की तरह दो ऊंचे-ऊंचे युकलिप्टिस के पेड़। चारों ओर दुपहर की हलकी नीरवता। उधर से विश्वंभर कई बार अकेला गुजरा है, कई बार दोस्तों की भीड़ में। मगर कभी यों इतनी तीव्र निर्जनता का अहसास नहीं हुआ।

दोपहर क्या सचमुच इतना ज्वालामय समय! वह अनेक अंधेरे रहस्यों को खोल देता है, अनेक बंद कमरों में आग लगा देता है। गांव के पास घने झुरमुटों के कच्चे झाड़ों की निकलती भाप के पास जयंत ने उसे पहली बार पुरु बल का ज्ञान कराया है। अनेक उष्ण पसीने में सनी दोपहरी की क्लांति उसने जीवन के घेरे.में बांधी है।

और फिर एक दूर की दुपहर।···खूब गोरी, खूब मांसल नौकरानी। नदी के कगार पर लाल माटी की खदान खूब सूनी, खूब बंडी है। वह, जयंत और लक्ष्मी···दोपहर की धूप में सांय-सांय जलती उत्तप्त यौवन की तीन आद्य शिखाएं।

ईसाई कब्रिस्तान से कुछ दूर है कुष्ठाश्रम।

जलती दोपहर की धूप में पसीने की बूंदें इधर-उधर सड़क के अलकतरे पर उतर आती हैं। मोड़ पर से अचानक कोई अजीब चेहरा निकल आया। ठूंठ हथेलियां दो नारियल के खोल बांध बेकार पैरों को आगे छिटकते हुए घिसट-घिसटकर कोई कोढ़ी। उसका फूला चेहरा और नाक पसीने में भरी है। फिर भी चला जा रहा है एक लय से। वह जगह पार कर जाने में उसे काफी देर लगी। हर क्षण को दूर से देख रहा था विश्वंभर। उफ्—यह गरम, यह कोशिश और जीवन की जलती यंत्रणा। यही तो फिर जिंदा है। जीने की भयंकर दुर्वार इच्छा है इसकी। इससे अधिक कष्ट तो कोई नहीं पा सका, इससे अधिक बेइज्जत कौन होगा?···फिर भी लक्ष्मी हंसती है। इधर है जयंत, उधर विश्वंभर। दोनों हैं क्लांत, दोनों अनुरक्त। कोई विरोध नहीं। बस तो तीनों ही जिंदा हैं लालमाटी की उस खदान में।···

अपनी हंसी सुन विश्वंभर चौंक उठा। बुरा क्या है?···अगर आज लक्ष्मी सुजाता हो जाये। एक परायी औरत के साथ जीने में रोमांचक अनुभूति? उसके लिए कितने सपने, कितना सोना खर्चा नहीं जाता। कितने आवेग-प्रवेग की लीला भूमि है यह परकीया। सुजाता, सुरम्या है, सुंदर है, मुरसिका भी। उसे उत्कोच देकर, वश में कर भोग किया जा सकता है। मान लो उसका पति कहीं चला गया है, या मर ही गया, तो खूब प्रशस्त क्षेत्र मिल गया प्रणय के लिए। बस कुछ भूल जाने भर से चलेगा, कुछ हत्या करने से चलेगा।

वह फिर हो-हो कर हंस पड़ा। अतीत आर्तनाद कर उठा। वह विपत्नीक है। एकाकी है। उसी कोढ़ी की तरह जीना चाहता है वह।···

उस दिन शाम को वह बेशकीमती साड़ी लेकर लौटा था।

सुजाता ने जरा कनखी से देखा, हंसी रोक ली। छि' कितना बेहया है! नामरद है! कितना ओछा, खुशामदी चूहा! छि-छि। मगर विश्वंभर को लगा प्रथम व्यभिचार की मादकता का अनुभव। किस तरह जलती मादकता जीवन में बाकी सारी ज्वालाओं को ढाप देती है।···इसके बाद प्रेम फिर क्या? वह कसी चीज है? शायद जिंदगी में फालतू की चीज है। हो सकता है एक कोई अंधविश्वास हो। घृणा लेकर क्या नहीं जी सकता? जीवन से न सही, अभिनय से कुछ आनंद नहीं मिलेगा। उसमें भी तो एक अजीब-सी पीड़ा है। उसे जीवन का उपभोग्य बना लेने पर फिर क्या दिक्कत होगी?···घृणा? किसके लिए?—अपने लिए? सुजाता के लिए, शायद माननीय जयंत के लिए।

नौ

कचहरी के पास बरगद के नीचे भीड़ है। बहुत से लोग कान लगाए सुन रहे हैं—भाषण। एक जोरदार आवाज में चीखते-से आकाश चीरते-से

कह रहा है—"यह जालिम सरकार ! जुआखोर ! धोखेबाज ! हम इसे नहीं चाहते। भूखी जनता इसे नहीं मानती। बाढ़-महामारी में फंसा मेरा गरीब देश इसे नहीं मानता। गांधी महात्मा अदूरदर्शी, अपरिणामदर्शी थे। हम जैसे अयोग्य और अपरिपक्व लोगों को घसीटकर हमें काले साहबों के हाथ में छोड़ दिया। ये जाति के घातक हैं, विश्वासघातक हैं। अमला तंत्र ध्वंस हो ? स्वेच्छाचारी शासन ध्वंस हो।"

सभा की एक तरफ सुनाई दे रहा है—"बदाम चिनाबदाम⋯काबली चने।" और दूसरे सिरे पर आवाज आ रही थी—"कच्ची ककड़ियां⋯मजनूं की पसलियां⋯लेजा⋯"

सारी सभा में हलचल मच गयी। सबने मुड़कर दोनों को देखा। बरगद के नीचे फिर हुंकार सुनाई दी—"ये जो हमारे दरिद्र भाई चिनाबदाम और ककड़ियां बेच रहे हैं—पेट भर रहे हैं—है कोई इनकी बात सुननेवाला ? जो मिल मालिकों के पेट भर रहे हैं, मारवाड़ी चावल के चोर व्यापारी जिनकी आधी रात में गरजती ट्रकों के नीचे रुपये झाड़ू से बुहार कर ढेर कराये जाते हैं, वे हमारे शासक हैं। इन्हें पहचान लो। उनके हाथ हमारे खून से सने हैं। उनके माथे पर देश के खून के छींटें हैं। ये सब हत्यारे हैं। इनके चारों ओर, मोटर के पहियों के नीचे, शराब की बोतलों के नीचे, उनकी कोठियों-बंगलों में खून, खून ही खून है⋯सारा हमारा ही खून है।" "जनता है⋯है" कहकर गरज उठी। पुरानी आदत के अनुसार तालियां बज उठीं। बदाम और ककड़ी बेचनेवालों की आवाज उस पटापट कनपटीमार शब्द में डूब गयी।

फिर निस्तब्धता तोड़कर वक्ता ने विस्फोट किया—"इन शराबी जुआरी लोगों की दिनोंदिन गिनती बढ़ रही है। इन्हें रात में देखो—कैसे परायी औरत को छाती पर झुकाये नशे में धुत गाड़ी दौड़ाये जाते हैं अपने बाप-दादों की वह साहबी तालीम पाने के लिए। लंपट हुए बिना, नशेबाज हुए बिना, आधुनिक ही नहीं है। घूस लेना इस युग का धर्म है, झूठ बोलना अक्लमंद का लक्षण। किसी प्रकार विदेशी शासक की अवैध संतान की तरह उस दुष्ट परंपरा को जारी रखना इनका लक्ष्य है।" गला खंखारकर फिर आवाज में तीखापन भरकर कहने लगे—"आज जो कुछ

हो गया है, आप लोग सुनेंगे तो रोंगटे खड़े हो जायेंगे। आप इसी वक्त यहां आग लगाकर सबको जला देंगे।"

पटाखे की रस्सी में आग सर-सर जल रही है—मार देगी। सब स्तब्ध हो गये। वो···शायद उठी।

वक्ता अपनी धार में कहते गये—"उनकी शोषण नीति निर्विरोध चलनी चाहिए। सच्चे कर्मचारी को येन-केन प्रकारेण हटा देते हैं। पिछले बाईस साल की नौकरी के बाद आज पंद्रह दिन हुए—जयराम बाबू जैसे ऋषि सरीखे कर्मचारी को इस्तीफा देना पड़ा। उनके नाम पर झूठे आरोप गढ़कर जाल-जंजाल में फंसाकर निकाल दिया गया।"

"कौन···कौन ?···किसे ?···क्या हुआ ? जयराम बाबू कौन है ? ···वे कहां हैं ?"

क्षुब्ध समुद्र की टूटी-फूटी लहरें कलरव कर उठीं। वक्ता के पीछे खूब धीमे, खूब गंभीर आदेश की मुद्रा में किसी चश्मा लगाए प्रौढ़ ने कहा—"ठीक है। इतना ही रहने दो। जुलूस निकलेगा। कतारों में जमाओ।" वक्ता ने "हां सर।" कहा, और तुरत स्लोगन सिखाना शुरू कर दिया।

"चोर सरकार।" "हट जाओ।"

"अंधी सरकार।" "ध्वस हो।" इत्यादि···

जुलूस आगे बढ़ा। चश्मे वाले प्रौढ़ की आंखों में उनके स्वप्न राजा के अनेक तरुण कतारों में आगे बढ़ रहे थे, उत्साह का काफला जा रहा था। उन्होंने बार-बार कहा—"तो आइए जयराम बाबू! आप मेरे साथ हमारे दफ्तर में आयें। कोई परवाह न करें। इस विषम परिस्थिति में संतुलन रखना होगा। जरूरत पड़ने पर विद्रोह भी करेंगे। आप इस सारे आंदोलन के मंत्रदाता के रूप में काम करें। आपका इतना ज्ञान और लंबा अनुभव इस नये स्वाधीन दल का मार्गदर्शन करें।"

जयराम बाबू की आंखों में आकाश का बिंब बहुत गहरे बेध गया है। इतनी शून्यता के बीच प्रश्नों का उत्तर सहज ही नहीं दिया जा सकता।

दस

कोई फियट हार्न वजाती आकर कचहरी के मोड़ पर रुक गई। उसमें से सलेटी रंग की टेरिलीन की चुस्त पैंट और मैंचिंग करती बुशशर्ट, एम्बेसडर डेक शू, दाहिनी कलाई में रोलेक्स ओयस्टर घड़ी पहने निकला।··· किसी अदृश्य आदमी या वॉल को पैर से ठोकर मारता-सा सीढ़ियां चढ़ गया जयंत परिड़ा।

दफ्तर में···

काम में किसी का मन नहीं। सीनियर सुपरिंटेंडेंट ने वाईस साल की नौकरी के बाद इस्तीफा दे दिया है। सब झुंड के झुंड बनाकर फुसफुसा रहे हैं।

सब फाइलों के ढेरों के पीछे गीदड़ की तरह मुंह निकालकर बैठ गये। "सा'व आ गए।" कहकर एक दीवार पुलक उठी। एक और दीवार ने दांत वजाये—"बेईमान, हरामजादा, चरणदास कहीं का, स्साला।" एक एक दीवार गूंजी—"बड़े घर के बेटे हैं, उनके परिवार में सभी आई० ए० एस० थे। उन्होंने भी जितनी परीक्षाएं दी हैं, कभी सेकेंड नहीं हुए। ये एक ड्राफ्ट लिख देंगे तो बस! चीफ सेक्रेटरी ही समझें आधा कुछ। वरना किसके बूते की बात है।"

दूसरी दीवार अंगारों-सी आंखों से सिर्फ सुलग रही थी चुपचाप—"स्साला! भिखमंगा! इसकी मां दिगंबर मंगराज के घर धान कूटती थी···अब स्साला अपना पिछला हिसाब चुकता कर रहा है।"

एक लंबी घंटी साहब के कमरे से चड़चड़ा उठी कि अब सबको इकट्ठा होना है।

सुनते ही आधे तो जिस हालत में थे उसी में उठ दौड़ पड़े। कोई मुंह में पान दवाये चल पड़ा। कोई कलम हाथ में लिए ही जा रहा था, लौटकर टेबुल पर फेंककर चला···रहने दो आकर देखा जायेगा। जाते-जाते किसी की लांग खुल गयी, जैसे-तैसे धोती खोंसकर चला। बाकी आधे लोग इन सबके जाने के बाद भारी मन से लटकते-से उठे। फाइलें ठीक से

रखी। डिब्बे से निकालकर पान मुंह में लिया। उठते समय देखा कि चाबी, कलम, पान का डिब्बा वगैरह सही जगह है या नहीं, टटोलकर देखा गया फिर तिरछे घड़ी की ओर नजर घुमायी और फिर वे लोग चले दफ्तर की ओर। पहले ही छोटी-सी सभा की व्यवस्था हो चुकी थी वहां। पहलेवाले सामने और बादवाले पीछे जाकर बैठ गये। आगेवाली कतार में बार-बार सिर हिलाना पड़ेगा। सिर हिलाना अगर न दिखा सा'ब को तो भी नहीं चलेगा फिर हंसने पर सा'ब के साथ ताल मिलाकर हसना भी जरूरी है। मगर पिछली कतार में ये सारी बातें छुपना-छुपाना आसान है।

सब पर एक बार आंखें घुमाईं जयंत परिड़ा ने। ओ० ए० एस० सा'ब बोले—"शायद आप सबको अंदाज हो गया होगा मैंने आप लोगों को क्यों बुलाया! हालांकि अनुशासन या नियम के मुताबिक इसकी कोई जरूरत न थी। हमें किसी ने बाध्य नहीं किया यह मीटिंग बुलाने के लिए। मगर हममें कोई ऊपर, कोई नीचे, सब नौकरी कर रहे हैं। अतः सब एक दूसरे से संबद्ध हैं। आज जयराम बाबू ने अपना इस्तीफा भिजवा दिया है। नियमानुसार उन्हें काम से छुट्टी महीने भर में मिलेगी। मगर साधारण ढंग से देखा जाये तो वे आज से काम पर नहीं हैं। उनके विरुद्ध जो कुछ अभियोग थे आप लोग सब जानते हैं। कादंबिनी के साथ उनका अश्लील आचरण और कपिला एंड कंपनी प्रमाणित हो चुकी हैं। आप शायद विश्वास नहीं करेंगे कि इससे मुझे कितना आश्चर्य और दुःख हो रहा है। जयराम बाबू जैसे चरित्रवान और सच्चे आदमी के पेट में इतना सब छिपा है, किसे पता था।'''मैं यही सोचता हू कि उनकी यह दुर्गति क्यों हुई! आदमी के मन के अंदर की बात जानना वास्तव में बहुत कठिन है। खैर, जो होना था, हो गया। इतने साल की नौकरी के बाद उन्हें सड़क पर खड़ा होना पड़ेगा, मैं नहीं सह पाता। इसलिए, अगर आप लोग सहमत हों तो मैं प्रस्ताव देता हूं कि हममें से प्रत्येक कुछ पैसे देकर उन्हें उनकी वर्तमान हालत में सहायता करे और मैं अपनी तरफ से पचास रुपये देकर शुरुआत करता हूं"'''तालियों की जो गड़गड़ाहट अगली दीवार में शुरू हुई थी वह पिछली दीवार में प्रतिध्वनित होकर लौट आयी। विस्मय, कृतज्ञता, "ओहो, ऐं, हा-हां, बच गये।" आदि भावों की मिली-जुली आवाजों से मीटिंग गूंज

गयीं।

सा'ब ने फिर कहा — "किसी कारण से अविनाश बाबू मुझसे संतुष्ट न थे। आप से प्रायः सभी उनकी बातों में भरे तीखेपन और अपमानजनक कायदे से समझ गये होंगे। मगर उन सबकी मुझे कोई गिला नहीं है। उनकी उमर के लिहाज से बल्कि मैं उनकी इज्जत करता हूं। जो हो, इतने अप्रत्याशित ढंग से सारी घटनाएं हो गयीं। फलतः उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। अब हालत जो है, उन्हें इस्तीफे के लिए अनुमति देना ही उनके प्रति दया दिखाना होगा।"

"श्योर···श्योर! निश्चय!" स्वीकृति से कुछेक सिर हिल उठे।

"मगर मैं इतने से ही संतुष्ट नहीं हो पा रहा था। किसी ने बताया है कि उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया है।"

टेबुल पर चट से थप्पड़ मारकर सा'ब ने कहा — "मैं उन्हें कभी पागल होने की इजाजत नहीं दे सकता। उन्हें यहां से रांची भेजकर इलाज कराने का सारा दायित्व मेरा है। इस बाबत सारा खर्च उठाने का वचन देता हूं।"

पीछे की दो कतारें स्थिर हो गयी थीं। मगर तालियों की गड़गड़ाहट सारे कमरे में भर गयी। प्रशंसा ऊपर से भर गयी। और सभा भंग हुई।

"कौन कह रहा था कि ऐसा आदमी कभी किसी के नाम पर झूठा केस कर सकता है? इतना विचारवान आदमी क्या कभी ऐसा सोच सकता है?"

इतने में अचानक कहा —"अरे ये सब छोड़ो। विश्वंभर बाबू सुपरिंटेंडेंट बने। वह आर्डर टाइप हो गया। आज निकल जायेगा। विश्वंभर तो उमर में या नौकरी में सीनियर नहीं है।"

"हां। अपने पास रखो सीनियरिटी। सी० सी०आर० फिर कहीं भाग गयी? यह सा'ब चाहे तो दो मिनट में सब हो जायेगा।"

इसी तरह सभी किचिर-पिचिर करते लौट गये अपनी-अपनी फाइलों के ढेर के पीछे। ढंकता आ रहा था एक हल्का पर्दा जो मकड़ी के जाले की तरह लपेट ले रहा था, कितना झाड़ो, और अधिक लिपट रहा था, सब उसे सह लेते जा रहे थे। पता ही नहीं लग पा रहा था। दिनोंदिन वह अधिक कसता जाता है।

दफ्तर में जयराम बाबू की खाली कुर्सी वैसे ही पहले की तरह सिर ऊंचा किये, हाथ पसारे खड़ी है। ऊपर से देखो तो उतनी ही टेक भरी, उतनी ही गंभीर और उतनी ही माननीय। मगर उसके अंदर भरी है एक सीधी साम की तरह विमर्ष शून्यता।

ग्यारह

दीवार घड़ी में सुइयां चलने लगीं। साढ़े का लंच।

कॉल बेल जयंत ने जरा जोर से दबायी।

अप्पया आकर चुपचाप खड़ा हो गया।

टेबुल के नीचे पैर पसारकर कुर्सी के पीछे सिर डालकर जयंत सिगरेट की रिंग देखता रहा—कब जाकर छत तक पहुंचेगी।

ऊपर देखते ही देखते बोला—"अप्पया! हम अभी लंच खाने जायेगा।"

कोई उत्तर नहीं। अप्पया हिंदी नहीं बोल पाता।

"अरे अप्पया, समझे या नहीं? मैं अब लंच खाने जाऊंगा। तू तो हिंदी समझता नहीं। कब सीखेगा फिर?"

"···हिंदी-गिंदी मु कू बुजिब नी थासा। कहू बोलो उड़ीया कड़ पकेइबि, हिन्दी मालूम नई सर।"

हंसी से धुएं का फव्वारा छूट पड़ा—"अप्पया! सुनो! मूलचंद केशवचंद आयेगा। उसे कहना आज शाम मेरे फ्लैट पर जायेगा। कहां गया हूं पूछे तो कहना—'नहीं मालूम'।"

"परवा नहीं सर! बोलेगा।" खूब हल्के कदमों से एक हंसी सीढ़ियां उतरकर चली गयी। अब तक वह नहीं जानती, न जानना चाहती कि कितनी दुर्वार है।

फ़ियट उड़ चली झोंके से, प्रतीक्षा कर रहे विमलेंदु और रोजी के

स्वागत को ग्रहण करने। मगर अचानक पुल पर पहिये जाम हो गये। ब्रेक की किचकिच से दोपहर में अचानक किसी दुर्घटना का माहौल बन गया।

मगर गाड़ी और उसके चालक निस्तब्ध थे। सिर्फ एक सिगरेट सुलग रही थी।

कुछ ही समय में दोनों आदमी करीब पचास हाथ पीछे से निकट आ गये।...कार से मुंह निकालकर जयंत ने कहा—"जयराम बाबू! आप अगर घर जाना चाहें, आइए ड्रॉप कर दूंगा। मैं उधर ही जा रहा हूं।"

प्रौढ़ अनबूझ-सी निगाहों से मोटे चश्मे के पीछे से देखते रहे। जयराम बाबू भी बहुत सारे बिखरे हुए विचारों को इकट्ठा कर जयंत परिड़ा के धुएं की ओट में दोनों आंखों को देखते रहे सिर्फ।

रास्ते के किनारे आते-जाते लोग कौतूहल में देखने लगे। उनमें दो जन खड़े रह गये यह देखने कि क्या होता है।

अजीब से धीर एवं शांत स्वर में ज़यराम बाबू ने कहा—"नहीं। धन्यवाद। मैं नहीं जा पाऊंगा।"

जयंत को लगा खड़े लोगों में दोनों एक-दूसरे को चिकोटी काटकर शायद हंस रहे हैं।

कार का दरवाजा खोलकर जयंत चिहुंक-सा उठा—"अलबत्त जायेंगे। आप जायेंगे, और ये सज्जन भी।" एक दम बाहर निकालकर जयंत झुककर रह गया।

जयराम ऊंची आवाज में बोले—"ना।"...पुल के नीचे नाले से शायद सूखी बालू प्रतिध्वनि कर रही है।

जयंत लद से स्टीयरिंग की ओर सीधा होकर बैठ गया। एक झटके में अपने को पूरा अंदर कर लिया। एक लात मार गाड़ी को स्टार्ट कर दिया। खूब जोर से कड़कड़ाते दांतों से सुनाई पड़ा—"स्साला! सूअर का बच्चा! ब्लडी बास्टर्ड!!"

गाड़ी पागल लावे की तरह रोड पर सरसराती चली गयी। बाद में दोनों आदमी आगे बढ़े। दोनों चुपचाप कार की तेज गति में अनेक परिचित मगर अनामधेय पेड़, चौराहे एवं मकान क्षणभर में मुंह निकालते और फिर छिपते रहे। लगता जैसे वे भी कोई बेकाबू तेज स्रोत हैं। इसी

बीच कुछ घट गया। कुछ सोचते-सोचते ही रसूल मियां का चौराहा पार हो गया। विश्वंभर का घर बेमतलब ही कुछ पुरानी बातें कहने की चेष्टा कर रहा है शायद। बिल्कुल सरल बातों को जटिल करना कुछेक मूर्खों का काम है। दिन के उजाले की तरह साफ दिखनेवाली चीज को वह गधा देख नहीं पाता ? इसमें अनेक कमजोर लोग क्यों घरवार बसाकर जगहंसाई कराते हैं ! परिवार बिछाकर समाज में चलने का साहस इन्हें मिलता कहां से है ? स्वर्डी···फूल्स ··सुजाता में करीने की रुचि है, कायदे का रूप भी। और इन सबके अंदर पालतू बन जाने लायक सुंदर जंगली एक मन है। उसे समझे बिना, काबू में किये बिना सवार होने के लिए यह वेदी-विवाह का कोई बैलों की तरह जिंदगी भर का पट्टा या गये हैं ? मगर विश्वंभर मंगराज भी एक तरह से बुरा नहीं। वैसी एक अच्छी-सी मजबूत, चार पैरवाली स्टूल न हो तो आदमी किस पर पैर रखकर चढ़े ?···इतने साल बाद अब वह क्यों इस तरह मरदानगी दिखा रहा है ? ··स्साला, ईडियट ! एक दुहरी हंसी फिसकर छोड़ती अयत परिंडा की दोनों बांहों पर लहराती बिखर गयी···।

बारह

"मगर जयराम बाबू ! उस छोकरे की हिम्मत तो देखिए ! कितना धृष्ट ! इतना सब होने के बाद भी कितने साहस से आपको आवाज दे रहा है ! सिर्फ आपको अपमानित करने के लिए ! स्काउण्ड्रल ! मैं उसे देख लेता हूं। आप उस तरफ से निश्चिंत रहें। मैं शक्ति जुटा रहा हूं। उसके जैसे हजारों-लाखों सांपों को मारकर देश को मुक्त करने के लिए । यही एक कोई उनसे बढ़ जायेगा ? मैं उसकी नसें खींच न लूं तो देखना ! मेरे लिए उसे जानना और बाकी है ? मेरे बड़े भाई पुलिस साहब हैं, उन्हीं के घर की दौड़-धूप करता था, तबसे जानता हूं। तबसे उन्हें कहता आया हूं कि इन

सांपों को घर में प्रश्रय नहीं देना। इसका जन्म भी तो···राम जाने। कोई कहता है दिगंवर मंगराज की अवैध संतान है, वड़े भाई का आश्रय पाकर घर में घुसा। सुजाता के साथ लंद-फंद की वात देखकर मैंने पहले ही ताकीद कर दी थी। भाई ने तो नौकरी के डर से कभी पास भी नहीं फटकने दिया। उनके विचार से मैं उच्छृंखल, वेकार, एक भविष्यहीन आवारा हूं। इसलिए जो होना था हुआ। वह विश्वंभर भी इस खुली नंगई पर कंवल की तरह ढंका गया। सुजाता मेरी भतीजी ठहरी। फिर भी मानना पड़ता है कि विवाह के वाद भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। मगर जयराम वावू ! इससे क्या होता है ! एक दुष्ट दुर्मद कर्कट रोग इस मानव जाति के विभिन्न अंगों में डंक मारता हुआ दीख रहा है। मैं जो विकट चित्र देखता आया हूं, उसमें सुजाता जीवन भर उस जटिल स्थिति में एक छोटी-सी विषमता भर है। मैं आपको मेरा विचार कह नहीं पाया। मैं दुनिया को किसी वैरागी की तरह घृणा करता हूं, मगर इसके वारे में एकदम निराश नहीं हो पाता। अगर कोई रुका हुआ अंधेरा जमकर ठहर जाता तो शायद मैं हताश भी हो जाता। मगर आदमी तो गतिशील है। वह अगर इस तेज गति से अपने को पीछे धकेल सकता है तो उचित कोशिश करने पर वह आगे भी रौंद जायेगा। उसे दिशाभ्रम हो गया लगता है, वरना वह शक्तिमान है। उसके मूल्य-वोध में परिवर्तन करना होगा। उसे पशुत्व के लोभ से वचाना होगा। इसके लिए यहां के कुछ सांपों को मारना पड़ेगा।"

वे अपनी पुरानी आदत में वकते जा रहे हैं।···हालांकि जयराम कुछ और ही सोच रहे लगते हैं। उनसे कोई प्रतिध्वनि न पाकर वक्ता अचानक चुप हो गये। थोड़ा अप्रतिभ-सा होकर सिर उठाया और उनके मोटे कांच के चश्मे के अंदर देखने लगे। जयराम कोई व्यक्ति विशेष नहीं हैं। वह तो एक ऐसा अपरिचित निर्जन इलाका है, जहां वक्ता निहायत अकेले पड़ गये हैं।

इमली के पेड़ की छाया में खड़े होकर दोनों एक-दूसरे की ओर देखने लगे। एक की आंखों में लपलपाती अग्निशिखा प्रतिविंवित है। शायद वह किसी का खून जलता हुआ देख पा रही है। अनेक अग्निदाह की साक्षी है वह। मगर दूसरी आंखों में मौन असफलता के अंगारे हैं। वे स्वयं वहुत जली

हैं। अनेक अग्निदाह में जल-भुनकर आयी हैं।

चश्मे के नीचे आंखों में हलचल हुई। उन सज्जन ने कहा—"चलिए, बहुत देर हो गयी। हमारे दफ्तर में बाकी बातें होंगी।" जयराम एकदम निश्चल हैं—मनसे, देह में और आखों से भी। कुछ समय बाद कहने लगे—"आज रहने दें। फिर कभी देखा जायेगा।" फिर दोनों अलग-अलग सिर झुकाये अकेले-अकेले चल पड़े निर्जन रास्तों पर।

तेरह

रोज़ी और विमलेंदु दरवाजे से ही जयंत का स्वागत कर ले गये। दोनों के मोती-से दांत, हंसी भी खूब निर्मल और अपनापन लिये। वेशभूषा हल्की-हल्की, कीमती और फबती नज़र रही थी। दर्जी के हाथ के चमत्कार हैं ये कपड़े। आधुनिकता की दो तीखी कलियां हैं रोज़ी और विमल। पुरातन जिस तरह अनेक रहस्यों के घेरे में धुंधलाया, झिलमिल और कुछ-कुछ अनबूझ-सा रहता है, उसी तरह बिलकुल आधुनिकता को भी समझा नहीं जा सकता। उस पर फिर कांच की तरह झिलमिलाती शालीनता की परत, कलफ की गयी कमावदार हंसी, उसी तरह नपा-तुला और निर्दिष्ट उसका आयतन।

"हम लोग बस आपकी ही बातें कर रहे थे कि आप आ पहुंचे।··· आपका जस्ट नाम लिया ही था कि···।"

"···अरे रे खूब रही ··तुम दोनों को ही देखना।···मैं किसी को एक मिनट भी बैठे रहने देना नहीं चाहता।"

तीन पंक्तियां सफेद-झक दांतों की। समानांतर हंसी की मुद्रा में तीनों तैरते बगुलों की तरह परदा उठाकर कमरे में दाखिल हो गये।

"वाह! यह सोफा तो एकदम नया लगता है! यह गोदरेज का है नया आर्मलेस डिज़ाइन···ज़ोरदार है!"

"वैठा-उठी करने के लिए क्या कुछ डालें यहां, यही सोचकर यह सेट उठा लाये···वरना ये महात्मा अपने पिता के यहां से जो लायी हैं, उसे एक वार सरकाने का मतलब रेल की वैगन रिजर्व करना है। एक-एक कुर्सी दो-दो टन की होगी। इनके पैर ठीक विलियर्ड की टेवुल की तरह। उस पर सर्कस का हाथी आराम से गुजर जाये। वैठकर खुशी से माउथ आर्गन भी वजा सकता है।"

"वात को यों वढ़ाकर एब्सर्ड करना भी तुम्हारा एक स्टाइल है।"

"मगर मैं खास वढ़ा नहीं पाता इसलिए अफसोस कर रहा था।"

जयंत किसी लापरवाह चिड़िया की तरह विभोर था। दीवार पर टंगी तीन वत्तख की पंक्ति देख रहा है। मिट्टी की छिपकली उसी के आगे तिलचट्टे को ताक रही है। देखते समय उत्तेजित कर रहा है यह दृश्य—सवाल उठता है कि झपट क्यों नहीं रही छिपकली ?

अचानक रोजी की आवाज सुनाई दी—"आप दफ्तर का काम पूरा कर आये हैं तो ?"

मुड़कर देखा तो रोजी सोफे पर फिल्म फेयर देखती हुई सवाल कर रही है। वह दूसरे सोफे पर वैठ गया। रोजी ने सिर उठाकर देखा। उस मौन निगाह में भी वह सवाल। वस उस पर पतली-सी हंसी की पर्त लगा दी गयी है। जयंत ने ऐश-ट्रे में सिगरेट वुझा दी। सिगरेट को और कुछ कम जोर देकर दवाता तो भी चलता।

"काम पूरा होने न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। फाइलें प्रवासी-पक्षी की तरह नील नदी घाटी की आशा में हजारों मील उड़ती हुई अपनी इच्छा से किसी डाल पर जा वैठती हैं।"

"फाइलों का आना-जाना भी कोई काम है ? उसका फिर कोई मतलव तो होगा ?···"

"वही एकमात्र काम है और उसका कोई उद्देश्य नहीं। आकाश में उड़ते-उड़ते एक फाइल दूसरी फाइल से मिलकर एक और फाइल को जन्म देती है। फाइलों की संख्या वढ़ जाती है। वढ़ना भी चाहिए। उसी से तो दफ्तर में किरानी और अफसरों की संख्या वढ़ती है। फिर काम खत्म कैसे होगा ? ···क्यों कर खत्म होगा ?···चाय के समय एक वार कुर्सी पर वैठ जाने से

पर सोलह ट्रक माटी की जगह साठ ट्रक लिखे जाते हैं। यह सब होता है।"

सेंटर टेबुल पर से पतला झिलमिलाता कांच का हिरन उठाकर जयंत ने फिर रख दिया।

"अच्छा विमल ! कुछ बुरा न मानना अगर मैं दो बात साफ-साफ कह दूं।···अच्छा, तुम क्या उन्हीं पुराने नीति-नियमों पर विश्वास करते हो ? तुम क्या कहना चाहते हो कि आदमी बहुत कुछ सच कहकर सब कुछ उलट-पलट कर देने की तरह का मूर्ख बना हुआ है ? अरे भई ! अगर तुम्हारा कंट्राक्टर छह कहने पर छह और सोलह का मतलब सोलह समझता तो फिर वह कंट्राक्टरी क्यों करता ? वही तो ऑफिसर्स क्लब में मौके पर डिनर देगा, फिर तुम्हारे या तुम्हारे चीफ इंजीनियर प्रभाकर बाबू के घर पर शादी ब्याह के मौके पर आकर खड़ा होगा। तुम्हारे घर पर पांच भले आदमी आना-जाना करते हैं, उनके लिए ऐसा सोफा डलवा देगा। ···ओहो···इसका यह मतलब नहीं कि यह उसी तरह आया होगा। बल्कि न आया होगा उस ढंग से तो मुझे अफसोस होगा। क्योंकि इन सबके लिए क्या सरकार हमें पैसा देती है ? अतः जिंदा रहने के लिए कौशल की जरूरत है। इस कौशल में पुराने जमाने के उस 'सच' का कोई स्थान नहीं। 'घूस', 'झूठ' भी उसी जमाने के शब्द हैं। अब इनका अर्थ बिलकुल साफ और आदरसूचक है। कुछ दकियानूस लोगों के कारण बेमतलब अड़चन खड़ी की जाती है। आज उनमें से एक को विदा कर आया।"

विमल, रोजी इकानॉमिक्स के भले लड़कों की तरह ताकते रहे भाषण के बाकी हिस्से के लिए।

"वह सोचता था कि उसे कोई पार नहीं पा सकेगा। पहलेवाले अफसरों ने उसे क्लब में भर दिया, टेनिस खिलाया और उसका मुंह बढ़ गया। बस इसी के बल पर मुझे बदनाम करने में लग गया।···हूं। ईडियट ! वह चाहता है कि उसके उपदेशों पर चलूं। सच बोलूं। मुंह बंद कर सिर्फ तनख्वाह के गिनती के रुपयों से गुजार लूं···न गाड़ी चढ़ूं, न किसी नारी का चेहरा देखूं।"

"हें हें हें। सुनो !"

"कौन है वह ? कैसे विदा कर दिया ?"

"हैं। हैं। वह तो ट्रेड सीक्रेट है। तुम कुछ दिन और इसी बीच रहोगे तो खुद सब जान जाओगे।" रोजी के कुछ गंभीर हो जाने के बावजूद उसके चेहरे पर हल्की-सी हंसी अभी भी मौजूद थी।

"आय एम सॉरी। शायद आपको बोर कर रहा हूं। हम दफ्तर छोड़ आये फिर भी देखो न दफ्तर हमें नहीं छोड़ रहा। आप कहेंगे यह सरासर ठगाई है।"

"नो, नो! यह कैसे होगा? बल्कि मैं तो सीरियसली सोच रहा हूं कि आपकी बात में जोरदार एक सेंस है, एक स्टैंडर्ड मेकर ही तो आदमी फिर पांच लोगों के बीच जीता है। भिखमंगे की तरह दबकर जीने का कोई मतलब नहीं।"

"बिलकुल ठीक। आज उस स्टैंडर्ड नाम की चीज को ही तो खोज निकालना होगा।"—विमल ने समर्थन किया।

जयंत की आवाज में परोक्ष रूप में अभिभावक है।

"विमल, देख रहा हू तुम बहुत बचपन में हो। सीरियस बात को भी यों हंसी में उड़ाना तुम्हारी आदत है।"

तभी ड्राइंग रूम का पर्दा हटाकर हिचकता-सा गोल-मटोल मुटकी आंखवाला अंदर आ गया, एक अधेड़ नौकर। उम्र बताना मुश्किल है। सत्रह से सैंतीस के बीच कुछ होगी। बाबू के घर पर यह कुछ दिन हुए खाना पकाता है।

"क्यों रे! सब हो गया या नहीं?"

"जी!"

"तो चलें जयंत बाबू।"...

जोरदार डाइनिंग टेबुल। आठ आदमी बैठ सकें इसके लिए आठ सुंदर कुर्सियां। सब नयी, चमचमाती। एक तरफ दो तथा सामने एक आदमी के लिए कांटे, छुरी सजायें जा चुके हैं। नेपकिन भी फुलाकर रखी हैं ग्लास के अंदर। चारों ओर आधुनिकता, सफाई, बिलकुल सही अंदाज में। जयंत ने सब कुछ स्वाभाविक मानने के ढंग से एक कुर्सी खींच ली।

तीनों प्रायः एक साथ बैठे हैं, नेपकिन खोलकर तीनों ने करीब एक साथ सामने गोद में रखी, तीनों ने प्लेट सीधे कर लिये और तीनों अब

ऊपर की ओर ताक रहे हैं। चाबीदार तीन गुड्डे बैठे हैं।

टेलीफोन खनखना उठा। विमल और जयंत दोनों के चेहरों पर प्रश्न उभर आये।

विमल कुर्सी धकेलकर उठ खड़ा हुआ। "एक मिनट में आया" कहकर उधर लपका।

जयंत टेबुल पर से छुरी उठाकर अन्यमनस्क-सा उलट-पुलट करने लगा।

"शायद आपके दफ्तर से कोई बुला रहा है! ये तो आज छुट्टी पर हैं।"

"शायद!...आपके एक भाई पायलट हैं?"

"वह अब फ्लाइट लेफिटनेंट हो गया है। लाहौर सेक्टर में उसके करिश्मों की बात हो रही थी। वे सब सुनकर अनी कहता रहता है एयर-फोर्स के लिए।"

"अनी कौन है?"

"छोटा भाई।"

विमल ने आकर कहा—"मूलचंद केशवचंद सोंधी आपसे बात करना चाहते हैं।"

"ओह! आई सी! वे फोन पर हैं?"

"मैंने कह दिया है होल्ड करने के लिए।"

विमल हंसते हुए रोजी के पास बैठता है—"खूब इंटेरेस्टिंग आदमी हैं यह जयंत बाबू, मगर हैं पक्के पारखी।"

साड़ी को गले के पास कंधे पर थोड़ा सजाते हुए रोजी ने कहा—"मैं तो कहूंगी बिलकुल ओरिजिनल हैं। कितने खुले, एकदम फ्रैंक...देखो न खुलकर साफ-साफ बातें कहते हैं। उस दिन तुमने पटवारी कंट्राक्टर की क्या गत बनायी? क्योंकि कलकत्ते से कुछ कपड़ा लाया था—हूं, साधू बनते हो कि हम तुलसी पत्तर के सिवा कुछ नहीं छूते। देख लो ये पुराने खर्राट अफसर भी नयी नीति का किस तरह समर्थन कर रहे हैं। ऊपरी दो पैसे पाये बिना कोई चल सकता है और यह ऊपरी पैसा कोई घूस भी नहीं होती।"

विमल अन्यमनस्क-सा चम्मच घुमा रहा है।

जयंत हंसता हुआ कुर्सी पर बैठ गया—"ईडियट।"—आवाज में कुछ स्नेह, कुछ श्रद्धा मिली है।

"कौन ?···वह मारवाड़ी ?"

"हां ! वह जानबूझकर बेवकूफ बनता है। मगर उससे बड़ा चालाक इस दुनिया में कोई न होगा।···मेरे दफ्तर से बोल रहा है ताकि सब जान सकें कि वह मेरी कही चीजें लाया है। पूछता है कि उन्हें कहां और कैसे पहुंचाये ?"

"क्यों, वैसे कुछ खास चीज तो नहीं ?"

"नहीं—इम-इट—मैं किसी खास-बास में विश्वास नहीं करता। उसे कहा था पीने के लिए कोई अच्छी-सी चीज कलकत्ते से लाये। कुछ हाथ खर्च का जुगाड़ करने की बात थी—जेब खाली हो आयी। मेरी उसके साथ दोस्ती है। फोन पर वह सबको बता देना चाहता है।"

एक निर्विकार प्रशांत चेहरा, सटकी आंखें फिर दीख गयीं। टेबुल पर सुंदर बाउल में खूब लाल-लाल, खूब भाप निकलता, महक से भरपूर मुर्ग शोरबा लाकर रखा गया।

फिर एक-एककर लाये गये लुची, कुछ पुलाव। जयंत ने एक लुची उठाकर प्लेट में रखी और विमल तथा रोजी की ओर देखते हुए कहने लगा—"यह मूलचंद सोधी भी कम घाघ नहीं। वह भी कई घाट का पानी पी आया है। उसे चालाकी में जीतनेवाला अभी तक मैंने किसी को नहीं देखा। मगर है दिलदार आदमी। एक बार जिसको दिल दिया उसे जिंदगी भर नहीं भूलता। जो मांगने पर दे देगा। हर काम में हिम्मत है मूलचंद की।···ओह ! यह शोरबा तो वंडरफुल है ! मुर्गा भी तो मानदार ठहरा। कहां से जुगाड़ बिठाया विमल ?"

कुछ मौन हंसी···

अचानक सवाल उठा—"अच्छा विमल ! तुम टूर पर जाते हो तो घर पर कुछ व्यवस्था भी करते हो या नहीं ?"

"मतलब ? मैं समझा नहीं। व्यवस्था भी कुछ करनी पड़ती है ?···रोजी तो है, उसे कुछ अकेलापन लग सकता है। मगर वह खूब हिम्मत-

ऊपर की ओर ताक रहे हैं। चाबीदार तीन गुड्डे बैठे हैं।

टेलीफोन खनखना उठा। विमल और जयंत दोनों के चेहरों पर प्रश्न उभर आये।

विमल कुर्सी धकेलकर उठ खड़ा हुआ। "एक मिनट में आया" कहकर उधर लपका।

जयंत टेबुल पर से छुरी उठाकर अन्यमनस्क-सा उलट-पुलट करने लगा।

"शायद आपके दफ्तर से कोई बुला रहा है! ये तो आज छुट्टी पर हैं।"

"शायद!···आपके एक भाई पायलट हैं?"

"वह अब फ्लाइट लेफ्टिनेंट हो गया है। लाहौर सेक्टर में उसके करिश्मों की बात हो रही थी। वे सब सुनकर अनी कहता रहता है एयर-फोर्स के लिए।"

"अनी कौन है?"

"छोटा भाई।"

विमल ने आकर कहा—"मूलचंद केशवचंद सोंधी आपसे बात करना चाहते हैं।"

"ओह! आई सी! वे फोन पर हैं?"

"मैंने कह दिया है होल्ड करने के लिए।"

विमल हंसते हुए रोजी के पास बैठता है—"खूब इंटेरेस्टिंग आदमी हैं यह जयंत बाबू, मगर हैं पक्के पारखी।"

साड़ी को गले के पास कंधे पर थोड़ा सजाते हुए रोजी ने कहा—"मैं तो कहूंगी बिलकुल ओरिजिनल हैं। कितने खुले, एकदम फ्रैंक···देखो न खुलकर साफ-साफ बातें कहते हैं। उस दिन तुमने पटवारी कंट्राक्टर की क्या गत बनायी? क्योंकि कलकत्ते से कुछ कपड़ा लाया था—हूं, साधू बनते हो कि हम तुलसी पत्तर के सिवा कुछ नहीं छूते। देख लो ये पुराने खर्राट अफसर भी नयी नीति का किस तरह समर्थन कर रहे हैं। ऊपरी दो पैसे पाये बिना कोई चल सकता है और यह ऊपरी पैसा कोई घूस भी नहीं होती।"

विमल अन्यमनस्क-सा चम्मच घुमा रहा है।

जयंत हंसता हुआ कुर्सी पर बैठ गया—"ईडियट।"—आवाज में कुछ स्नेह, कुछ श्रद्धा मिली है।

"कौन ?···वह मारवाड़ी ?"

"हां ! वह जानबूझकर बेवकूफ बनता है। मगर उससे बड़ा चालाक इस दुनिया में कोई न होगा।···मेरे दफ्तर से बोल रहा है ताकि सब जान सकें कि वह मेरी कही चीजें लाया है। पूछता है कि उन्हें कहां और कैसे पहुंचाये ?"

"क्यों, वैसे कुछ खास चीज तो नहीं ?"

"नहीं—ड्रम-इट—मैं किसी खास-वास में विश्वास नहीं करता। उसे कहा था पीने के लिए कोई अच्छी-सी चीज कलकत्ते से लाये। कुछ हाथ खर्च का जुगाड़ करने की बात थी—जेब खाली हो आयी। मेरी उसके साथ दोस्ती है। फोन पर वह सबको बता देना चाहता है।"

एक निर्विकार बनात चेहरा, लटकी आंखें फिर दीख गयी। टेबुल पर सुंदर बाउल में खूब लाल-लाल, खूब भाप निकलता, महक से भरपूर मुर्ग शोरबा लाकर रखा गया।

फिर एक-एककर लाये गये लुची, कुछ पुलाव। जयंत ने एक लुची उठाकर प्लेट में रखी और विमल तथा रोजी की ओर देखते हुए कहने लगा—"यह मूलचंद सोंधी भी कम घाघ नहीं। वह भी कई घाट का पानी पी आया है। उसे चालाकी में जीतनेवाला अभी तक मैंने किसी को नहीं देखा। मगर है दिलदार आदमी। एक बार जिसको दिल दिया उसे जिंदगी भर नहीं भूलता। जो मांगने पर दे देगा। हर काम में हिम्मत है मूलचंद की। ···ओह ! यह शोरबा तो वंडरफुल है ! मुर्गा भी तो मालदार ठहरा। कहां से जुगाड़ बिठाया विमल ?"

कुछ मौन हंसी···

अचानक सवाल उठा—"अच्छा विमल ! तुम टूर पर जाते हो तो घर पर कुछ व्यवस्था भी करते हो या नहीं ?"

"मतलब ? मैं समझा नहीं। व्यवस्था भी कुछ करनी पड़ती है ?··· रोजी तो है, उसे कुछ अकेलापन लग सकता है। मगर वह खूब हिम्मत-

वान्नी है इसका प्रमाण दे चुकी है।"

"मैं अकेलेपन पर, आपत्ति नहीं करती क्योंकि तभी कुछ अच्छे उपन्यास पढ़ पाती हूं। दिन भर तो वोरिंग। मुंह खोलने को भी कुछ नहीं।"

"यह भी ठीक है। मगर घूमने-फिरने निकल जायें तो इतना वोरिंग नही लगेगा।"

"घूमना-फिरना?…कहां? यहां घूमने किसके घर जायें?…उन क्वार्टरों में, आपके रास्ते में पड़ते हैं ना, वहां एक लेक्चरर रहते हैं। जब देखो मांद में पल्थी मारे बैठे हैं। मैं एक-दो वार वोर होकर लौट चुकी हूं। वो भला आदमी इतना लाजवाला है कि सिर नीचे धरती में गड़ाये ही बात करेगा…मानो कोई नयी बहू हो।"

"हो…हो…हो…हो…"

"और कोई व्यवस्था नहीं करते विमल?"

"कैसी व्यवस्था?"

"लगता है मुझे ही आकर देखना पड़ेगा। सुविधा-असुविधा देखनी पड़ेगी।"

"अब कोई खास दूर नहीं है। होगा तो देखा जायेगा।"

"विमल! देखता हूं तुम निहायत बच्चे हो। इंजीनियर का काम करते हो। दूर तुम्हारे लिए नहीं तो क्या फिर हमारे लिए है? हो सकता है आज स्टेशन पर काम है, कल फिर फील्ड में काम होगा ही।"

"कोई उनको परवाह है? जमींदार-रजवाड़ों की तरह का मिजाज।—सब अपने आप चलता है। उन पर कोई दायित्व नहीं और न उनके हिस्से में रत्ती भर कमी हो।"

"शायद विश्वास न आये जयंत बाबू! वैसा मिजाज मेरा बिलकुल नहीं। पियून को छोड़ जाता हूं बाजार से सौदा लाने के लिए। यह छोकरा खाना पका देता है और हमारा उधारीवाला सब कुछ पहुंचा देता है। अब इसके बाद फिर व्यवस्था करना क्या बाकी रहा?"

"अच्छा! समझ गया। लगता है इतना सब करने के बाद और कुछ नहीं बचता। मगर यह तो कहो…रोजी फिर क्यों वोर होती है?…समझे

विमल। मैंने खूब स्टडी किया है। असल मे पर्सनल अटेंशन सबसे बडी चीज है। वह जरा-सी सेवा अब मैं कर दिया करूंगा।"

सब खुशी मे हंस पडे।

हाथ धोकर तौलिये से मुह पोछते समय जयत ने पूछा—"अच्छा विमल! यह छोकरा तुम्हारे गांव का है? काफी चालाक दीख रहा है।"

एक साथ विमल और रोजी हंस पडे।

"भगवान की दुनिया मे इससे बुद्धू कोई हो सकता है? इसके पास हमारी कोई अक्ल काम नही करती। वह कुछ भी नहीं समझता इसलिए हम उसे कहते हैं—'घोघा बसंत'।"

"क्यो रे घोघा बसंत! तुम कुछ नही समझते?"

"जी!"

"हा। हा।···हा।"--तीन हसी की धारा।

उनमे से एक कुछ धुआधार, कुछ गहरी भवरदार, बाकी दो के साथ मिलती है, मिलाती है, मगर घुलती नही उनमें।

"थेंक यू वेरी मच! बहुत-बहुत धन्यवाद! तो मैं फिर कभी आऊंगा।" रोजी की ओर देखते हुए—

"कुछ तो फिर ठगाई करनी ही पडेगी।"

रोजी ने फिर हंसकर नमस्ते की।

गाडी रास्ते पर तैरती चल पडी। मुडते समय गाडी से घडी बधा दाहिना हाथ किसी पालतू साप के फन की तरह 'टा-टा' करता हुआ ऊपर उठ रहा था। अंदर काले चश्मे से साफ हसी की पतली रेखा झलक रही थी।

चौदह

जयराम का सिगरेट पीना इसी बीच कुछ बढ गया है। सुबह-शाम जले हुए टुकड़े बुहारते समय कालू सोचता—शायद बाबू बहुत हार गये हैं

—वरना इतना धुआं क्यों पीते ?

दिन-रात किताबों में सिर खपाये देखकर वह सोचता जयराम बाबू पढ़ेसरी हैं। नौकरी छोड़ अकेला यों क्या कुछ पढ़ रहा है ?···क्या खोज रहा है किताबों की थाक में ?

रोज टिफिन कैरियर आधा बच जाता है, बाबू खाना खाता नहीं। देह झड़ गयी, कांटा हो गयी। क्यों अन्न छोड़ दिया ?

बाबू से तो आगे बढ़कर कभी कुछ नहीं कहा कालू ने। अब वह और संभल न पाया—

"बाबू ! आपकी देह पहले जैसी नहीं रहती ? खाना भी पूरा-सा नहीं लेते ? वो बमनवा ठीक नहीं देता है तो दुकान बदल दें ?"

सिगरेट का कश खींचकर जयराम ने कालू की ओर देखा।—दुबला, बूढ़ा आदमी। जीना क्या है, जानने से पहले ही तैयार बैठा है उस पार जाने के लिए। ठीक से कभी भर पेट खाया नहीं। और क्या कि जीवन चुकने आया ! कम भी नहीं। पचास-पचास साल वह घूसखोर, जुआखोर, कूकर-समाज के बीच आधे वक्त भूखे रह-रहकर मर जायेगा। उसमें फिर इस समाज को अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगा कि इतना भी इसकी कृपा से ही पा सका है। कोई बुरा नहीं ! !

कहा—"तूने कल खाया ? तेरी भात खाने की पारी कब है ?"

कालू कुछ हंसा। बोला—"मेरी तो सिर्फ रविवार के दिन भात खाने की पारी है। बाकी दिन तो रोटी-चटनी खाकर पानी पी लेता हूं। कल ही तो खाया है···चेमा की बछिया आकर दो रोटी किवाड़ों की फांक से मुंह धंसाकर खा गयी। कसकर एक थप्पड़ जमाया। सोचा ले जाकर कांजी हाउस में भरती करा आऊं। बाहर आकर उसका जो रूप देखा···मेरा तो हाथ उठा का उठा रह गया। पुट्ठे धंस गये हैं, सारी देह में हाड़ों का ढांचा भर है। मुश्किल से सांस ले रही है। कब आंखें धंसक जायेंगी, पता नहीं। मन में बहुत छी-छी करने लगा कि इसे क्यों थप्पड़ मारा। जो दो रोटी उसके मुंह से खींच ली थी, उसे पुचकार कर खिला दीं। मन को कुछ चैन आया—ओह ! गोरू ! जंतु ठहरा, उसका मुंह नहीं खुलता।"

"ईडियट ! !"

"बाबू ?"

"जा अच्छा मास देखकर दो मोल ले आ।"

"दो ?"

धुएं के पीछे से जयराम ने सिर हिलाया। कालू ने सोचा आज फिर कोई भुक्खड आकर गटक जायेगा। बाबू को तो घर-बार मे कोई लोभ है नही। चाकरी छोड़ देने के बाद ऐसा खर्च कितने दिन चलेगा ? दस भाति के दस लोग आकर बाबू को ठगकर खा जाते है। बाबू कुछ समझ भी नही पाते।"

बाहर दरवाजे पर दस्तक हुई—"जयराम बाबू ?"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अदर आ गये एक प्रौढ़। मोटा चश्मा और मोटी बगड़िया धोती-फतई के अदर से उनका एक खास व्यक्तित्व झलक रहा है। शांतिपुरी झोला उतारकर दीवार के सहारे टिका दिया और खाली कुर्सी पर बैठ गये।

जयराम ने सिगरेट से राख झाडते हुए विद्याधर राय की ओर देखा और आरामकुर्सी पर पीछे की ओर सीधे हो गये।

"शायद आप पढ रहे थे ?"

जयराम ने कुछ नही कहा। सिर्फ किसी अनिश्चित शून्य की ओर देखते रहे।

पैर पर पैर रखकर किसी लबे निबध के क्रमश: अध्याय की तरह आगंतुक ने शुरू किया—

"आप कुछ भी कहे जयराम बाबू ! देश की जो हालत हो गयी है, अचानक कुछ नही किया गया तो जाति व्याकुल हो उठेगी। आखो के सामने साफ दीख रही सच्चाई की और अधिक उपेक्षा नही की जा सकती। मुझे तो लगता है कि हमारे जीवन मे यह वर्गभेद की इतनी सारी विषमता धन-वैषम्य के कारण है और यह धन-वैषम्य निर्भर करता है क्षमता वैषम्य पर, हालांकि क्षमता फिर इस धन पर ही ढाली जाती है और फिर धन के कलश मे ही समा जाती है।"

जयराम तनिक हसे। ये ही बातें उन्होने स्वयं एक दिन इसी लहजे मे

—वरना इतना धुआं क्यों पीते ?

दिन-रात किताबों में सिर खपाये देखकर वह सोचता जयराम बाबू पढ़ेसरी हैं। नौकरी छोड़ अकेला यों क्या कुछ पढ़ रहा है ?···क्या खोज रहा है किताबों की थाक में ?

रोज टिफिन कैरियर आधा बच जाता है, बाबू खाना खाता नहीं। देह झड़ गयी, कांटा हो गयी। क्यों अन्न छोड़ दिया ?

बाबू से तो आगे बढ़कर कभी कुछ नहीं कहा कालू ने। अब वह और संभल न पाया—

"बाबू ! आपकी देह पहले जैसी नहीं रहती ? खाना भी पूरा-सा नहीं लेते ? वो बमनवा ठीक नहीं देता है तो दुकान बदल दें ?"

सिगरेट का कश खींचकर जयराम ने कालू की ओर देखा।—दुबला, बूढ़ा आदमी। जीना क्या है, जानने से पहले ही तैयार बैठा है उस पार जाने के लिए। ठीक से कभी भर पेट खाया नहीं। और क्या कि जीवन चुकने आया ! कम भी नहीं। पचास-पचास साल वह घूसखोर, जुआखोर, कूकर-समाज के बीच आधे वक्त भूखे रह-रहकर मर जायेगा। उसमें फिर इस समाज को अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगा कि इतना भी इसकी कृपा से ही पा सका है। कोई बुरा नहीं !!

कहा—"तूने कल खाया ? तेरी भात खाने की पारी कब है ?"

कालू कुछ हंसा। बोला—"मेरी तो सिर्फ रविवार के दिन भात खाने की पारी है। बाकी दिन तो रोटी-चटनी खाकर पानी पी लेता हूं। कल ही तो खाया है···चेमा की बछिया आकर दो रोटी किवाड़ों की फांक से मुंह धंसाकर खा गयी। कसकर एक थप्पड़ जमाया। सोचा ले जाकर कांजी हाउस में भरती करा आऊं। बाहर आकर उसका जो रूप देखा···मेरा तो हाथ उठा का उठा रह गया। पुट्ठे धंस गये हैं, सारी देह में हाड़ों का ढांचा भर है। मुश्किल से सांस ले रही है। कब आंखें धंसक जायेंगी, पता नहीं। मन में बहुत छी-छी करने लगा कि इसे क्यों थप्पड़ मारा। जो दो रोटी उसके मुंह से खींच ली थी, उसे पुचकार कर खिला दीं। मन को कुछ चैन आया—ओह ! गोरू ! जंतु ठहरा, उसका मुंह नहीं खुलता।"

"ईडियट !!"

"बाबू ?"

"जा अच्छा मास देखकर दो मोल ले आ।"

"दो ?"

धुएं के पीछे से जयराम ने सिर हिलाया। कालू ने सोचा आज फिर कोई मुक्खड़ आकर अटक जायेगा। बाबू को तो घर-बार में कोई लोभ है नहीं। चाकरी छोड़ देने के बाद ऐसा खर्च कितने दिन चलेगा ? दस भांति के दस लोग आकर बाबू को ठगकर खा जाते हैं। बाबू कुछ समझ भी नहीं पाते।"

बाहर दरवाजे पर दस्तक हुई—"जयराम बाबू ?"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अंदर आ गये एक प्रौढ़। मोटा चश्मा और मोटी बगडिया धोती-फतई के अंदर से उनका एक खास व्यक्तित्व झलक रहा है। शांतिपुरी झोला उतारकर दीवार के सहारे टिका दिया और खाली कुर्सी पर बैठ गये।

जयराम ने सिगरेट से राख झाड़ते हुए विद्याधर राय की ओर देखा और आरामकुर्सी पर पीछे की ओर सीधे हो गये।

"शायद आप पढ़ रहे थे ?"

जयराम ने कुछ नहीं कहा। सिर्फ किसी अनिश्चित शून्य की ओर देखते रहे।

पैर पर पैर रखकर किसी लंबे निबंध के क्रमशः अध्याय की तरह आगंतुक ने शुरू किया—

"आप कुछ भी कहें जयराम बाबू ! देश की जो हालत हो गयी है, अचानक कुछ नहीं किया गया तो जाति व्याकुल हो उठेगी। आंखों के सामने साफ दीख रही सच्चाई की और अधिक उपेक्षा नहीं की जा सकती। मुझे तो लगता है कि हमारे जीवन में यह वर्गभेद की इतनी सारी विषमता धन-वैषम्य के कारण है और यह धन-वैषम्य निर्भर करता है क्षमता वैषम्य पर, हालांकि क्षमता फिर इस धन पर ही ढाली जाती है और फिर धन के कलश में ही समा जाती है।"

जयराम तनिक हंसे। ये ही बातें उन्होंने स्वयं एक दिन इसी लहजे में

रही थीं। पूछा—"फिर…"

"फिर कुछ शठ हैं, जुआखोर हैं जिनके लिए कोई नैतिक रोक-टोक नहीं, सब कुछ डकार जानेवाले, हरामजादे। देश को दिन दहाड़े लूटते खा रहे हैं, मगर कोई कुछ नहीं कह पाता कि कोई कुछ नहीं कर पाता। सारी दुनिया के सभी छोटे-बड़े देशों के दरवाजे पर तूंवी लेकर भीख मांग आये हैं। उसे फिर यह शैतानों का दल चूस खाता है। कुछ लोग वस जोंक की तरह फूल उठे हैं, सारे देश का लहू खींचकर। वाढ़ में देश वह गया, हमने पीठ से काटकर कपड़ा जुटाया। उसे दीमक चाट गयी। खोज खवर ली, पता चला कि गांठें वनाकर रातोंरात नीलाम। हमने पेट काटकर चावल और चिउड़ा दिया। वह सेठों के गोदाम में पहुंच गया। हमने रुपये दिये, वदले में मिले कुछेक असहाय अंगूठों के निशान। जो भूख में मरनेवाला था, वह तो भूख से मर ही गया, जो ठंड में मरनेवाला था वह भी गया। यह नरहंताओं का दल मूंछों पर ताव देकर मकान खड़े कर रहा है। मैं उन्हें एक-एककर फांसी के तख्त पर झुला दूंगा। समाज के इन हिंस्र जंतुओं को एक-एककर गोली मार दूंगा।"

अंतिम वात तक आते-आते विद्याधर राय काफी थके-से लग रहे थे। चेहरा लाल पड़ आया था। आनन-फानन में वहुत सारी लकड़ी काट देने पर आदमी हांफने लगता है। अपने को संयत करते हुए तनिक दीवार के सहारे टिके हुए वैठे हैं। पहले की तरह अविचलित आवाज में जयराम ने पूछा—"हूं, फिर…।"

"फिर क्या ? इन्हें गोली मार देने पर समाज स्वच्छ हो जायेगा, स्वाभाविक हो जायेगी जीवन की धारा। ढोंग खत्म, झूठ और अनैतिकता मिट जायेगी। आदमी आदमी की तरह जी सकेगा। न कोई भूख से मरेगा, किसी के पास अभाव नाम की चीज नहीं होगी। सत्य की प्रतिष्ठा होगी।…"

अचानक अप्रत्याशित ढंग से हंस उठे जयराम। विद्याधर राय को तनिक आहत और अप्रतिभ करने के वावजूद जयराम वेतहाशा हंस रहे थे।

"आप तो वहुत शक्की हैं। आपको यकीन नहींहोता इसलिए यों हंसी उड़ा रहे हैं। इसमें ठहाका लगाने जैसी क्या वात है ? जयराम वावू, कई

बार आप भी कच्ची उम्र के छोकरों की तरह व्यवहार कर बैठते हैं।"

जयराम अचानक गंभीर हो उठे।

"देखिए विद्याधरजी ! यों सदेह करने का कोई कारण नहीं। मैं तरुण बिल्कुल नहीं, यह बात अच्छी तरह जानता हूं। हंसने का कारण वैसे और है। आपने जब बात शुरू की, मैं उसकी दिशा समझ गया था। भेड़चाल की तरह एक के बाद एक बातें आती गयीं। पुरानी आदत के मुताबिक मैंने सोचा देखें कितनी लंबी है यह नली, कहां पूरी होगी यह सुरंग। देखा तो कुछ ही देर में रोशनी हो गयी और अंत में निकल आया 'सत्य'। मैं इसके लिए बिल्कुल तैयार न था। इसलिए हंसी आ गई।"

विद्याधर खुद भी हंस पड़े।

जयराम उसी तरह गंभीर हैं।

"सोचा, हाय रे बेचारे सत्य ! तुम्हें खोज-खोजकर युगों से आदमी पागल हो रहा है और तू है कि यों आकर विद्याधर राव के झोले में पालतू कुत्ते की तरह छिपा बैठा है। बुलाने पर कहता है—भों भों। मैंने उसे देखा और हंसी आ गयी तो वो मोटी-मोटी आंखों से ताकता पिल्ला दीख गया सिर्फ। वहां सत्य कहां से आ गया ? सत्य कहें तो भी उसे इस में कोई आपत्ति नहीं।"

"आप यों मस्खरी करने की बजाय अपना मतव्य देते तो ज्यादा अच्छा होता।"

"आप मत सुनेंगे ? तो सुनिये—आपने जो लंबी फेहरिस्त दी है उसकी प्रतिक्रिया में ईमानदारी है। अपने जीवन की कुछेक घटनाओं को केंद्र कर आपको विश्वास हो गया कि सारी दुनिया के मूल्य बदल गये हैं।"

"और लोग भी यही कहते हैं। इसमें तो कोई मतभेद नहीं।"

"मैंने कब कहा ? आप जैसे कुछ लोग जो धार काटकर थोड़ी दूर आ गये, उनका ख्याल है कि कहीं कुछ बदल गया है। शायद यह आपका या इस जमाने का कोई विशिष्ट धर्म नहीं। वरन इतिहास की रोजमर्रे की आवाज है। पैसों की चिंता करनेवालों को लगता है स[illegible] डूबा, गया, अब कुछ नहीं मिलेगा। नीतिवादियों को लगता है—[illegible] अधःपतन हो चुका है, नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। हमें [illegible]

की निगाह से दुनिया एक तरह की ही दीखेगी।"

"तो आपके कहने का मतलब यह है कि सब कुछ 'माया' है?"

"यह खुशी की बात है कि आप मेरी हालत में होते तो इस मामले में यही समझते। हालांकि मैं वैसा नहीं करता। मैं तो यह दिखाना चाहता हूं कि आपकी निराशावाली भावना सबमें नहीं है। आपके विचार युनिवर्सल नहीं हैं। ऐसे अनेक हैं जो जानते ही नहीं कि ऐसा कुछ हो गया है और जानते हों तो भी वे मजे में हैं। आपका आक्रोश उन्हीं पर है, क्योंकि आप उन्हें विधर्मी कहते हैं, असामाजिक, गिरहकट और खून चूसनेवाला कहते हैं।"

"आप क्या इसे नहीं मानते?"

"ठीक ऐसे ही नहीं। जो आज के जीवन के मानदंडों को स्वाभाविक मानकर अपना लेता है, उसे असामाजिक नहीं कह सकता। आप जिन्हें दगाबाज, जालसाज, जुआखोर कहते हैं वे इन संतुष्टों के समूह में खुद-ब-खुद आ जाते हैं। दोनों के मामले में कारण समान नहीं।"

"मगर मुझे तो लगता है कि सबके संतुष्ट रहने का एक ही कारण है कि वे हाथ पर हाथ धरे हैं और दूसरे लोग खा-पी जाते हैं। पेट में आग जले और 'हा अन्न' चीखते समय संतोष क्या उन पर छप्पर फाड़कर टपकता? घूस और जुआखोरी में जो बारीक चावल और घी, भाकुर माछ का सिर खाना सीख गये हैं, वे तो अलबत्त कहेंगे कि भई रामराज चल रहा है। वे इसकी जय-जयकार करेंगे ही।"

"जो दिन भर मेहनत कर एक जून उबला भात खाता है, कल की कोई खबर नहीं, वह संतुष्ट है इसमें कोई शक नहीं। उसे चिढ़ाकर आप लोग असंतुष्ट करेंगे मानो सारी जाति का यह असंतोष का बोझ आप लोगों पर ही लद गया हो! आप लोगों के असंतोष का कारण यह नहीं है कि आपके देश के आधे से ज्यादा लोग एक वक्त भूखे रहते हैं। मगर आपको गुस्सा इस बात पर है कि आपसे भी हर बात में कमजोर लोग खा-पीकर मजे में क्यों हैं? इसलिए इस असंतोष के पीछे एक तरह की हीनभावना, ईर्ष्या, असहनशीलता काम कर रही है। आप में से सत्तर प्रतिशत को वही सुख-सुविधा मिले तो उसी घूस-घास में तोंद फुला लेंगे, सारा आक्रोश

और असंतोष एक मिनट में रफू-चक्कर हो जायेगा।"

"हू ! आप हमेशा उस रूढ़िवादी संप्रदाय में ही रहेंगे जयराम बाबू ! कोई क्रांतिकारी विचार स्वीकार करने का आपमें साहस नहीं। आपकी वर्तमान हालत भी अगर कोई शिक्षा न दे पायी तो फिर हमारी कोशिशों से क्या होनेवाला है ?"

"मैं रूढ़िवादी नहीं। बुद्धिवादी कह सकते हैं। बिना विचार किये किसी धारा में बह जाना मेरा धर्म नहीं। अत: मैं प्राय: प्रतिरोध करता रहता हूं, हर धारा की गति का परीक्षण करता हूं। अगर यह सब रूढ़िवादी लगता है, तो फिर उस बारे में मुझे कुछ नहीं कहना। हालांकि जान-बूझकर किसी का विरोध करना मेरी आदत नहीं। आपने मेरे विचार जानने चाहे इसलिए दो-चार बातें कहनी पड़ी।"

"जरूर कहिए। आपका दृष्टिकोण काफी इन्टेरेस्टिंग है। तो आपका ख्याल है कि हम सबको वे सुविधाएं नहीं मिल पाती इसलिए असंतुष्ट हैं। मन में हालांकि घूस और जुआखोरी के लिए कोई गिला नहीं, क्यों ?"

"बस''' ! किसी नीति या पद्धति का भी आप विरोध नहीं करते। कुछ लोग हैं जो आपकी आंखों के आगे नाच रहे हैं। उन्हें लेकर ही आपका सारा आक्रोश और असंतोष का अग्निबाण है। इसलिए वे लोग जिस व्यवस्था में पाले-पोसे जा रहे हैऐसा आप लोग सोचते हैं, हालांकि उसके विरोध का सिर्फ दिखावा चल रहा है। आपसे मेरा मतलब विद्याधर राय से नहीं है।"

"हां, हां'''वह तो मैं समझता हूं। मतलब ! आप जो कह रहे हैं वह सरसरी तौर पर देखा जाये तो सच नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। मगर व्यवस्था को खोजकर उसका विनाश तो किया नहीं जा सकता। उस व्यवस्था को मुकुट बनाकर जो पहने फिरते हैं उनको तो खत्म करना होगा। मुझे विश्वास है कि इन लोगों से इनकी व्यवस्था कोई हटकर नहीं है। अत: इन्हें किसी पागल कुत्ते की तरह पीट-पीटकर खत्म करने से समाज के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकेगा।"

"मान लीजिए आपकी समझ ही सही है। मगर यह कहना भी तो मुश्किल है—पहले ईंट या पहले आला। पहले झूठ पाखंड था, इन्हें अच्छा

लगा इसलिए अपना लिया अथवा इनकी ही तरह कुछ लोग थे जिन्होंने झूठ का प्रचार किया ? मेरे ख्याल से झूठ आदमी के चरित्र का एक आदिम सत्य है। हम सब में वह है, उसे कई पलस्तर लगा ढंक सके तो हम बन गये सच्चोट। मगर ढांप न सके और इधर उसके रोयेंदार हाथ या पांव दिख गये या पीले गंधाते दांत दीख गये तो हम चीख उठते हैं—मारो, मारो ! मेरे कहने का मतलब है कि किसे मारें ? थोड़ा-बहुत सबमें यदि यह गुण है तो हम एक-दूसरे का विचार कर पायेंगे ? वह अधिकार कहां से मिला हम लोगों को ?

"ये सारे तर्क सुन-सुनकर तो हम लोग बूढ़े हो गये। रूढ़िवादियों के युगों से ये तर्क औरों को अकर्मण्य बनाते आये हैं और हमारे अंदर की वह आग बुझा देते हैं। भांति-भांति की विद्याओं का घटाटोप खड़ा करना उनका हथियार है। सबमें झूठ दिखा देने पर उन्हें सुविधा हो जाती है जो इच्छा करने की। कोई उनका विरोध भी नहीं कर पायेगा। फिर बस विलास की गाड़ी चल पड़ती है। पहले उनका गला पकड़कर खींच लाओ फिर कोई दूसरी बात। हम ही उनका विचार करेंगे···अवश्य होगा। झूठ हमारे पास होगा, रहे। हमें तो खाना नहीं मिलता—हम इसी अधिकार से उनका विचार करेंगे और मारेंगे।"

"तो फिर यह ढिढोरा क्यों पीटते हैं कि सत्य की प्रतिष्ठा होगी। आप लोग कुछेक की दौलत लूट लेंगे और खुद उसे खायेंगे। वे और अधिक कौन-सा पाप कर रहे हैं ? समझे विद्याधर बाबू ! आपका तर्क भी अजीब है। हो सकता है आप कुछ लोगों की हत्या कर उनकी लूट की संपत्ति का कुछ दिन भोग कर लें। आपकी बहुत दिनों की तमन्ना पूरी हो जायेगी। मगर इसी के बल पर ढिढोरा पीट रहे हैं कि साम्य प्रतिष्ठित होगा, स्वर्ग उतर आयेग, यहीं बिछ जायेगा। आदमी भी अजीब जंतु है। इधर डूबे हैं कीचड़ में, मगर सत्य का नाम सुनते ही उधर झपटेंगे। बंसी के कांटे में 'सत्य' के नाम का चारा डालकर फेंक दें, लोग हैं कि फटाफट निगल जायेंगे।"

"ओहो ! गोली मारो इस सत्य को ! सत्य है क्या ? आप लोग सब मिलकर हमें तोते की तरह रटा देते हैं इसलिए आदतन वह आ जाता

है…वरना हमारे लिए उसका कोई अर्थ नहीं। हम बस चाहते हैं कि दो जून खाकर, एक कपड़ा पहनकर झोंपड़े में जिंदा रहें। इतना भर हो जाने पर हम आपके 'सत्य' में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। आप उसमें जैसा चाहेंगे विलास कर सकेंगे।"

"शाबाश! बस!! यह बात आपके मुंह से निकलने तक मेरे तर्क चल रहे थे।"

जयराम की हंसी में लापरवाही की भावना। युद्ध कर किसी आत्मीय को छुड़ा लाने जैसा चेहरा था।

"देखता हूं आप पर भरोसा कर कुछ फायदा नहीं होगा। आप सिर्फ कुछ बातें बना बनाकर कहना जानते हैं। क्योंकि उन सबको किताबों के पन्नों से चुनकर रखा है। मौका पड़ने पर आप ठिठक जायेंगे। लगता नहीं कि आप हिलते पानी में पैर बढ़ाने का खतरा मोल ले सकेंगे।"

"आप झंडा थामकर हनुमान की छलांग लगाने जैसे किसी काम की आशा मुझसे न करें।"

इसके बाद विद्याधर राय की आवाज नरम पड़ गयी—

"नहीं जयराम बाबू! सो क्या कभी एक इंटेलेक्चुअल से मैं आशा कर सकता हूं? आप जिस स्तर के आदमी हैं, उस स्तर पर क्या हमारे जैसे ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे पहुंच सकेंगे? अच्छा जिस आर्टिकल के लिए कहा था उसका क्या हुआ? उसकी तारीख तो हो गयी। कल एडिटर ने एक और खत भेजा है। मैंने जो इंट्रोडक्शन दिया था, उसका रचि लेना लाजिमी है। वह आपके लेख की प्रतीक्षा में है।"

जयराम ने सिगरेट सुलगायी।

चेहरे पर आग दप से जलकर बुझ गयी। यही उनकी स्वाभाविक अवस्था है। इसमें कुछ घमासान हलचल होने पर इसकी-भीऊष्मा में उनका चमचमाता, उस्तरे की धार-सा तेज चमकता यौवन थोड़ा-सा झलककर बुझ जाता है और फिर उस पर सो जाता है ढेरों बोझ राख का।

विद्याधर राय उस दिन की मीटिंग और जुलूस के बाद उनसे कई बार मिले हैं और जब वे इस तरह बिलकुल बंद होते हैं तब उन्हें दीखते हैं खूब रूखे-रूखे, काफी जीर्ण और करुण—इतने करुण कि विद्याधर राय को

साहस नहीं होता कि उन्हें कुछ कहते। मगर उनके अंदर जलती आग की लपट दीख ही जाती। वे सोचते, ऐसे ही कुछ सरल मगर माननीय लोगों को कुछेक तिकड़मी अपनी मरजी से झूठ-सच कह दुर्दशा में डालते चलते हैं। यह आदमी धूल खाता है, इस उम्र में सारी बुराइयां कर लेता हैं। मैं उसे नहीं जानता…यदि उस जयंत परिड़ा की आंतड़ी न नोंच ली, दुनिया को न दिखा दिया कि वह मगरमच्छ पानी में डुबकी लगाकर क्या कुछ निगल जाता है, तो मेरा नाम नहीं।

जयराम को चुपचाप सिगरेट पीते देखकर विद्याधर राय ने उठने का उपक्रम किया। "छोड़ो! आदमी से कुछ काम हासिल करने की बजाय उसके लिए कुछ करना ठीक है। मगर इस आदमी में जो मसाला है—एक बार मुंह खोल दे तो उसी दिन इस शहर में आग जल उठती…खैर देखा जाय…"

"बैठें! इतनी जल्दी जाकर क्या करेंगे।" एक अभ्यस्त आवाज। उसका न कुछ अर्थ है और न कोई उद्देश्य।

अनसुनी करते हुए विद्याधर राय उठे।

जयराम ने प्रतिवाद नहीं किया। इतना कहा—"आदमी से लड़ा जा सकता है, जाति के साथ नहीं। आदमी बदल सकता है, मगर किसी जाति या युग की बांक मोड़ देना सहज नहीं। आप सौ में दस हैं। जो नब्बे हैं उनके साथ टक्कर लेने का क्या अर्थ है? छोटी लहर को बड़ी लहर जरूर निगल जाती है।"

यह भी अनसुनी-सी करते हुए विद्याधर राय अपनी गांधीवादी चप्पल पहन रहे थे। "लाभ-हानि की बात बाद की है। पहले उसे रोकना होगा कि वे जिसे रौंदे जा रहे हैं वे दूब नहीं हैं, उनकी तरह के आदमी हैं। वे काटने पर भी विषधर हैं। और वे कभी सौ में दस नहीं। दीखते होंगे काहिल, कमजोर। यह अमला-अफसरों, घूसखोरों, चोरबाजारियों का दल तोड़कर एक-एक को खींचकर इन्हें पास के लैंप-पोस्ट पर लटकाये बिना चैन नहीं।"

जयराम बाबू कुछ हंसे शायद।

कालू टिफिन कैरियर थामे घुस आया—"अच्छा! इस जुलूसवाले

बुड्ढे को खिलाने के लिए बाबू ने दो मील मगवाये हैं!"—कालू ने सोचा।

विद्याधर राय को कालू बराबर झंडा जुलूस मे देखता आया है बरसों से। भीड़ होने के कारण रिक्शो की लंबी कतार रुक जाती। उसी समय इनके पीछे नारे लगाते लाल चेहरेवाले लोगों को देखा है। उनमें आधे नारे नही गाते और आधे गप-शप मे लगे चलते। वे सब छोकरे हैं। कालू की आंखो मे होता यह मिलाजुला खेल-तमाशा। विना कुछ समझे वह रिक्शे को फादकर चल देता।

एक साथ इसी समय कालू अंदर के बरामदे में और विद्याधर राय बाहरी बरामदे में पहुंच गये। कल्लू ने कहा—"दुकानी नना कह रहा था आपसे बात करने के लिए'''पैसो के बारे में।" होने की बात। बहुत पुरानी समस्या।'''जिसका समाधान शायद इस जीवन में संभव नही। क्योकि कभी पास में काफी पैसे होंगे नही।

अचानक विद्याधर राय फिर लौट आये।'''''एक बात भूल गया था। संपादक ने लिखा है कि उनकी पत्रिका के नियमानुसार चिंतनवाले लेख के लिए वे लेखक को पचास रुपये मानद देते हैं। वह कोई पारिश्रमिक या कीमत नही होती। आपके लेख के लिए मैंने जवाब दे दिया है। बस, कलम उठाने भर की बात है। आप आम तौर पर मेरे पास जो कहते हैं वही लिख देते तो काफी होता।"

"कल देने पर चलेगा?"

विद्याधर राय चौक पड़े या हस पड़े पता नही, मगर ऊंची आवाज मे बोले—"चलेगा'''मतलब? अलबत्ता चलेगा, जरूर जरूर। आप मुझे कल, नही तो परसो दें। बाकी मैं देख लूगा। धन्यवाद'''। तो मैं आया ''जयराम बाबू! आज शाम को हमारी तरफ आइये ना!"

"नही। आना मुश्किल होगा। रूखा उत्तर था।"

विद्याधर राय कुछ कहे बिना चले गए।

कालू ने किवाड़ो के सहारे टिककर कहा—"दो मील जो ले आया हू। ये तो चले जा रहे हैं। फिर आयेंगे तो?"

"क्यों?" चिहुंक उठे जयराम। तू क्या इतना भोंदू है जो इतना भी नहीं समझ पाता? तुझे क्या बताना होगा कि वह सब तेरा है?"

क्या तुझे कभी कुछ नहीं कहती ? अभागे, बुद्धू, मूर्ख !!"

सिगरेट का टुकड़ा फेंक दिया—"तू क्यों नहीं खायेगा ? तू मुझसे बलवान नहीं है ? मुझे और मेरे रिक्शे को मीलों रौंदता ले जाता है। उसमें फिर सात दिन में एक वक्त भात खाता है ? तू मुझे धकियाकर मेरे हाथ से छीनकर क्यों नहीं खा जाता ?"

कालू सहम गया। काटो तो खून नहीं। उसने कहा—"कितनी बड़ी बात बोल गये बाबू ! मैं फिर आपके हाथ से छीनकर खाऊंगा ? बड़ी अभागी बात सुननी लिखी थी बाबू ! मुझे खाने की जरूरत नहीं है।"

कालू की अंतिम बात काफी वजनदार थी। अपने विश्वास पर कालू भी जोर दे सकता है।

जयराम हंस पड़े। विद्याधर राय बिलकुल गलत है। उसने यह दिशा नहीं समझी। उसके जुलूस में बहुत-से उलटे समझनेवाले चल रहे हैं। उसे नारे सुनाई पड़ रहे हैं, झंडे दिख रहे हैं।

अब उनकी आवाज स्वाभाविक हो गयी थी। भंगिमा सहज। "तू यहां खायेगा। एक मील तेरा, एक मेरा। साथ खायेंगे।"

कालू मना नहीं कर सका। मांस की महक बहुत स्वादिष्ट लग रही थी। भूख लगी है—वह समझ नहीं रहा था इस बात को।

मगर मन में कसक थी कि उसके बाबू यों क्यों बौराये हैं। कभी कुछ कह देते हैं। क्यों ? जयराम ने कुछ ही देर बाद आर्टिकल लिखना शुरू कर दिया था।

पंद्रह

रवि जल्दी-जल्दी मुंह-हाथ धोकर पोंछते हुए निकल पड़ा। बायें कंधे पर बस्तानी है।

उसकी आज परीक्षा है। घर से निकलते समय बायीं ओर पूर्ण कुंभ

देखकर जाने से सब शुभ होता है। बांछा ने पुरानी तालीम के मुताबिक लोटे मे पानी भर उस पर एक आम की डाल और फिर उसके ऊपर सूखा डाभ सजा दिया है।

मगर छवि का स्कूल घंटे भर बाद मे है, तो भी जिद्द कर अधपकी तरकारी और दही मिलाकर सूं-मां करती भात निगलकर निकल पड़ी रवि के पीछे-पीछे। हालांकि रवि की परीक्षा है। उसकी कुछ नही। तो क्या हुआ ? रोजाना की तरह दोनो साथ जायेंगे सिनेमा चौक तक। वहा छवि मुड जायेगी अपनी स्कूल की ऊंची दीवार से सटे फाटक की ओर। वहां एक बार रवि की ओर देखना छवि की आदत है।—कि रोड पर वह बायी ओर ही चल रहा है तो। वहा रवि का लवा सिर सिर्फ दीखता पीछे से। देह पर फबती-सी काली हाफ पंट, उसके नीचे चिकनी और सुदर पिंडलियां। रवि उससे चार वर्ष छोटा लडका है। खूब सयाना है।

रवि पहले ही उतरकर सडक पर आ गया। बाछा दरवाजे तक छोडने आया।

"रवि ! रुकना जरा, मैं भी आती हू।" कहते हुये छवि सीढिया लाघ रही है। बांछा ने धमकाया—"पीछे से आवाज लगाती हो उसे ? किसी काम पर निकलते समय पीछे से नही बुलाया करते। तुम जाओ रवि बाबू। यह कुछ दूर पर पीछे-पीछे आकर साथ हो जायेगी।" छवि अपनी गलती पर थोडा झेंप गयी। दौडकर वह भाई के पास पहुच गयी। और फिर दोनों हंसते हुए आगे बढ़ गये।

"तेरी परीक्षा कितने बजे है ?"

"पहले गणित, फिर ड्राइग। आज हमारी खेल की छुट्टी नही होगी। खाना खाने घर नही आऊगा। चार बजे परीक्षा खत्म होने के बाद ही लौटूगा।"

"हमारी नयी दीदी आ रही है आज। जानते हो वे कितनी गोरी है ! मेम साहिबा से भी गोरी। वे बहुत बढ़िया गीत गाती हैं। रोज सिल्क। सिल्क ब्लाउज, सिल्क साड़ी, सिल्क का ही साया।"

"अच्छा—जैसे मां पहना करती हैं ! मैं जानता हू।"

"अरे उससे भी बढ़िया।"

"अच्छा ! रानी की तरह ?"

"हां।"

"अच्छा, महालक्ष्मी की कानी उंगली से भी वड़ी ?"

"ना···ना···उतना नहीं।"

इस तरह की हार-जीत की दौड़ में वे जा पहुंचते गगनचुंवी दीवार क जिसका कोई आरपार नहीं, कोई माप नहीं। वहां वे हार जाते, दोनों ार मान लेते। महालक्ष्मी की कानी उंगली या महाप्रभु के जनेऊ की गांठ उनके लिए अंतिम सीढ़ी है। उसके आगे उनके पास कहने को कुछ नहीं। ···इसके बाद कुछ क्षण वे चुप रहते।"

"हमारे स्कूल में आज मटन चप का टिफिन देंगे। तुम्हारे स्कूल में तो कुछ भी नहीं देते।"

"जिस स्कूल में छोटे-छोटे वच्चे पढ़ते हैं, वहां यह सव होता है, मगर वड़े लड़कों के स्कूलों में ऐसा नहीं होता।"

"तो तू आज भूखी रहेगी ? मां से पैसे मांगे ?"

"मां का तो डर लगता है। वात-वात में वह चिढ़ जाती है। मैं कभी ा नहीं मांगूगी।" छवि की आवाज भारी हो गयी थी मान के वोझ से।

"मुझे भी डर तो लगता है। मैंने उस फोटो पर फूल-चंदन वगैरह ाढ़ाये थे। पिताजी ने गुस्से में भरकर चूर-चूर कर डाला उसे। मां तभी तो इस तरह होनी है।"

"हमारी स्कूल में मुझसे दो क्लास ऊंचे में वो सुपमा पढ़ती है। व रही थी कि हमारी मम्मी वहुत खराव है। उसकी मम्मी उसे मेरे साथ मे जोल रखने से मना कर रही थी।"

"हां। हां। उसकी मां तो वहुत भली है ! जानता हूं, उल्लू कहीं —उंगलियां तो मुड़ी हुई हैं। वो गंदी रहती है। हमारी मां कोई वैसी

रवि संपोले की तरह मर्दानगी में भरकर फूल गया। छवि सामने फिर फरियाद करने लगी—

"मुझे पूछ रही थी कि जयंत वावू तेरे क्या होते हैं ? मैंने कह 'हमारे मौसा हैं।' वस, इतने पर ही खिलखिलाकर हंस पड़ी। नहीं सुना।"

"हा, जयंत मौसा, हमारे मौसा हैं।---इसमें उसका क्या गया ? उसका भाई हमारे स्कूल में पढ़ता है। ठहरो, मैं उससे यह बात पूछता हूं। अगर उसने ऐसे-वैसे कुछ कहा तो वहीं बता दूंगा।"

बुजुर्गी में छवि के चेहरे पर उपदेश उभर आये—"तू उसके भाई के साथ क्यों लड़ेगा ? हमारी मां को बुरा कहने पर सचमुच हमारी मां खराब हो जायेगी ? जयंत मौसा कितने अच्छे हैं ! वे हमारे लिए कमीज लाये, कितनी सुंदर है।"

बात की तपिश फिसल गयी···सचमुच कमीज बहुत अच्छी है।

"जयंत मौसा के घर उस दिन हम रात में गये थे। तू तो सो गया। वरना साथ जाता।···मौसा के घर पर भोज था। मटन, मिठाई और पता नहीं क्या कुछ। मुझे मा और मौसा दोनों तरफ बैठकर खिला रहे थे, दोनों मुझे चूम रहे थे, प्यार कर रहे थे।"

अचानक छवि की आवाज दब गयी। उस पर लद गया था बिना वजह का अपमान, लज्जा और सकोच। रवि अनमना सुन रहा था···

"मैं अधिक खा नहीं पा रही थी। अपने हाथों न खा पाने के कारण काफी लाज लग रही थी। मैं उठ पड़ी। मां ने कहा—जा हाथ धोकर लेट ले। मैं अभी आयी।—मैंने कहा—हम सिनेमा नहीं चलेंगे क्या मां ?" —"अरे उल्लू ! आज सिनेमा नहीं है, तभी तो यहां घूमने आये। हो-हो। सिनेमा गये नहीं, यह बताने में लाज लगेगी—क्यों ? यों सज-धजकर आयी भी और फिर बच्ची बिना देखे कैसे लौटेगी ?—सब हंसेंगे। क्यों ?"—जयंत मौसा ने टेबुल पर थपथपाकर हंसते हुए कहा। इस तरह वे कभी नहीं हंसते।

"मैं ड्राइंगरूम में जा रही हूं कि मां ने पीछे से कहा—देख ! तुझे कोई पूछे तो कह देना कि सिनेमा देखने गये थे। हम ठीक सेकेंड शो खत्म होने पर चलेंगे। बस कोई कुछ नहीं कह सकेगा। जा सोफे पर लेट जा।"

"फिर···" रवि ध्यान लगा रहा है बात में अबकी बार।

"मैंने जाकर देखा—उफ मौसा का कमरा कितना सजा हुआ है ! नींद लगी—मैं गयी मां को बुलाने।···" पेड़ की छाया में अचानक छवि थम गयी। रवि देख रहा था बहन की बड़ी-बड़ी आंखों को।

"मैंने देखा तब तक मौसा वाश बेसिन के पास मां के कंधे पर हाथ डाले उसको प्यार कर रहे हैं। मां भी उन्हें कसकर थामे है'''मुझे लगा दोनों लड़ रहे हैं'''और मां लड़ सकती नहीं। मैं जोर से चिल्लायी।'''दोनों चौंक उठे। मौसा बिना कुछ कहे सोनेवाले कमरे में चले गये। मां ने मेरी ओर कड़ककर देखा। फिर पूछा—सर चकरा गया री! वरना गिर पड़ती। मौसा ने थाम लिया। बच गयी। अभी भी सिर चकरा रहा है। तू कैसे आयी थी ?'''"

"लगता था मां झूठे ही बहला रही है। मुझे बड़ा गुस्सा आया और गुस्से में रोने-रोने को हो आयी। मैंने इतना भर कहा—'चल! हम घर चलेंगे।' मां बिना कुछ कहे चुप खड़ी थी। मौसा सिगरेट पीते हुए आये। मुझे गौर से देख रहे थे। मेरे होंठ पकड़े। मैंने उनका हाथ झटक दिया—अरे छवि! तू कब से अक्लवाली बन गयी? यों पगली की तरह क्यों कर रही है? अरे! मां को बेचैनी हो रही है। थोड़ा उन्हें आराम कर लेने दे, फिर जायेंगी। यों परेशान क्यों हो रही है? आ देख एक अच्छी चीज देता हूं'''"

"जयंत मौसा बहुत फुसलाना जानते हैं।'''मैं उनकी बैठक की ओर गयी। खूब मोटी भरकम किताब मेरे हाथ में थमा दी। उसमें केवल चित्र ही चित्र भरे थे। मैं बैठ गयी वहीं। गैंडा, भैंस, बारहसिंघा, हरिण आदि के बेशुमार चित्र।'''सारे पन्नों पर चित्र! मां ने मेरे पीछे से झुककर कहा—तेरा चित्र देखना भी खत्म होगा या नहीं। मैं खोयी थी बाघ-बघेरों, सियार-लोमड़ियों के बीच और मां घर चलने की ताकीद कर रही थी। फिर मुझे सब कुछ याद आ गया। मैंने कहा—ठीक है चल। मौसा ने हंसते हुए मेरे गाल पर हलके से चिकोटी काटी। हमें गाड़ी में बिठाकर चौराहे के पास उतर गये।'''वहां से पैदल चलकर आये।"

"हम सिनेमा नहीं देखने गये—इतना पिताजी के आगे कहने पर मां ने मुझे कितना पीटा।'''मां क्यों झूठ बोलने को जबरदस्ती कर रही थी! लगता है मां बहुत खराब है।"

रवि अब तक पलक झपका नहीं रहा था। पता नहीं क्या समझा, कहने लगा—

"हमारी मा क्यों खराब होगी ? मा बहुत अच्छी है। बुरे तो जयंत मौसा होंगे। वे अबकी हमारे घर आयेंगे तो पापा को कहकर उन्हे भगा दूगा।"

"कमीज कैसे मिली ? फिर पा सकोगे ?"

"न पाऊ तो न सही ! जा !"

रवि आगे बढ गया। कुछ दूर पर चौराहा। वहां से छवि चली जायेगी अपनी ऊची दीवारवाले बद स्कूल को और रवि मुड़कर चला जायेगा कुछ दूर आगे तक।

दोनो सयाने है। पढते भी अच्छे है। शायद चौंक-चौंककर बात को याद करेंगे। सुषमा छवि को शायद फिर आकर पूछेगी। ठठा करेगी। उसका भाई रवि के सामने कुछ नही कह पायेगा। दूर से नकल करेगा, चिढायेगा।

इसी बात पर छवि शरम से लाल होकर घर लौटेगी।

उधर फटी कमीज, ढेलो की लड़ाई में लहूलुहान होकर गुस्से और अपमान मे भरा लौटेगा रवि।

सोलह

ऑफिस की फाइलो मे बधा-बंधाया समय और पद्रह-बीस मिनट की बात। दिन भर के काम को ताला पड़ेगा। झुंड के झुड इस किरानीशाला से निकलेंगे : परिवार के मुखिया, शादी-विवाह लायक लडकियों के बाप, बी० ए० पढते लडकों के बाप और नयी-नयी शादी कर भाड़े के घर में ससार चलाते प्रेमिक पति। फाटक के इस ओर दफ्तर, नोट, फाइल, सी० सी० आर०, तनख्वाह, महंगाई भत्ता आदि का गोरख-धधा जाकर फाटक के बाहर बिखरकर विभिन्न दायित्वो मे बंट जायेगा। उधार में मिले सरकारी रुपयो से लिंटल तक उठे मकान के लिए सीमेंट, बुढिया मां,

...दया का बिल, पत्नी सैनेटोरियम में है—इस शनिवार चौदह...
...के लिए जेब खर्च, नाती के लिए दूल्हा खोजना, जमीन को बंटाईदार
...वे तो उन पर नाचिए···दुनिया भर की चिंता में दबी गहरी रेखाएं
...पर,···सूखे गाल और धंसी आंखें तैर जायेंगी एक ओर चेतना के
...व में, स्वांग की एक और भूमिका की रेल-पेल में !!

पान बजाकर दस मिनट हुए होंगे। कॉलिंग बेल बज उठी। चुपचाप ...कर खड़ा हो गया अप्पया। प्रतीक्षा करता रहा सिगरेट के धुएं के पीछे ...उल्ला निकलने की तरह, कहीं कोई हुक्म न निकल आये। उसके संकरे, ...तली पैंट के दोनों तरफ पसर गयीं दो बेढंगी कलचांटी-कलचांटी नंगी टांगें और उन पर दो उभरी नसोंवाले मूठ की तरह के मजबूत पैर। सरकारी पोशाक को अप्पया के लंबे-लंबे हाथ-पांव मानो मानते ही नहीं।

"अरे अप्पया! बड़ा बाबू चला गया या नहीं गया, देखना।"

अप्पया की खासी मूछों तले पिक के धुएं से पीले जर्द पड़े दांत निकल गये। मानो वह सब समझ गया है। उसे लगा कि जैसे इस असमय में घंटी बजने पर जैसे कुछ अजीब समस्या आकर जुटने की बात—वैसा कुछ है नहीं।

वह दो ही कदमों में चुपके से वह गया और तुरंत लौट आया। सिर अंदर कर कहा—बाबू अभी आता। एकाध आनिवार? बोलते ··मुं...
टाकि बैंदि ना कु ना?"

जयंत रश्मि ने कलम रख दी और बेतहाशा दो-चार बार में छे...
सारा धुआं छल दिया—

"अरे अप्पया! तू हमारी उड़िया क्यों नहीं बोलता? नहीं तो हि...
ही बोला कर।"

"हिंदी-किंदी म कु नहिं बुझेगा आज्ञा। सेने म कह्वाटा गल्लु उड़ि...
नाहिं बोलिवार कि?"

"अच्छा, कहुँ तु बड़े बाबू को बुला।"

"बड़ बाबू?"

"तो सिग्नेचर मंगराज को इधर बुला।"

वह कुछ देर तक चुपचाप धुआं उगलता रहा। तभी बोल आ...

हो गया विश्वंभर। दाढ़ी न बनाने पर भी आदमी ऐसे दीखता है। आदत के मुताबिक चाय न पीने से आँखें यों रंगीन दीखने लग जाती हैं। कइयों की बीड़ी पीने पर गाल सूखकर गरदन से नसें इसी तरह खिंच आती हैं।

"खैर जो हो, यह आदमी तो दिन-दिन कितना बदशक्ल दीखने लगा। अलखना-सा, बेवकूफ-सा। क्यों इस तरह हो रहा है यह ?…"

जयंत परिडा की हंसी में काफी आत्मीयता का पुट होता है।

"क्यों ? खड़े क्यों हो ? बैठते नहीं।"

"नहीं सर। मैं ऐसे ही ठीक हूं।"

"ये सौगदार बातें हो तो तुम्हारी नहीं गयी। तुम क्यों सोचते हो कि खुद को कष्ट देने पर सारी समस्या का कोई हल निकल आयेगा ? उसका मुकाबला करने के लिए पहले खुद का स्वस्थ होना जरूरी है।"

हंसी खिली जैसे कोई साल का कुंदा फट पड़ा हो—"मुझे तो कोई समस्या नजर नहीं आती सर! और हाकिम के आगे खड़ा रहना तो पुरानी आदत है। उसे भी मैं कोई बेकार की तकलीफ नहीं मानता। फिर कैसी समस्या और कैसा समाधान ? सर! आपके कहने पर तो सब कुछ हो जायेगा।"

"विश्वंभर! तुम इतना व्यंग्य न करते तो भी चलता। क्या मैंने कभी तुमसे दफ्तरी कायदे से व्यवहार किया ? मेरी आत्मीयता समझकर भी हंसी करते हो ? शायद तुम मुझे आत्मीय मानते ही नहीं।"

"हें। हे। हें। हे।…"कुंदा फूटकर दो टूक हो गया हो—"ताज्जुब है। आपको आत्मीय नहीं मानूंगा ? लोग मुझे अकृतज्ञ नहीं कहेंगे। आप तो बिलकुल अपने हैं…घर के आदमी—यह कौन नहीं जानता ?"

"आइ सी! तो तुम बातचीत के मूड में नहीं हो। ऑल राइट। मैंने समझा था कि कुछ मामलों में तुम्हारे साथ डिस्कस करता। आज न सही, फिर कभी देखेंगे।"

"जैसी आपकी इच्छा, सर!"

"अरे! यह बात-बात में सर-सर क्या लगा रखा है ? हम तो एक-दूसरे से अपरिचित नहीं हैं। सहज होकर बातें करते तो अच्छा लगता।"

आपको अगर सुनना अच्छा लगता है तो जैसा हुक्म करेंगे, मैं उर्द

में राजी हूं।"

अचानक जयंत परिड़ा की एक वेपरवाह हंसी फूट पड़ी। ठकठकाती किसी युद्ध-विजेता की हंसी मानो किसी पेड़ की शिखा से टकराकर झर जाती हो।

"विश्वंभर! तुम्हें समझ नहीं सका। पहले तुम वैठो तो सही! हां, वैठो! अप्पया! स्वीट स्टाल से दो स्पेशल चाय लाओ पहले। वैठे क्यों नहीं तुम?"

विश्वंभर के कंधे को दवाते हुए धकेल दिया एक कुर्सी पर।

ऐसे भी आदेश दिये जाते हैं।

जयंत वैठकर एकदम गंभीर हो गया।

"अच्छा, विश्वंभर! यह सव क्या सुन रहा हूं। तुम घर ठीक समय पर नहीं लौटते। देर रात गये पहुंचते हो। कई वार तो उस समय होश-हवाश गुम रहते हैं।"

"दफ्तर में तो कोई वाधा नहीं खड़ी होती इन सवसे।"

"देखो विश्वंभर! ये चालाकियां छोड़ो। तुम्हारे नशे की वात सुनकर कोई खुश नहीं है। कम-से-कम तुम्हें अपने परिवार की दृष्टि से विचार करना होगा। मैं भी नशा करता हूं। हालांकि नशे को लोग जितना वुरा मानते हैं मैं उतना वुरा नहीं मानता। वेल!...मेरे लिए वह एक प्लेजर है। मगर उसका फिर एक हिसाव है। मतलव लिमिट है। अगर उससे आगे वढ़कर शराव पीने लगे तो...। फिर एक वात और है। तुम्हारे पीने और मेरे पीने में काफी अंतर है। तुम्हारी तरह मुझ पर तो दायित्व नहीं है।"

"सर!"

"अव तुम खुद पर और अपने वाल-वच्चों पर मनमाना अत्याचार नहीं कर सकते। मैं इसके लिए एलाउ नहीं कर सकता।"

जंजीर में से कोई सिंह ठहठहाकर हंस उठा। वड़े-वड़े मेघों की पीठ पर जैसे किसी ने पहाड़ लुढ़का दिये हैं आकाश की ढलान पर। वर्षों सौदा खरीद-फरोख्त की हाट को कंपाता काठ का कुंदा फट पड़ने की तरह का अट्टहास विद्रूप करता रहा उस दफ्तर का कुछ देर तक। जयंत शायद मन

ही मन सोच रहा था कि अब इस पर व्यंग्य विद्रूप की बिजली बरसेगी, मगर अचानक रुंधी हुई नीरवता में सुनाई पड़ा—

"सर !"

यह शब्द इतना तीखा, विषैला और इतना पैना, इतना वाहियात कभी नहीं लगा होगा। जयंत ने विश्वंभर के चेहरे की ओर देखा। पहले की तरह एक नशीला चेहरा। किसी गहरे दह की तरह उदास, मगर खूब भयंकर। यही चेहरा मुंह से लार रिसाता, बंद आंखों से भूखे रिक्शेवाले की तरह नशे में धुत होकर सड़क पर गिर सकता है। यही चेहरा फिर नुकीली दाढ़ी-मूछ के बीच से फेनिल दांत निकाल छोटी-छोटी भूरी आंखों के बिंदुओं से आग की लपटें बरसाकर हाइना की तरह गरज सकता है। दोनों अवस्थाओं की संभावना को स्वीकार करते हुए भी इस चेहरे में वह हाइना ही बार-बार दीख जाता है जयंत बाबू को। हाइना ही स्वाभाविक लगता है, उसके वे हिंस्र दांत, छोटी-छोटी कटे कांच-सी आंखें।···मगर लाचार रिक्शेवाला भी तो दीख रहा है। इसके पसीने में तर-बतर देह पर अच्छी-सी नरम गद्देदार रिक्शा जोतकर इसे वाहन बनाया जा सकता है। हर्ज क्या है ?—यह तो अपना पावना ही मांग पा जाता है।

नीरवता के बीच फिसफिसाती-सी हंसी एक छलांग मारकर पार हो गयी—अपने अनजाने जयंत कुछ चौंक उठा। मगर अगले क्षण अविचलित-सी मुद्रा में बढ़कर एक सिगरेट चूम डाली और पूछा—"क्यों इस तरह पागलपन कर रहे हो ! अकारण ही इतना हंस रहे हो ? पहले तो सुनकर विश्वास नहीं होता था। अब देख रहा हूं कि तुम्हारे रंग-ढंग किस तरह बिगड़ गये हैं ! शायद तुम खुद नहीं जान पा रहे कि तुम्हारा बिहेवियर कितना स्ट्रेंज हो गया है !"

मगर आवाज में आशंका है।

कोई नया पेय चखने की तरह विश्वंभर जीभ लपलपाता-सा उधर देख रहा था। कुछ देर बाद दांतों के बीच से सुनाई पड़ा—

"सर !!"

जयंत कुछ बेचैन-सा हो उठा। उसकी चंचल आंखें किसी कारण से विश्वंभर के दोनों हाथ ढूंढ आयीं।

भड़भड़ाकर उठ खड़ा हुआ विश्वंभर।

और उसी क्षण बायीं कुहनी के बीच की जगह में मुंह ढंककर खूब चौंका-सा खड़ा हो गया जयंत। उसका दाहिना हाथ आगे आ गया किसी अज्ञात आघात को रोक लेने के लिए। उस प्रतिरक्षा की भंगिमा को क्षण भर देख मुड़कर चला गया विश्वंभर!

जयंत सिर उठाकर देखने तक वह दरवाजे के पास जा पहुंचा था।

हाथ फटकारदांत किटकिटाकर वह चीखता-सा बोल उठा—"स्टाप।" मगर विश्वंभर अनायास खिसक गया, जैसे कोई प्रेतात्मा गायब हो जाती है।

भयंकर उत्तेजना में जयंत परिड़ा ने अपनी टेबुल पर से कांच का पेपर वेट उठाकर उस जाती छाया पर दे मारा।

झनझनाकर किवाड़ का कांच चूर-चूर हो गया।

"ईडियट! बास्टर्ड! हरामजादा! सूअर का बच्चा!"

ये सारे शब्द चारों दीवारों से टकराकर मानो जयंत परिड़ा के माथे पर ही आकर ढेर हो गये हों। और अधिक जल उठी अपमान और ग्लानि की आग।

शायद वह कूदकर विश्वंभर परिड़ा का पीछा करता। मगर धम से कुर्सी पर निढाल हो गया।

अप्पया टेबुल पर चाय रखकर चारों ओर जो कुछ हो गया उसे समझने की कोशिश कर रहा था। पता नहीं क्याझोंक चढ़ी वह यों ही अंट-शंट बकने लगा, मगर जैसे ही जयंत की ओर निगाह गयी वह सहम गया। उसका मुंह फटा का फटा रह गया।

"कितना साहस उसका! मुझे अकेला समझकर हमला करने चला! मैं उसे अभी पुलिस को हैंड ओवर कर दूंगा।"

अप्पया ने अपने साहब की भंगिमा से समझा कि कुछ न कुछ तो भी अर्जेंट हैं। आदतन कुछ हवा ताबड़-तोड़ उसके मुंह से निकल जाती है—

"अम्मा नेई ना। अब्बा बाब्बा। इस्सी।"

जयंत का बायां हाथ फोन पर से लौट आया अपने आप।

विश्वंभर उसी तरह अनायास और चुपचाप कमरे में चला आया।

उसके चेहरे पर कैसी भी तो एक तरह की हसी थी।

"एक न्यूज देने चला आया।"

जयंत उसी क्षण लाल-पीला हो गया। चेहरे पर खीच-तानकर लायी गयी एमरजेंसीवाली हसी।···

"क्या हुआ! मैं तो सोच रहा था कि अचानक उठकर कैसे चल पड़े। बैठो-बैठो। तुम्हारी चाय भी आ गयी।"

अप्पया की आखे शायद टिमटिमाकर नीचे खिसक पड़ेंगी। " "अब्बा बबा···अम्मा नाइना···इस्स···।"

उसके बाबू की कुर्सी पर से गोली छूटने की तरह सुनाई पड़ा। वह स्तब्ध-सा रह गया सुनकर···

"गेट आउट! ईडियट! बास्टर्ड! हरामजादा! सूअर का बच्चा!"

अप्पया को गेट से बाहर धकेल आयी अगारे-सी जलती जयत की दो आखें।

"समझे विश्वभर! मैं इस रास्केल को पुलिस को हैड ओवर करना चाहता हूं।"

आवाज फिर आत्मीय हो गयी थी। मगर माथे पर पसीना बूद-बूद कर जम रहा था। धीरे-धीरे आंखो के चारो ओर उतर रहा था।

विश्वंभर वैसे ही अविचलित है। सिर्फ एक बार नीचे पडी फूलदानी पर नजर डाली है।

"अरे बैठो। चाय तो पी लो।" कहते हुए काच के गिलास मे गरम-गरम चाय उड़ेल दी। कई बार उसका हाथ कापता है।···मगर इस समय अंदर की चाय थरथरा रही थी।

विश्वभर ने ऊपर की ओर देखते-से कहा—

"लक्ष्मी पास की गली मे रहती है। पाचवा महीना चल रहा है उसे।"

"हे! हे! हे!"

घबराहट से भरी हसी। हाथ लड़खड़ाकर गिलास को टेबुल पर रखने से पूर्व टेबुल के काच पर दो घूट चाय छलक गयी।

"ह्वाट नानसेंस!···हा···हा···हा यह भी कोई न्यूज है। तुम लोग

भी···वड़े अजीव आदमी हो। अरे···यह लक्ष्मी की वात कहां से जुगाड़ लाये ?···"

विश्वंभर के निचुड़े चेहरे और कांच-सी आंखों में कोई परिवर्तन नहीं। सचमुच काफी थका हुआ चेहरा। मगर जयंत के अंदर से सारी हंसी भस्स कर निकल गयी। वह वेवकूफ की तरह देखता रह गया। चेहरे पर अचानक एक गहरी काली छाया घिर आयी। हाथ-पैर और आंख के कोये अवश होकर लटक गये। सव तरफ से रक्त झिमझिम करता निचुड़ रहा है अचानक चौड़े हो गये किसी अदृश्य क्षत के अंदर। जयंत सचमुच वहुत ऊंची किसी निशाख डाल पर खड़ा दिख रहा है। पैरों के तलवे तक झनझनाहट फैल जाती है।

दरवाजे की ओर तैर जाती है किसी अशरीरी आत्मा की तरह विश्वंभर मंगराज की छाया।

तभी स्पष्ट आवाज में सुनाई पड़ा—"अरे ! मैं सव जानता हूं। मुझे वह सव क्या भिड़ा रहे हो ?" जयंत की छाती धड़क रही थी। सहमी-सहमी निगाहों से चारों ओर देखा—कहीं कोई न था।

पीछे घड़ी की टिक-टिक सुनाई पड़ रही थी। सांस रोकने पर छाती की धड़कन सुनाई पड़ जाती।

मगर एकदम धीरे-से कोई अंदर दाखिल हुआ था। और उसके पीछे-पीछे एक और आदमी था।

अचानक जयंत पहचान नहीं पाया। सिर्फ विह्वल-सा देखता रह गया। इसके वाद आंखों में साधारण दृष्टि लौट आयी थी। खूव खींच-तान की हालत में ऐसा तो कभी नहीं हुआ। मिसेज कृष्णमूर्ति के वेड रूम में उनके पति घुस आने पर भी तो नहीं···मगर···

जयंत वैसे ही चुप वैठा था।

चश्मे के नीचे से विद्याधर राय ने कहा—"सोचा मैगेजीन का यह ईशू खुद आप को दे आता।···यह वाद में वांटने की वात थी। ये इधर आ रहे थे। सोचा खुद ही देता चलूं। इसमें कुछ लेख आपके लिए ही हैं।"

जयंत परिड़ा धन्यवाद देना भूल गया।

× × ×

कुछ क्षण वैसे ही खड़े रहकर विद्याधर राय मुड़कर चले गये। उनके चेहरे पर भी कैसी एक हंसी। अप्पया ने काफी देर बाद अंदर झांका। अंधेरा हो रहा था। फिर घर लौटेगा। उनके चेहरे की छाया ने शायद कमरे की स्थिर छाया को हिला दिया। जयंत की आंखें टिमटिमा गयीं। बायें हाथ से फोन उठाकर कहने लगा—

"यस थ्री सिक्स नाइन। हां···कौन मूलचंद। यार आज शाम को हमारे यहां आओ··· जरूरी बात है···समझे ?···अच्छा—उसे भी साथ लेते आना···। वहीं ठीक रहेगा।···अच्छा तो फिर साढ़े दस बजे।··· नमस्ते नमस्ते।"

बाबू के जूतों की ठक-ठक अंधेरे में मिलती जा रही थी। अप्पया टटोल-कर ठंडी चाय पी रहा था।

सत्रह

आजकल सुजाता आईने के सामने देर तक बैठी रहती है।···वेणी पर जाकर हाथ अटक जाता है। आंखों पर पलकें नहीं पड़तीं। लगता है स्टूल पर उसका शरीर बैठा है, और आंखें तैर जाती हैं दूर किसी राज्य की ओर। वहां सारी दुनिया मुग्ध है। वहां खरीदे गुलाम की तरह सब एक नजर भर देख लेने को घेरे हुए हैं। अचानक क्या कुछ हो गया कि अंदर हलचल हुई और वह लौट आयी।

जयंत को आये आज महीने से भी आठ दिन ऊपर निकल गये। वह कोई इस तरह का बेहया या बेआबरू है ? उसके साथ कायदे से पेश न आओगे तो वह इस तरह के गंवार लोगों के पास क्यों आयेगा ! मूर्ख, अमानुष का हाथ पकड़ा जो जीवन माटी हो गया। अब भी इस गंवार के लिए यह सब समझना बाकी है ?

"···मगर, सच क्या जयंत कभी मेरी बात सोचता है ? वह ट

भी···बड़े अजीब आदमी हो। अरे···यह लक्ष्मी की बात कहां से जुगाड़ लाये ?···"

विश्वंभर के निचुड़े चेहरे और कांच-सी आंखों में कोई परिवर्तन नहीं। सचमुच काफी थका हुआ चेहरा। मगर जयंत के अंदर से सारी हंसी भस्स कर निकल गयी। वह बेवकूफ की तरह देखता रह गया। चेहरे पर अचानक एक गहरी काली छाया घिर आयी। हाथ-पैर और आंख के कोये अवश होकर लटक गये। सब तरफ से रक्त झिमझिम करता निचुड़ रहा है अचानक चौड़े हो गये किसी अदृश्य क्षत के अंदर। जयंत सचमुच बहुत ऊंची किसी निशाख डाल पर खड़ा दिख रहा है। पैरों के तलवे तक झनझनाहट फैल जाती है।

दरवाजे की ओर तैर जाती है किसी अशरीरी आत्मा की तरह विश्वंभर मंगराज की छाया।

तभी स्पष्ट आवाज में सुनाई पड़ा—"अरे ! मैं सब जानता हूं। मुझे वह सब क्या भिड़ा रहे हो ?" जयंत की छाती धड़क रही थी। सहमी-सहमी निगाहों से चारों ओर देखा—कहीं कोई न था।

पीछे घड़ी की टिक-टिक सुनाई पड़ रही थी। सांस रोकने पर छाती की धड़कन सुनाई पड़ जाती।

मगर एकदम धीरे-से कोई अंदर दाखिल हुआ था। और उसके पीछे-पीछे एक और आदमी था।

अचानक जयंत पहचान नहीं पाया। सिर्फ विह्वल-सा देखता रह गया। इसके बाद आंखों में साधारण दृष्टि लौट आयी थी। खूब खींच-तान की हालत में ऐसा तो कभी नहीं हुआ। मिसेज कृष्णमूर्ति के बेड रूम में उनके पति घुस आने पर भी तो नहीं···मगर···

जयंत वैसे ही चुप बैठा था।

चश्मे के नीचे से विद्याधर राय ने कहा—"सोचा मैगजीन का यह ईशू खुद आप को दे आता।···यह बाद में बांटने की बात थी। ये इधर आ रहे थे। सोचा खुद ही देता चलूं। इसमें कुछ लेख आपके लिए ही हैं।"

जयंत परिड़ा धन्यवाद देना भूल गया।

× × ×

कुछ क्षण वैसे ही खड़े रहकर विद्याधर राय मुड़कर चले गये। उनके चेहरे पर भी कैसी एक हंसी। अप्पया ने काफी देरबाद अंदर झांका। अंधेरा हो रहा था। फिर घर लौटेगा। उसके चेहरे की छाया ने शायद कमरे की स्थिर छाया को हिला दिया। जयत की आखें टिमटिमा गयी। बायें हाथ से फोन उठाकर कहने लगा—

"यस थ्री सिक्स नाइन। हां···कौन मूलचद। यार आज शाम को हमारे यहां आओ···जरूरी बात है···समझे?···अच्छा—उसे भी साथ लेते आना···। वही ठीक रहेगा।···अच्छा तो फिर साढ़े दस बजे।··· नमस्ते नमस्ते।"

बाबू के जूतों की ठक-ठक अंधेरे में मिलती जा रही थी। अप्पया टटोन-कर ठंडी चाय पी रहा था।

सत्रह

आजकल सुजाता आईने के सामने देर तक बैठी रहती है।···वेणी पर जाकर हाथ अटक जाता है। आखो पर पलकें नही पड़ती। लगता है [illegible] पर उसका शरीर बैठा है, और आंखें तैर जाती हैं दूर किसी [illegible] की ओर। वहां सारी दुनिया मुग्ध है। वहां खरीदे गुलाम की तरह [illegible] नजर भर देख लेने को घेरे हुए हैं। अचानक क्या कुछ हो गया कि [illegible] हलचल हुई और वह लौट आयी।

जयंत को आये आज महीने से भी आठ दिन ऊपर [illegible] कोई इस तरह का बेहया या बेआबरू है? उसके साथ [illegible] आओगे तो वह इस तरह के गवार लोगों के पास [illegible] अमानुष का हाथ पकड़ा जो जीवन माटी हो गया। [illegible] लिए यह सब समझना बाकी है?

"···मगर, सच क्या जयंत कभी मेरी [illegible]

अफसर है। कितने लोग उसकी प्रतीक्षा में होंगे ? उसके अनुग्रह के लिए ऐसे कितने छोटे-मोटे किरानी अपना सर्वस्व दे देते होंगे। लेकिन इन्हें अक्ल नहीं आयी। सामंत ठहरे···।"

"आज गाड़ी मंगवा भेजी है। देखा जाये। जयंत के साथ आफिसर्स क्लब क्यों न जाऊंगी ? ये गजेंद्र महाराज तो वहां की देहरी लांघने लायक भी नहीं हैं, न सही। पर मुझे अपने मित्र के साथ जाने की कोई मनाही है ?···लोग सोचेंगे···मारो गोली लोगों को। आदमी अपनी तरह जीना चाहे तो इतनी बातें, इतने लोगों की खातिरी करने से नहीं चलेगा।"

बेचैनी से स्टूल को हटाकर उठ पड़ी।

"लपचेड़ु, खुशामदी कहीं का। क्यों साड़ी लाकर इस तरह पिलपिला रहा है ! क्या नये सिरे से खसम बनना सीख रहा है ? हिजड़ा कहीं का ! !···"

"मगर साड़ी है जानदार। कहां से जुगाड़ लाया ? जयंत उस दिन संबलपुरी साड़ी को काफी एप्रिशियेट कर रहा था। दूसरी ट्विकलवाली भी कोई बुरी तो नहीं। इधर इतना जुगाड़, उधर क्या ना शाम होते ही छू, फिर इस इलाके में दर्शन नहीं ! बाकी बचपन के साथी जयंत को कह कर जाता है या नहीं, यह जानने की बात।"

आईना देखकर छोटी-छोटी लहरदार हंसी निकल पड़ी सुजाता के चेहरे से—"सच, कितना भोंदू है ! क्या कुछ भी नहीं समझता यह ?"···

अचानक सुजाता का रास्ता रोके दिख गयी। एक हथेली।—दृढ़ता कह रही है—"बस ! वहीं रुक जाओ।"

रास्ते पर सफेद पोशाक में खड़े संतरी से भी अधिक स्पष्ट है वह निर्देश। सुजाता चौंक उठी।—

"अच्छा, तो क्या वह जान-बूझकर यों कर रहा है ?"

"उस दिन की बात याद आ गयी। विश्वंभर गुस्से में आने पर खूब भयंकर हो सकता है। पता नहीं उसके मन में क्या है। वरना ऐसे क्यों करता ? आह ! जो हो, जयंत क्या उससे टक्कर नहीं ले सकेगा ? फिर इतनी चिंता क्यों ?"

आईने में बगल से देह दिख गयी। सहम गयी सुजाता। दोनों आंखें

स्थिर देखती रह गयी।…

बात की सच्चाई एक ही सांस में झलक गयी। उसकी समूची देह कांप उठी किसी अज्ञात वात्या के आवेग से। सुजाता बार-बार थूक निगल कर किसी अनात्मीय के इजलास में अपलक सारा बयान सुन गयी। कई बार चोरी करते समय वह पकड़ाई में आते-आते बच गयी है। परंतु अब सुनना होगा अंतिम फैसला। सारे शहर में हाय-तौबा मच जायेगी। व्यभिचारिणी होने की तो सबकी इच्छा है, मगर वह निंदा सहने का साहस कितनों में है?

सुजाता बार-बार जितनी भी हिम्मत करे, उसके होंठ सूखते जा रहे हैं। बिना मतलब काफी थकावट का अनुभव हो रहा था उसे। दोनों आंखें मिच रही थीं। पास की आरामकुर्सी पर निढाल हो गयी। कानों के पास देर तक सांय-सांय रात का गरजना पड़ता रहा। और छाती के अंदर की धड़कनें साफ सुन पा रही थी। कोई भयंकर सपना देखकर गहरी थकावट लगती है, हाथ-पैरों में सत नहीं रहता, कुछ वैसी ही हरारत हो रही थी।

किसी खूब अंधेरे और गहरे धसान में गिरती जा रही है। शायद दूर से जयंत हाथ बढ़ा रहा है, मगर पहुंच नहीं पाता। धसान के किनारे कमर पर हाथ रखे अट्टहास कर रहा है विश्वंभर। सुजाता फिसल रही है सनसनाती हवा में! देह पर एक तार तक नहीं लाज ढंकने के लिए!

कुछ संभलकर बैठ गयी। वाछा ने आकर कहा—"बहूजी! चाय लें।"…इस तरह प्यास मिटाने के लिए उसने कभी चाय नहीं पी थी। चाय की भाप ने क्रमशः उसके शीतल स्नायुओं में हलचल भर दी थी—कई तरह के स्वप्न फिर उस भाप से पंख पसारकर निकल पड़े।…

"जयंत इसके लिए दायी है, इसका प्रमाण? लोगों के कहने से हो गया? विश्वंभर क्या खुल्लम-खुल्ला बीच बाजार में यह सब कह सकेगा? इससे पहले तो उसने कभी कुछ नहीं कहा। कभी कोई शक भी नहीं किया। इतने दिन बाद शायद पति देव को नया संदेह हुआ है। ओह! तो फिर इसीलिए यों दूर-दूर फिरते हैं। इधर प्यार दिखा देंगे तो हम उनकी चतुराई पर संदेह नहीं कर सकेंगे। मगर उधर शाम को कभी दरशन नहीं। तो वह फिर काफी सतर्क हो गया लगता है। सब जानता है। शुरू से अब तक सारी बातों पर शक करता रहा है।"

निकल जा यहां से। तू यहां रहकर मुझ पर निगरानी करने चला है? हूं।"

"आप मंगराज के घराने की बहू ठहरीं। बहूरानी आपको किया आपको ही सुन्दर दिखता है तो? मुझे चप्पल से पीटेंगी? बिशु बाबू को गोद में खिलाया है, मानुष किया है। न मही, अब आपके हाथों चप्पल खा लूंगा···इसमें क्या है? इतने बड़े घर की टेक है, यों पैरों में गिरती देखता हूं तो सहा नहीं गया। आज मुंह खोलकर कह दिया। आप निकालें या नहीं, मैं खुद कल निकल जाऊंगा। मेरे यहां रहने में ही तो दिक्कत है।"

"क्या बोला! रे स्काउंड्रल! तेरे रहने से दिक्कत होगी? मैं यहां तेरे से छुपती हूं या डरती हूं? ना केयर करती हूं। तू तो एक कुत्ता है। क्या हिम्मत जो इतनी बढ़-चढ़कर बातें कर रहा है। तेरे बाबू तो क्या उसका बाप भी तुझे बचाने से रहा। सीधा पुलिस को हैंड ओवर कर दूंगी। तेरे बक्से में एक हार रख दिया तो दस वर्ष तक चक्की पीसते रहोगे? हूं। तू मुझे जानता नहीं, मैं मायाधर राय की बेटी हूं। पिताजी होते तो तुझे अभी हत्या के अपराध में फांसी चढ़ा देते।"

हाथ के कप-प्लेट आंगन की ओर फेंककर सुजाता जब चीख उठी तब उदास आंखों से खड़ा रह गया बांछा।

"निकल जा मेरे घर से इसी वक्त। चला जा यहां से। स्साला! बास्टर्ड! इसकी टेक गिरती है! तू क्या टेक दिखा रहा है मायाधर राय की बेटी को। अरे थू, तेरा बाप, तेरा बाबू और उनके चौदह पीढ़ी जहां हगते हैं वहीं खाते हैं। एक से दूसरा कपड़ा पहनते नहीं। दांत में ढेर सारा मैल भरा होगा, देह में बदबू भरी होगी, सूअर-बैल की तरह। ये क्या जानें कि सोसायटी क्या होती है, समाज क्या होता है, चलन क्या होती है? मेरा बाप चक्कर में पड़कर यहां दे गया।···अब तू मुझे टेक दिखा रहा है? टेक या कुछ और वे?"

सांझ घिरते ही आ पहुंचे रवि और छवि। पार्क में खेलकर चेहरा और सारी देह पसीने में तर-बतर। मगर बीच रास्ते पर ही मां की आवाज सुन ली है। आंखों में छलछलाता हलका-सा भय भरा है। दबे पांव दाखिल हुए। खेलकर आने पर बांछा सबसे पहले उनका हाल-चाल पूछता

है। कुएं से पानी निकाल देता है। रात में साग-तरकारी की बातें कहकर उनका मन बहलाता।

आज वांछा को यों हा-कर खड़े देख वे भी आगे न जा सके।

सुजाता मुड़कर फिर ड्रेसिंग टेबुल पर चली गयी। कुछ-कुछ सुनाई पड़ जाये इस भंगिमा में बड़बड़ायी—"क्या कहता ना टेक नीचे पड़ जाती है। हूं। नानसेंस!!"

छवि ने देखा, मानो बहुत कुछ समझ गयी है। रवि ने छवि की तरफ देखा। दोनों पीछे हट गये। मां ने आवाज लगायी, आईने में से—"अरे रवि!"—खूब चढ़ा हुआ गला। पता नहीं क्या कहेगी? रवि ने छवि की ओर देखा और बढ़ गया मां की तरफ। "रवि है साहसी आखिर।" छवि ने सोचा। वह एक तरफ खड़ी हो गयी।

गुस्से की आग में ऊपर का कड़ापन जल गया है। सुजाता का चेहरा रुआंसा होने को आया। जबान के बल पर ना इतना कुछ कह दिया। इसके बाद उसे लगा जो भय अंदर से आ नहीं पा रहा था, वह फिर हलचल करता, जटा हिलाता अपनी रोयेंदार पीठ उठा रहा है।

सुजाता ने क्षण भर के लिए रवि को छाती में खींच लिया। लगा, सब कुछ खत्म होने पर भी यह उसे आश्रय देगा।

पाप में अचानक चौंक उठने की तरह उसे एक ओर कर दिया। पाउडर को गले के चारों ओर झाड़कर वह कमरे में चली गयी। दो मिनट में निकलना होगा। समय हो गया। जयंत परिड़ा उसे ठग नहीं सकेगा। रवि ने बहुत बार फेंकना-पटकना सहा है। पर पता नहीं क्यों उस दिन उसे बहुत दुःख हुआ। कोहनी के बीच मुंह छुपाकर हिचकियां भरने लगा। क्यों रोया शायद वह खुद भी नहीं जानता। उसे जोरों से रुलाई आ गयी···मां को देखकर।

साड़ी की सलवट ठीक करते-करते आकर खड़ी हो गयी सुजाता। —"क्यों रे रोया क्यों? क्या हुआ? यह तो रोना लड़का है।" साड़ी की बॉर्डर पर नीचे नजर डालते हुए काफी अनमने ढंग से इतना कहा। फिर सिर ऊपर उठाकर रवि की ओर देखा। रवि के पेट से घनी कोह उठ रही थी। सचमुच जैसे कोई अनाथ हो। पल भर सुजाता की सांस गड़बड़ा गयी।

मगर परिस्थिति एकदम जरूरी। क्या किया जाये ? लौटकर बच्चे की बात देखी जायेगी।

आदतन वह बाछा को बुलाती।

लेकिन सतर्क होकर कहा— "अरे छवि ! देखना, यह क्या कह रहा है। बाप की तरह यह भी नामर्द है।"

इसी बीच आगन के उस ओर से एक ठाय-ठाय हसी सुनाई पडी। सुजाता इसके लिए बिलकुल तैयार न थी। अचानक फन उठाये साप को देखने की तरह चौंककर पीछे हट गयी एक बार तो। दीवार से सट गयी।

दो-चार ठहाके लगाकर विश्वभर आगन में आ गया था। वह उधर खडा देखता रह गया। रवि वैसे ही मुह ढापे खडा था। विश्वभर ने एक बार तो उस खिलाडी को पसीने में लथपथ हालत में देखा तेज निगाह से। छवि को पिताजी बहुत भयावने लग रहे थे। पता नहीं क्यो वह सिहर उठी। रवि के पीछे अपना हाथ बढाकर उसे वहा से ले गयी।

विश्वभर ने आखें फिराकर देखा तो सुजाता उसकी ओर मुह किये खड़ी है। फिर वही खें-खें कर दो-चार टुकडा हसी।

विश्वंभर धीरे से मुह मोडकर चल पडा। सुजाता ने घडी की ओर देखा। छह बजकर पैंतालीस। क्लब टाइम है सेवन थर्टी। चप्पल मे पैर डाला। एक बाकी था। लगा जैसे खूब गहरे में विश्वभर सब कुछ जानता है उसे बेवकूफ मान लेना उचित नही होगा। हो सकता है वह काफी डर-पोक हो, काम के समय पूरा नही उतरता। इसके हाथों कुछ भी होने से रहा। जाने दो उसे जो जानने···सुजाता ने दूसरी चप्पल भी पहन ली।··· फिर भी···बात इस तरह खुल्लम-खुल्ला नही हुई थी।

सुजाता ने स्वाभाविक ढग से आगन पार किया। उस दिन मगर अंदर से वह मजबूत नहीं हो पा रही थी। हाडो मे कही एक गहरी सिहरन का अनुभव हो रहा था उसे। चेहरे से बहुत सारे आग के झोंके भाप की तरह उतर रहे थे। हो सकता है स्नो वैसी ही लग रही थी।

उसके कदम अपने आप रुक गये। मुडकर पीछे देखा उसने। रसोई-घर के बरामदे में खंभो के पास दो और चेहरे उसे देख रहे हैं। रसोई में घुटनो पर मुह रखे बाछा नीचे की ओर देखता बैठा है।···नौकर पुराना

हो गया तो क्या वह सिर पर चढ़ेगा? उसे समझना चाहिए—जो हो आखिर वह नौकर है। फिर आंखें पड़ गयीं उन निश्चल चेहरों पर।··· खूब लंबे-चौड़े मैदान पर चिलचिलाती दोपहर में कहीं ऊपर कोई चील मंडरा रही है।···कोई बगुला खूब जोर से अंदर ही अंदर मथता हुआ घूम रहा था उसके सारे अस्तित्व को। मुंह मोड़कर आगे जाने की बजाय सुजाता नीचे की ओर देखने लगी। एक पल तो ऐसा लगा कि क्लब न जाये तो भी क्या हर्ज है। मगर सिर झटक दिया और स्वाभाविक तौर पर कदम आगे उठा दिये। आगे चल रहा है विश्वंभर। अब यह तो रोजमर्रे की बात हो गयी। शाम को जाकर सुबह को लौटता है। सुजाता ने भी इसे एकदम सहज मान लिया है। मगर आज···यह घमासान कुछ हो गया है अंदर ही अंदर। उसने पीछे से आवाज दी—"कहां जा रहे हो?"

सवाल के लिए कोई तैयार न था।···सुजाता भी नहीं। मानो कोई परदेसी सीढ़ी लांघ, बिना किसी की सुने घर में दाखिल हो गया हो।

विश्वंभर जहां का तहां रुक गया। पीछे देखे बिना सिर्फ कान लगाये खड़ा रह गया। सुजाता को अपने मन के मंच पर से अचानक एक बैठक-खाने से भारी भरकम असबाब उठाना पड़ रहा है। इसी क्षण उसे दृश्य बदलना होगा। एक लंबी सांस लेकर उसने सजा लिया वह मंच। और तैयार हो चुकी थी वह खुद भी।

"आप किधर चल पड़े?"

बहुत पुराना फूल। कोई पुरानी गंध महक गयी लगती है। मगर उत्तर में वही खें-खें जरा सी हंसी। लापरवाही से भरी। "एं! सचमुच तुम जानने को इतनी व्याकुल हो? तेरा उससे कुछ बनता बिगड़ता तो लगता नहीं मुझे। नानसेंस! तू मुझे पूछनेवाली होती कौन है? मैं अपनी इच्छा का मालिक हूं। मैं किसी को कैफियत देने के लिए बाध्य नहीं हूं।" ये सारी बातें किसी फटी-फटी हंसी के अंदर से रुंधी हालत में निकलने की कोशिश कर रही थीं। फिर जो हो चाहे···

विश्वंभर आगे बढ़ गया।

पीछे से आवाज दी।—"सुनोगे भी?"

एक और चेहरा चौंककर घुटनों से खुल आया था। दो जोड़ा आंखें

अपलक देख रही थी टकटकी लगाये।

विश्वभर पीछे मुड़े बिना सिर्फ खड़ा रह गया। कुछ समय बाद धीमे से मुड़कर सुजाता की ओर देखा। इस तरह लजाकर सुजाता को खड़ी होते उसने वर्षों बाद देखा होगा।

सुजाता ने अपनी मोटी-मोटी आंखों से पलकें ऊपर उठाकर एक बार देखा और फिर आखें झुका ली। कहा—"आज तुम कहीं नहीं जा पाओगे।" बहुत व्यंजना से झुक गये वे एकदम नरम, चिकने, मीठे-मीठे शब्द।··· विश्वंभर का रुखड़ा चेहरा तनिक कुंचित हो गया। उसके वे बेखून होंठ और वे गहरायी आखें बेनामी श्मशान के चबूतरे की तरह कोई वार्ता नहीं दे पायीं।

सुजाता का वह वेश और वह भंगिमा तथा बातें कहने के ढंग में खूब धींगा-मुश्ती चली, हाथ मिलाकर एक हो जाने के लिए, एक स्वर में कुछ कह डालने के लिए। मगर सारी ताल बिगड़ गयी, बेसुरी हो गयी। किसी का किसी के साथ मेल नहीं हो रहा था। एक हिस्सा ढकते समय दूसरी ओर का उघड जाने की तरह हसी आ गयी विश्वभर को। उसकी वह खू-खू हंसी आकर खड़ी हो गयी दोनों के बीच में।

विश्वभर ने अपनी काटेदार ठुड्डी पर हाथ फिराया। आखों में छोटा-सा प्रश्न। सुजाता ने दीवार के सहारे टिकाकर चप्पलें रख दी। रेशमी चादर की तरह दिग्विजयी हसी से ढंक दी सारी बातें। काल की गति शायद पीछे हट गयी दस साल। हरी डालियों पर अनेक रंग-बिरंगे फूल। आकाश में बेशुमार नये बादलों के टुकड़े, असख्य मयूर।···यह सब विश्वंभर के लिए है। सुजाता जैसे और जिस लिए हसी थी दस बरस पहले, आज वैसे ही, उतनी ही जरूरी थी वह हसी। नीचे की ओर देखते हुए कहा—"आज न जाओ।"

सब कुछ के बावजूद क्या विश्वभर दो टूक हो गया? नये-नये सपनों की कोपलें चारों ओर खिल गयी। सूखे ठूठ को ढंकती हुई।

एक बार हाथ छू गया उस रुखड़ी ठोड़ी से। सपना पिघलकर बह गया।—विश्वंभर देख रहा था सुजाता जी-जान से कोशिश कर रही है उसे फदे में डालकर गहरे पानी तक ले जाने के लिए। बातों का चारा,

आंखों में वंसी, अंग-अंग का जाल विछा दिया है। खुद को वचाने के लिए वह विश्वंभर को धकेल देना चाहती है।

नरम से अंधेरे में वह कान में कहती है—"अवकी लड़का होगा तो उसका नाम देंगे 'जयंत'।"

ज्वालामुखी से भड़भड़ाकर निकल पड़ा लावा, राख, धुआं, धमाका हुआ—विश्वंभर मुड़कर वाहर दरवाजे के पास चला गया। सुजाता, रवि की मां, छवि की मां सव कोलाहल करते पीछे रह गये। नदी के उस पार विश्वंभर को और कुछ सुनाई नहीं पड़ता।

मानो एक अपमान का झोंका सुजाता के चेहरे पर सटकारता गुजर गया। आग की लपटें उसकी आंखों पर एक-एक धार-सी उतरती गयीं। मायाधर राय की वेटी पूंछ पर खड़ी होकर फुंकार उठी। नथुनों के रास्ते तांतों की सारी सांस एक ही वार में नहीं आ पा रही थी। एड़ी से चोटी तक वह थर्रा रही थी जोरदार धक्के के दवाव में।

सुजाता ने ठोकर मारकर चप्पलों को कर दिया दरवाजे की ओर। रोड पर वह नीम का पेड़ वैसे ही शांत, वैसे ही चुपचाप खड़ा था।

नीम के पेड़ के सहारे सोया था वह सुनसान रोड। दायीं ओर विश्वंभर तथा वायीं ओर सुजाता दो धाराओं की तरह वहते चले गये। किसी ने भी मुड़कर नहीं देखा।

नीम के पेड़ तले आकर चुपचाप खड़ी हो गयी तीन छोटी-वड़ी छायाएं। तूफान के अंत में कपोत की तरह रवि और छवि आश्रय लिए वहां खड़े थे। नीम के पेड़ और वांछा ने मिलकर वांहें फैला दी उन पर। कुछ न समझ में आये तो भयंकर रात के समय डर के मारे रोना आ जाता है। उसी रुलाई को याद करते-करते उसी रुलाई भरी आवाज में वांछा ने कहा—"अपन चलें! चल दादा के पास चल देंगे।···"

अठारह

जयराम का इस्तीफा अभी भी एक रहस्य बना हुआ है। अनेकों की धारणा है कि उन्हें किसी चक्कर में पड़कर नौकरी छोड़नी पड़ी। नौकरीवाला मन शायद उन्होंने पाया ही न था। कानून-कायदे की बात आने पर मुंह खोल दो बातें कह देनेवाला आदमी नौकरी हथेली पर रखे चलता है। शायद बेटी ही उनका आखिरी बंधन थी। उसे विदा करने के बाद बंधकर रहना उनके लिए मुश्किल था। शायद वे खुद-ब-खुद इस्तीफा दे देते। नमक-मिर्च लगाने पर बात और कुछ बढ़ गयी। लेकिन जब उन्होंने अन्याय कभी सहा नहीं तो कैसे वे झूठे अभियोगों को बिना कोई प्रतिवाद किये चुप-चाप मान गये।—एक दल था जो बीच-बीच में कुछ इसी किस्म की बातें फुसफुसाया करता। अब हाट में-बाट में लोग जोर देकर सुना-सुनाकर कहने लगे—भला बिना चिनगारी के कहीं धुआं होता है? इसमें कोई बात जरूर रही होगी। वह भिल्ली भगत बनी न रह सकी ज्यादा दिन तक। पकड़े जाकर जगहंसाई से पहले ही इस्तीफा दे आये। घरानेवाले आदमी। बाप ठहरा पंडित। गज भर भी जमीन न होगी। तो भी सिर ताने चलता है उसका बाप। करोड़पति का-सा नखरा। बेटे का भी वही मगज। किसी की कोई खातिर नहीं। ऐसे लोगों की नाक रगड़ाई न होगी तो किसकी होगी? क्या कहा था हम खाड़े की धार पर चलनेवाले लोग हैं! झुकना हमारी कुंडली में नहीं! हूं! तो कैसे फिर दुम दबाकर इस्तीफा दे आये'''।

मगर जयल परिडा के दफ्तरवाले सब जानते हैं कि यह सब सरासर झूठ है। फिर जयराम बाबू का यों हट जाना सबको अचंभे में डाल रहा था। जो आदमी एक चपरासी की पेंशन के लिए सरकार के गले में दांत गड़ाकर दुह लाया था, अपनी बारी आने पर यों ठंडा पड़ गया? साफ-साफ मोर्चा क्यों नहीं लिया?

विद्याधर आते समय रास्ते में यही सोचते रहे। जयराम बाबू क्या निहायत डरपोक हैं? नहीं। उनमें कहीं कुछ दुर्बलता छिपी है। चलो पूछ

ही लिया जाये तो क्या है ?

अब जयराम बाबू एक सस्ते-से मकान में आ गये हैं। उनका रिक्शा माणिकशाह सेठ ने खरीदकर भाड़े पर चला रखा है। आजकल कोई एक तेलगू उसे चलाता है। बीच-बीच में रिक्शे में बैठकर जाते समय जयराम बाबू पहचान जाते। हां हां···ऐसा भी होता है। कालू बहुत रोया। कभी-कभार खुलकर चला ही आता है। अपने आप घर बुहार देता है। इधर-उधर का कुछ काम-धाम कर देता है। पीने के लिए चवन्नी लेकर चला जाता है।

दोपहर में जरूर घर पर होंगे—यह सोचकर विद्याधर राय ने चौराहे पर से ही नजर डाली। दरवाजे पर ताला झूल रहा है।—नहीं अंदर से बंद है ? उन्हें वैसा ही लगा। तो आना बेकार नहीं हुआ।

किवाड़ पर हाथ रखते ही खुल गया। सिगरेट के धुएं में घुसते-घुसते विद्याधर बाबू ने कहा—

"जयराम बाबू हैं ?"—हड़बड़ाकर—"मैं आऊं ?"

एक कमरा। दस बाई दस फुट। सिर्फ एक खाट। एक टेबुल और कुर्सी भी एक ही। कुर्सी की ओर हाथ कर जयराम ने कहा—"बैठिये।"

चारों ओर एक नजर देखकर विद्याधर राय ने कहा—"और कहिए। इधर क्या काम चल रहा है आपका ? उस दिन आप हमारी पार्टी के दफ्तर से सारे संबंध तोड़ आये। मगर मैंने सोचा व्यक्तिगत संपर्क तो कम-से-कम रहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। न सही आपका तर्क अलग है, मैं वह सब स्वीकार नहीं कर पा रहा। तो क्या एक दोस्त के रूप में पाने लायक भी मैं नहीं रहा ?"

"मुझसे दूसरा लेख अदा करने की तारीख क्या है ?"

"इसके लिए तो नहीं आया।"

"उसके लिए तो बिलकुल आये बिना भी चलेगा। मैंने तय किया है, मैं अब और बिलकुल नहीं लिखूंगा।"

"अजीब आदमी हैं आप भी। आपने तो वादा किया था। बिना कारण ऐसा फैसला कर डाला ? बड़े ताज्जुब की बात है। आप भी बेढंगे आदमी हैं।"

जयराम बाबू थोड़ा हंसे।

"बेढंगे का तो कोई अर्थ भी है। मगर ढंग का कोई मायने नही। फिर मैं कोई काम करता हूं, वह सकारण है या अकारण, यह क्या मुझे समझाना पड़ेगा?"

"हालांकि यह जरूरी हो, सो बात नही। फिर भी एक बात कहूंगा। अगर किसी का कोई आचरण न समझ में आये तो लोग शक-शुबहा करने लग जाते हैं।"

"करें।"

विद्याधर किसी से इस तरह की भिड़ंत के आदी नहीं हैं। अचानक पूछ बैठे—"मिसाल के तौर पर अपने इस्तीफे की ही बात लें। कोई यह सोच ले कि आप सारे अभियोगों को स्वीकार कर गये तो क्या कोई गलती होगी? उस छोकरे को सबक न सिखाकर यों पीछे हट जाने से यही लगता है कि आप उससे डरते हैं और जान-बूझकर अन्याय के आगे सिर झुका देते हैं या अभियोगों का प्रतिवाद कर खुद को निर्दोष प्रमाणित करना आपको सुविधाजनक नही लगा। कभी-कभी ऐसे तर्क भी कानों में पड़े हैं।"

आपके कान में पड़े या नही, यह प्रमाणित करने की बात है, मगर मेरे कानों में सिर्फ अभी पड़े हैं, इसमें कोई संदेह नही। चलिए यही मान लें कि यह आपका अपना तर्क है।"

"च् च् च्...आप तो बस यों हर बात को उल्टा लेंगे। मैं क्या आपको जानता नही या जयंत परिडा को नही पहचानता? यह सब मैं क्यों सोचने चला? मेरे कहने का मतलब यह है कि आपकी परिस्थिति में मैं होता तो अंत तक लड़े बिना न छोड़ता। मैं जानता हूं कि आप मुझसे कम दबंग नहीं हैं। तभी तो इस्तीफेवाली बात समझ में नही आती।...सचमुच, जयराम बाबू यह इस्तीफा क्यों?"

"तो क्या जयंत परिडा के इजलास में खुद को निर्दोष साबित करता? एक सीमा होती है जिसके अंदर अभियोगों पर विचार हो सकता है। उसके आगे नहीं। इस तरह कोई कही जो मन में आया कह दे और मैं वहा फिर कैफियत देता फिरूं?...रिडिक्यूलस!!...फिर भी जानता

ही लिया जाये तो क्या है ?

अब जयराम बाबू एक सस्ते-से मकान में आ गये हैं। उनका रिक्शा माणिकशाह सेठ ने खरीदकर भाड़े पर चला रखा है। आजकल कोई एक तेलगू उसे चलाता है। बीच-बीच में रिक्शे में बैठकर जाते समय जयराम बाबू पहचान जाते। हां हां···ऐसा भी होता है। कालू बहुत रोया। कभी-कभार खुलकर चला ही आता है। अपने आप घर बुहार देता है। इधर-उधर का कुछ काम-धाम कर देता है। पीने के लिए चवन्नी लेकर चला जाता है।

दोपहर में जरूर घर पर होंगे—यह सोचकर विद्याधर राय ने चौराहे पर से ही नजर डाली। दरवाजे पर ताला झूल रहा है।—नहीं अंदर से बंद है ? उन्हें वैसा ही लगा। तो आना बेकार नहीं हुआ।

किवाड़ पर हाथ रखते ही खुल गया। सिगरेट के धुएं में घुसते-घुसते विद्याधर बाबू ने कहा—

"जयराम बाबू हैं ?"—हड़बड़ाकर—"मैं आऊं ?"

एक कमरा। दस बाई दस फुट। सिर्फ एक खाट। एक टेबुल और कुर्सी भी एक ही। कुर्सी की ओर हाथ कर जयराम ने कहा—"बैठिये।"

चारों ओर एक नजर देखकर विद्याधर राय ने कहा—"और कहिए। इधर क्या काम चल रहा है आपका ? उस दिन आप हमारी पार्टी के दफ्तर से सारे संबंध तोड़ आये। मगर मैंने सोचा व्यक्तिगत संपर्क तो कम-से-कम रहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। न सही आपका तर्क अलग है, मैं वह सब स्वीकार नहीं कर पा रहा। तो क्या एक दोस्त के रूप में पाने लायक भी मैं नहीं रहा ?"

"मुझसे दूसरा लेख अदा करने की तारीख क्या है ?"

"इसके लिए तो नहीं आया।"

"उसके लिए तो बिलकुल आये बिना भी चलेगा। मैंने तय किया है, मैं अब और बिल्कुल नहीं लिखूंगा।"

"अजीब आदमी हैं आप भी। आपने तो वादा किया था। बिना कारण ऐसा फैसला कर डाला ? बड़े ताज्जुब की बात है। आप भी बेढंगे आदमी हैं।"

जयराम बाबू थोड़ा हंसे।

"बेढंगे का तो कोई अर्थ भी है। मगर ढंगे का कोई मायने नही। फिर मैं कोई काम करता हूं, वह सकारण है या अकारण, यह क्या मुझे समझाना पड़ेगा?"

"हालांकि यह जरूरी हो, सो बात नही। फिर भी एक बात कहूंगा। अगर किसी का कोई आचरण न समझ मे आये तो लोग शक-शुबहा करने लग जाते हैं।"

"करें।"

विद्याधर किसी से इस तरह की भिड़ंत के आदी नही हैं। अचानक पूछ बैठे—"मिसाल के तौर पर अपने इस्तीफे की ही बात लें। कोई यह सोच ले कि आप सारे अभियोगों को स्वीकार कर गये तो क्या कोई गलती होगी? उस छोकरे को सबक न सिखाकर यों पीछे हट जाने से यही लगता है कि आप उससे डरते हैं और जान-बूझकर अन्याय के आगे सिर झुका देते हैं या अभियोगो का प्रतिवाद कर खुद को निर्दोष प्रमाणित करना आपको सुविधाजनक नही लगा। कभी-कभी ऐसे तर्क भी कानो मे पड़े हैं।"

आपके कान मे पड़े या नही, यह प्रमाणित करने की बात है, मगर मेरे कानो मे सिर्फ अभी पड़े हैं, इसमें कोई सदेह नही। चलिए यही मान लें कि यह आपका अपना तर्क है।"

"च् च् च्'''आप तो बस यो हर बात को उल्टा लेंगे। मैं क्या आपको जानता नही या जयंत परिड़ा को नही पहचानता? यह सब मैं क्यों सोचने चला? मेरे कहने का मतलब यह है कि आपकी परिस्थिति मे मैं होता तो अंत तक लड़े बिना न छोडता। मैं जानता हू कि आप मुझसे कम दबग नही हैं। तभी तो इस्तीफेवाली बात समझ मे नही आती।'''सचमुच, जयराम बाबू यह इस्तीफा क्यों?"

"तो क्या जयत परिड़ा के इजलास मे खुद को निर्दोष सावित करता? एक सीमा होती है जिसके अंदर अभियोगो पर विचार हो सकता है। उसके आगे नही। इस तरह कोई कही जो मन मे आया कह दे और मैं वहा फिर कैफियत देता फिरूं?'''रिडिक्यूलस!!'''फिर भी जानता

हूं, सच को बार-बार प्रतिष्ठित करना पड़ता है। अफसोस तो यह है कि धर्म को बार-बार स्थापित करना पड़ता है। सीता बार-बार अग्नि परीक्षा देती रही है। अजीब है यह दुनिया। हम रात भर में सूरज को भूल जाते हैं और वह बेचारा सुबह मुंह लटकाये आकर अपनी उपस्थिति साबित करता है। अंधेरे के लिए हालांकि हम कभी कोई प्रमाण तलब नहीं करते। वह तो हमारे खूब अंदरवाला परिचित उपादान है।"

"तब तो निर्दोष साबित करना निहायत जरूरी था।" जयराम की दोनों आंखें सिकुड़कर छोटी और तीखी दीख रही थीं। उन्होंने बिलकुल अप्रत्याशित ढंग से कहा—"आपको अगर कहा जाये कि आपके घर में बरतन मांजनेवाली छोकरी के साथ आपके अश्लील संबंध हैं, क्या आप अपनी निर्दोषता सिद्ध करने बैठेंगे?"

अचानक विद्याधर राय खें-खें कर जोर से हंस पड़े। अंत में जयराम भी उनके साथ शामिल हो गये। विद्याधर राय के घर काम करनेवाली छोकरी की उम्र उन्सठ के पास होगी। काली, कानी, फिर कबाई खाकर बोलती है। देखने पर दया ही आयेगी या फिर घृणा। और कोई भाव आदमी के मन में उठ ही नहीं सकता। हंसते-हंसते विद्याधर राय ने कहा--"हां बात करीब-करीब ऐसी ही है।"

परिहास की ऊष्मा क्रमशः उतर गयी। पांच मिनट बाद वे उसी तरह चालीस वर्ष आगे आ गये। जयराम दीख रहे थे पहले जैसे उदास और विद्याधर राय लग रहे थे उसी तरह विचारों के बोझ से दबे लड़खड़ाते हुए।

कुछ देर तक हत्थे पर ठोढ़ी टिकाये शून्य की ओर ताकते रहे। बड़बड़ाते-से कहने लगे—

"और नहीं! दुनिया को सहना मुश्किल लगता है। कैसी भी तो हताशा लगती है। सच मानो आधी रात के समय अपने बंद कमरे में उम्र का हिसाब लगाते-लगाते"—कह डाला उन्होंने।

जयराम सिगरेट लगा रहे थे।

विद्याधर बाबू ने फिर कहा—"ये आदमी क्या ऐसे ही रह जायेंगे? इनके लिए कुछ भी नहीं किया जा सकेगा? जिसने जो पाया, खा गया।

इसका कोई प्रतिकार नहीं? जयंत परिडा सब पर गाडी रौंदता चला जायेगा और हम कसूरवार की तरह सहते जायेंगे?"

विद्याधर बाबू अपनी असहायता की सूनी कोठरी से आ चुके थे, किसी अपराह्न में आम सभा के मंच पर।

"*हम नपुंसक नहीं हैं। न सही, हम सारे समाज की जहर भरी नस काट न सके। कम-से-कम वह है और सब मिलकर उसे तोड सकेंगे, इतनी हिम्मत तो जुटा सकेंगे। किसी आदमखोर को घेरकर गोली मार देने पर कुछ निरीह गाय-बैल तो बच जायेंगे।*" विद्याधर राय बातों पर तीर साध कर भाषण देते हैं। 'आग लगी' कहते न कहते आंखों में सचमुच आग जल उठती है। सारी दुनिया को वे घास की तरह जलाते चले जाते है। मगर आज दक-दक करती वे लपटें निकल रही है, हालांकि वह तेज नहीं है। कैसे भी तो तंबू-चंदोवा का घटाटोप मुड-मुचकर सिकुड आया है।

जयराम बाबू की आंखों के आगे हल्के बादलों की तरह धुआं तैर गया। अंदर खूब गहरे मरक गया वह नीला-नीला आकाश। काफी सूना-सूना लग रहा है यह सारा घर। सामने रोड पर कोई मोटर साइकिल आकर गुजर गयी। दोनों ने शायद देखकर भी नहीं देखा। हो सकता है समझकर भी न समझा हो।

विद्याधर की दीर्घ सांस में एक समूचे जीवन की कहानी बहकर हवा में मिल गयी।

उस दिन सुबह की बात सोच रहे हैं। भूखा होने पर आदमी फिर आदमी नहीं रह जाता। भूख को जीत लेने पर न कोई और योजना की जाती। किसने सोचा था कि आर्तबंधु बेवर्ता जैसे पुरखे कर्मठ मेंबर इस तरह के जंगली क्षणों में उस पहाड़ी आदिवासी लडकी पर बलात्कार कर बैठेंगे। दइतारि प्रधान भी पांच सौ रुपयों पर अपना कर्तव्य भुला देंगे। धन्य है रे कामिनी-कांचन! तुम दोनों आज तक आदमी को ठोकरों में डाले शासन करते चल रहे हो। किस पर आस्था रखें? ···क्या नाम उस छोकरे का— पीतवास स्वाईं, साफ-साफ कह बैठा कि किसी और संस्था में जगह न मिली तो पेट भरने के लिए आपकी संस्था में चला आया। हो-हल्ला को सामयिक धंधा मान बैठा था। क्लर्की मिली कि मुडकर भी न देखा और

चला गया। मुट्ठी भर भात दरवाजे पर बिखेर दो, इस दरिद्र देश में ऐसा कौन है जो चुगने न चला आयेगा। सब कुछ अर्थ के अधीन है। मोहन शाहा —हिसाब-किताब देखा करता था। सारी जाली रसीदें, झूठे अंगूठे बिठा-बिठाकर काफी पैसा मार लिया। अब इस्तीफा देकर अपना काम-धंधा करने की बात सोच रहा है। सब साले ठग हैं। भूखे हैं। यहां चरित्र खोजना सरासर गलत है।

कुर्सी पर विद्याधर को बेचैनी लग रही थी। थोड़ा सरककर पैरों को बदलकर पूछा—"अच्छा, जयराम बाबू अब क्या योजना है?"

शायद जयराम ने कुछ नहीं सुना। किसी बूढ़े ज्वालामुखी में से ढेर सारा धुआं निकलकर आकाश में मंडरा रहा है। अपने अंदर लहराती आग की बात वह खुद ही जानता है।

विद्याधर राय अपने प्रश्न का उत्तर मानो खुद ही देते जा रहे थे— "यहां और कैसी योजना? यहां तो सारे कंबल को काला रंग कैसे किया जाय? यह कुत्ते की पूंछ, जो सोचते थे कि बात का समाधान हो गया, देखा तो जहां की तहां हैं। पेपर तो पढ़ा होगा। इतना बड़ा शहर। वहां नियम-कानून नाम को भी नहीं। जंगल राज चल रहा है। हम विद्रोह की बात समझते हैं।"—विद्याधर राय की मूंछें फूल रही थीं।···"विद्रोह हम नहीं समझ पाये तो साले तुम लोगों ने समझा है? दो-चार कंकड़ गर्ल स्कूल की बस पर फेंक दिये—बन गये विद्रोही। तुम लोग अनुशासनहीन, स्वेच्छा-चारियों के दल हो।—कहते क्या हो कि घर में घुसकर औरतों को खींच-कर मर्दानगी दिखला रहे हो? अकेले में देखा तो उसका गला काट डालते हो! ठीक है इस ढांचे को तुम नहीं मानते। उसे जड़ से उखाड़ना चाहते हो। इसका यह मतलब तो नहीं कि तुम उसी पहाड़ी गुफा में जाकर कच्चा मांस खाना चाहते हो! हूं!!"

विद्याधर राय आवेश में भर गये थे।

जयराम ने अचानक पूछ लिया—"कांग्रेस की टिकट के लिए कितना पैसा देना पड़ता है?"

"माने?···जयराम बाबू!"—विद्याधर राय को शब्द नहीं मिल रहे थे। "याने आप राजनीति के लिए एलेक्शन लड़ेंगे? हें। हें। हें। हें।

आपकी योजना बुरी तो नहीं लगती, क्योंकि वही दल तो क्षमताशील है। इसमें घुसे तो कहीं-न-कहीं ठिकाना तो लग ही जायेगा। खूटा भी उस बैलो की जोड़ी की टिकट पर जीत जायेगा। वह मुकुट देखने पर गांधी के नाम पर पागल यह देश सारे वोट उस खूटे के नीचे ढेर कर देगा। मैंने इस बात की बिलकुल कल्पना ही न की थी। शायद आप ठीक कह रहे हैं। आपको भी तो फिर जीना है। घरबार बसाना होगा। अपनी विद्या-बुद्धि का उचित दाम पाये बिना कोई क्यो अपने आपको बाजार में रखने जायेगा ? अनायास दो-चार लाख पा ही जायेंगे अगर घोड़ा-बाजार में कांग्रेसी टोपी पहनकर घुस सकें।"

ऊपर घुमड़ रहा धुआ हंसी में चारों ओर बिखर गया।

"विद्याधर बाबू आप बात को यो इतना आगे क्यो बढा ले जाते है ?"

"तो फिर कांग्रेसी टिकट का दाम क्यों पूछते है ? मैं जानता हूं पिछली तेईस तारीख को छगनलाल उड़ीसा के दौरे पर आया था। कुछ दाने बिखेर गया है। वह बुड्ढा डॉक्टर मंत्री होने के साल भर मे ही 'टें' कर बैठा, उसकी पुरानी नाडियो में मुफ्त का इतना घी नहीं भर सका। उस सीट के लिए सांडोवाली लड़ाई होगी। शायद आपके पास प्रस्ताव आया हो। उस घुन खाये दल मे अस्सी भाग तो निरक्षर है, मंत्री होने से पहले चाक लेकर दस्तखत करने का अभ्यास करते हैं। दो-चार गांधीवादी कंठस्थ कर आदिवासी स्कूल के भोले-भाले बच्चो के आगे भाषण का अभ्यास करते हैं। आईने के सामने बंद गले का कोट पहन बेचारी देहातिन पत्नी को सामाजिक अदब-कायदे की तालीम देते हैं। उसके हाथो पुरस्कार-वितरण करवाते हैं। जिस रास्ते रुपये आने की बात है, आते हैं। देखते ही देखते अपना दायित्व और कर्तव्य समझें या इस देश के इतिहास-भूगोल के बारे में कोई धारणा बनायें इससे पहले ही पांच साल बीत जाते है। जमा धन फिर खर्च होता है, फिर वोटो की खरीद चलती है। ऐसा ही है यह धंधा। रानी या राजा को पाकर यह साम्य मंत्री के प्रचारको का दल खुशी मे भर उठता है। भूला-भटका क्षमता मे आ जाये, फिर जीवन की सारी योजनाओं की सामर्थ्य आ जाती है। सारे सपनो के लिए रात काफी हो जाती है।"

"आप तो ये कुछेक वातें कंठस्थ कर चुके। आपसे ऐसे सवाल पू...
री गलती है। अच्छा, यह वताइये कि आप आये कैसे थे ?"

विद्याधर वावू अपनी सवसे प्रिय उत्तेजना से अधवीच में ही उवर
कर चिड़चिड़ा उठे, अचानक कुछ नहीं कह पाये।

फिर झुककर वैग उठाने की भंगिमा में वोले—"कोई खास काम न
था। इधर से जाते-जाते ऐसे ही आ गया था।"

"झूठ ! एक और कोशिश करें !"

"और कोशिश से क्या फायदा ? आपके मन लायक कोई उत्तर तो
है नहीं।"

जयराम वावू चुप थे।

विद्याधर वावू ने उठते-उठते पूछा, जिसमें आम शिष्टाचार की आवाज
थी—"आपका गुजारा हो जाता है तो ?"

जयराम वावू की आंखों में कौतूहल था।

तनिक हंसकर वोले—"मेरा गुजारा नहीं हो पा रहा, यह वात मेरे
ही मुंह से सुनने का इतना आग्रह क्यों ?"

"वात यह नहीं है। मैं सोच रहा था—अगर आपके कुछ काम आ
सका।"

"आई सी।"

"मैं अपने को रोक नहीं पाया। आपके लिए प्रतिवाद करता च...
रहा हूं। यह अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूं कि आप इसके लिए विलकु...
दायी नहीं। अन्याय को जवरदस्ती आप पर लादा गया है। उसका प्रति...
वाद होना जरूरी है।"

"वहुत-वहुत धन्यवाद !"

खूव सफेद वरफ से वने साफ-साफ शब्द।

विद्याधर वावू ने गहरी सांस छोड़कर मुंह फिरा लिया। अव...
कुछ करने को नहीं। ऐसे लोग तीली की तरह जल जायेंगे। शाय...
वड़ों को थोड़ी रोशनी मिल जाये और आगे कुछ नहीं। अमावस का...
तो ज्यों का त्यों रहेगा।

रास्ता पकड़ने से पहले विद्याधर राय ने मुड़कर नहीं देखा।

"…काग्रेसी टिकट के लिए कितना पैसा पड़ता है ? क्यो ? जा स्साले ! और क्यो फिर टेक की बात उठायी जाये ? जाओ । स्साले सब कुछ बेच खाओ । दरिद्र, भिखमगे, बेइज्जत, हरामजादे, जाओ…स्सालो ! मरे यह स्साला देश ।"

"इससे क्या हो गया ? कोई कुछ कहे, इसमे क्या रखा है ? एक बार राजनीति भी कर देखें। हर्ज क्या है ?"

सिगरेट एक ओर से काट-काटकर तोडते जा रहे थे जयराम । आखिरी टुकड़ा कैरम की गोटी दबाने की तरह बाहर फेंक दिया । कह उठे—"जा बे ! ले तुझे छोड दिया ! जा और नही पीता ।—न सिगरेट और न चाय ।"

उन्नीस

"वह कौन है ?"…

"मिस्टर परिड़ा के साथ वह कौन है ? वह तो कभी क्लब आयी नही लगती ! …क्या मिसेज परिड़ा हैं ?"

"वो…वो…मतलब…"

"हो ! हो ! हो ! ये हैं, तो फिर वो ? कोई बुरी तो नही ।"

"माल अच्छा है ।"

फुसफुसाहट दीवार के सहारे हो रही थी और फिर बेतहाशा हो-हो के ठहाके लग रहे थे क्लब मे उस दिन ।

सुजाता बिलकुल नि.सकोच गाड़ी से उतर आयी । लेकिन बाद मे क्या करे कुछ समझ नही पायी । दो-तीन की ओर देखकर हसी, पर हार्दिकता का कोई नामोनिशान नही । महिलाओ के बीच चली गयी सुजाता ।… एक तरह से आत्मरक्षा की कोशिश मे । सबके चेहरे पर वही प्रश्न, आखो

में कौतूहल, विद्रूप और हंसी। सुजाता एक कुर्सी पर निढाल होकर वैठ गयी। पसीना पोंछने लगी।

चेहरे पर रक्त उभर आया था। लगा हर खिड़की से लोग उसे देख रहे हैं। हंस रहे हैं और दीवार की ओट में फुसफुसा रहे हैं। दो-तीन औरतें मिलकर कुछ गुसमुस वातें कर रही हैं। वीच-वीच में पता नहीं क्यों उसकी ओर देख लेती हैं। क्रोध जल उठा।

झपट्टे में एक पत्रिका उठायी और मुंह ढांपकर उसमें चित्र देखने लगी। कानों में सांय-सांय हो रही थी। मानो वहां गरम हवा वह रही थी जिसकी तपिश से वह वेचैन हो उठी। तो ये लोग जानते हैं। ठीक है। इन्हें यहीं परास्त करना होगा। अचानक खड़ी होकर सीधी चली गयी आगे की ओर।

तीन महिलाएं वातचीत कर रही थीं उस समय। "हैलो ! क्या इस तरह गंवार औरतों···आइ मीन रस्टिक वोमन की तरह गप्पें कर रही हैं? कोई चुस्ती नहीं कि गेम नहीं। न म्यूजिक, न कोई डांस—वाकई कितना डल है!"

मानो खूव गहरा परिचय है। कुछ इस अंदाज से कंधे पर हाथ रख दिया सुजाता ने। वे सिर्फ अचंभे में भरी ताकती रह गयीं।

"आपके मिस्टर क्या करते हैं? और आपके? और आपके? तीनों एक दूसरे को हक्की-वक्की देखती रह गयीं। सुजाता की ओर उनकी दृष्टि थी। उनमें से एक अचानक हंसी के मारे फट पड़ी। अनजाने ही कुछ देर वाद सुजाता भी उनके साथ मिलकर हंसने लगी। हर हंसी के साथ पसीना निकल आता था। फिर भी नशे में धुत की तरह वेतहाशा हंसे जा रही थी। सारे क्लव के अतिथि आकर खिड़की के पास देखते रहे। किसी के हाथ में सिगरेट थी तो किसी के हाथ में विलियर्ड की लकड़ी। कोई पाइप मुंह में दवाये था, कोई ग्लास थामे था।···ये कौन?"···वो तो···ओहो ··हो··· सारा क्लव, उसकी दीवारें कांप रही हैं। सुजाता के वाल अस्त-व्यस्त, साड़ी वेतरतीव। दोनों हाथों में सिर थाम हंसने के प्रयास में वह खांस उठी।

"हो! वंडरफुल! जोक! हा! हा!" और हंसा नहीं जाता। उन में से एक ने रुककर सुनी वह वात—"क्या जोक?" "हो ··हो···हीं

हो···" सब हंसते-हंसते लोट-पोट। अचानक चीख उठी सुजाता।

"शट-अप ! चुप रहो ! बंद करो ! खुद को क्या समझ रखा है ? आइ एम ए ग्रेजुएट। जानती हो ! मैंने बी० ए० पास किया है···मैं··· याने मैंने छह साल कान्वेंट में पढ़ाई की है। क्या समझ रखा है ? तुम सब क्लब में नयी हो। क्लब मैनर्स नहीं मालूम ? गेम नहीं जानती, डांस नहीं, कुछ नहीं। मेरी क्लब लाइफ काफी पुरानी है—आइ मीन वेरी ओल्ड··· डार्क···मून इन···"

किसी बहुत पुराने गीत की पहली पंक्ति गुनगुना उठी अंग्रेजी में।

फिर ठहाका लगा क्लब में। तीनों फिर हंसी।

"शट अप।"

अब सुजाता सिर से पैर तक क्रोध में कांप रही थी। ···"तुम लोग क्या हो, मैं क्या नहीं जानती ? तुम लोग डूब-डूबकर पानी पीनेवाले लोग हो। एक-एक के पीछे हाफ डजन लवर्स हैं। क्यों इस तरह दूध की धोयी बनी फिरती हो ?"

सब स्तब्ध।

"तुम लोग सोचती हो कि जयंत परिडा की मैं कौन होती हूं ! —मैं ···मैं उसकी कजिन हूं। उसे तुम पूछ सकती हो। पूछो, न पूछो मुझे केयर नहीं। मैं आयी थी गेस्ट के रूप में। आज नहीं कई बार इस क्लब में आयी हूं। मगर तुम लोग नहीं जानती कि क्लब के गेस्ट को कैसे ट्रीट किया जाता है।···मैं यहां आयी हूं—मैं नटवर राय की बेटी···माइ फादर वाज एस० पी०।"

"शायद अधिक पी गयी है।"

"नर्वस होकर शायद बक रही है।"

"परिडा बाबू किधर गये···शी इज ए नुइसेंस।"

"जयंत परिडा ··परिडा बाबू···कहां गये ?"

अपना नाम सुनते ही टेबुल पर ग्लास पटककर जयंत उठ आया। उसके साथ उठी रोजी, विमल। बिलियर्ड जोरदार खेल है। विमल का फेवरेट गेम···। "मगर परिडा बाबू क्यों उस अंधेरे कोने को पसंद करते हैं ?"···

"कौन ? जयंत ? है···क्या···कौन ?···वो तो विमल बाबू की स्त्री हैं। आजकल सुप्रामेंटल योग करती हैं।" जयंत कुछ समझ रहा था—वह भी आलोचना-सभावाला है।

"जी, वो जो आपके साथ आयी हैं···मिसेज परिड़ा···आइ एम सॉरी···आइ मीन मिसेज···

"मंगराज।"

"शायद अस्वस्थ हैं। आप उन्हे शीघ्र घर पहुंचाने की व्यवस्था करें।"

घटना देखकर एक सिगरेट मुंह में डाली। बूट पहनकर सबकी ओर देखा। सबने उसे भी देखा।

धीरे-से जाकर सुजाता के सामने खड़ा हो गया। उसकी आंखों में हल्का-सा नशा चढ़ा आ रहा था। वह कई बातें भूल गया। गंभीर होकर कहा—"चलें अब।"

"नो···नो यह अन्याय है। मुझे पहले से कहे बिना यों डांस पर अचानक बुलाना अन्याय है। दिस इज अनफेयर।"

सुजाता के होंठ सफेद, आखें धुंधली।

जयंत ने धीरे-से उसकी बाह पकड़ी और बरामदे में ले आया। बहुत सारी दबी-छिपी हंसी, चारों ओर फुसफुसाहट।

गाड़ी का दरवाजा बंद किया। सांय से मुड़ गयी।

बरामदे में भीड़ लग गयी। खिड़कियों से अनेक आंखें झाक रही थीं।

गाड़ी ओझल हो गयी। सब लौट आये। सबके चेहरे पर हंसी। जो चाहते थे, सबको मिल गया। पुरुष हो गये मन ही मन जयंत और स्त्रियां सुजाता।···संपर्क वैसे ही आकर्षक, मगर निषिद्ध।

कुछ क्षण रोजी अनमनी खड़ी रह गयी। मगर उधर ध्यान किसी एक-आध का ही गया होगा। विमल बिलियर्ड छोड़ सिगरेट रोल कर रहा था। सुनसान क्लब के रास्ते के अंत में घने पीपल के पेड़ के नीचे जोर से ब्रेक दबाया जयंत ने। एकदम उछल पड़ा सुजाता पर। क्रोध, अपमान के साथ और कई उत्तप्त क्षुधा मिल जाने पर जैसा हिंस्र, भयंकर होने की बात। उसी बेकाबू हालत में झपटते समय जयंत को सुजाता के होठों से बहते रक्त के नमकीन स्वाद का अनुभव हो रहा था। कुछ खींचातानी के बाद हालत

तनिक सामान्य हुई। दरवाजे पर आकर गाडी लगी तो देखा एक और गाडी आकर खडी है। कुछ क्षण गाड़ी की ओर देखने के बाद सारी बातें स्पष्ट हुईं।

शायद मूलचद आया है।

सुजाता निश्चेष्ट-सी बैठी है।

"मूलचद ?—सुजाता ?—वेल'''हर्ज क्या है ?"

"आओ सुजाता ! अपने एक मित्र से परिचय करा दू।"

कुछ समय पहलेवाली हिंस्रता पालतू-बिल्ली के नाखूनों की तरह मखमली पजो मे ढंक गयी थी। आवाज, भाषा, भगिमा सब बिल्कुल संयत थे।

गाडी मे ही अपने बिखरे बालो और असयत साडी को ठीक कर लिया सुजाता ने। उसके अदर अपमान में भरी फुफकार कर रही थी हिंस्र नागिन—उन गवार औरतो को कभी माफ नही करेगी।

ड्राइंग रूम में घुसते समय हाथ मे एक मैगजीन थामे खडा था।''' जयंत से कम-से-कम चार इंच लबा और अधिक गोरा। दात सफेद झक-झक। मूछें भी जोरदार थी। तीस-पैंतीस के आसपास। वाह'''

"'''ये मेरे मित्र है मूलचद सोधी। करोडो के मालिक। और आप हैं सुजाता देवी।"

पैर कुछ चौडेकर बाया हाथ पैंट पाकेट मे डाले खडा था जयंत। सिगरेट के फिल्टर को देखकर थोडी भौंहे उठाकर हसते हुए कहने लगा—

"ये सुजाता —मिस सुजाता राय।"

सुजाता की भौंहें एक पल सिकुडी और फिर खिल गयी। चेहरे पर एक तरह की दुर्भेद्य हंसी का मुखौटा। खूब गरम तरल शीशे पर हवा के झोंकें से पपडी आ गयी। मूलचंद की भी भौहे एक बार सिकुडी—"क्यों बेटा मुझसे छिपाते हो ?" चुपचाप ही फिर सब कुछ खुल गया, साफ हो गया। तीनों बैठ गये।

जयंत अचानक गंभीर होकर सिगरेट पी रहा था। मूलचद ने मैगजीन का पन्ना उलटते हुए पूछा—"तो फिर आप डिनर तो लेकर आये हैं ?"

छपक-छपक करती कुछ छायाएं सुजाता के चेहरे पर से उस अंधेरे मे

गुजर गयीं। दांत भिच गये। आंखें घृणा से जल उठीं। फिर भी खूब साध सहेजकर रखी मीठी हंसी से एक कली बिखेरकर दूसरा हाथ की ओर बढ़ाते हुए सुजाता ने कहा--"डिनर···?"

"अरे हां! यार मूलचंद! कुछ करो यार! वरना भूखे पड़ेगा!"

आपसी हंसी में मूलचंद ने कहा---"खाना तैयार रखा है हुजूर से कुछ नॉन, कुछ चिकन रोस्ट और कुछ करी मंगवायी है। फरमाएं तो हुजूर की खिदमत में पेश करूं"-- व्याजभंगिमा बिलकुल दरबारी

जयंत एक ही वार में कूदकर खड़ा हो गया। दोनों हाथ से दोनों मुंह ऊपर उठाकर तुरंत एक चुंबन मार दिया।

"यू आर ए जूएल! वाह, वंडरफुल!"

मुड़कर देखे बिना गीत गाता घर में दाखिल हो गया। कुछ क्षण इधर चुपचाप बैठे रहे।···सुजाता कुछ अनमनी हो गयी। सारी देह में तरह का तनाव भर गया। अनेक सुंदर चेहरों से वे आंखें उतार चोटी से घसीट-घसीटकर चिंदी-चिंदी कर डाले उनके रंगीन ब्लाउज फिर चौंककर संयत हो गयी। आंखें किसी तेज विचार के कारण छोटे कांच की तरह तेज और नुकीली हो गयीं। वह फिर से हंस पड़ी मैग पर, मूलचंद पर! भौंहें खुल गयीं।

"अच्छा, हैमिल्टन अंगूठियों में जो पत्थर होता है, वह क्या है?"—एक पत्रिका देखते-देखते सुजाता ने सवाल किया।

"ओह! यस! देखें ना···यह पुखराज है!" मूलचं उंगली से अंगूठी निकाल सुजाता की ओर बढ़ा दी। सोने पर सुजाता और पत्थर पर भी। अंगूठी को उलट-पलटकर देखा "ब्यूटीफुल! अच्छी है!" अंगूठी को मूलचंद की ओर बढ़ा मैगजीन पर थीं।

अंगूठी हाथ से निकली नहीं तो सिर उठाया।

मूलचंद हंसकर बोला—"मैं जो दे देता हूं, वापस लेता।"

"आप कहना क्या चाहते हैं? मैंने तो सिर्फ···श

भर के लिए दी थी।"

"वो बात छोड़ें। मैं आपसे वापस न ले पाऊंगा। अपने पहले परिचय की भेंट के रूप में क्या कुछ नहीं दे पाऊंगा?"

इस्! इतना बड़ा पुखराज।···फिर भी···

"यह मेरी उंगली में बिलकुल नहीं आयेगा। काफी बड़ा होगा।—आपके पास रहने दें। फिर कभी देखा जायेगा।"

"ना, ना, यह कैसे होगा?···कहां देखें···बड़ा कैसे होगा?"—कहकर मूलचंद जाकर सुजाता के पास कार्पेट पर घुटनों के बल झुक गया। सुजाता की छाती पर की साड़ी धप-धपकर सजीव हो उठी—चेहरा गरम हो गया।···सच इतने अपमान के बाद इस तरह का सम्मान पाकर कुछ तो भी धीरज-सा बंधा मन में। खुद पर और दुनिया पर से अनास्था हट गयी। वह जाग उठा नया क्षितिज देखकर।

मूलचंद ने खूब सावधानी से हाथ थामकर अंगूठी पहनाने की कोशिश की। तभी आ गया जयंत। मुंह में सिगरेट। आंखें छोटी-छोटी। चेहरा धुला-धुलाया साफ। पायजामा और पंजाबी पहने है। सुनाई पड़ी ताली—"वाह वाह! वंडरफुल! मैंने बिलकुल यही सोच रखा था। दोनों को परिचय में पांच मिनट भी नहीं लगेंगे। तुम्हें देखकर मैं वास्तव में खुश हूं। आइ एम प्लीज्ड। चलो खाना ले लें।"

सुजाता उठने लगी तो जयंत ने बढ़कर उसकी कमर घेर ली और उधर मूलचंद का हाथ पकड़ लिया।

"ओह! और फिर संकोच कैसा? वी आर आल फ्रेंड्स! मूलचंद! तुम यार बड़े शर्मीले बन रहे हो।"—सुजाता ने एक छोटी-सी पुखराजी मुस्कान भरकर दोनों बाहों में दोनों को भर लिया।

वाह! ऐसे ना लोग समाज में चलते हैं! आधुनिक हवा में सांस लेते हैं। वरना रसोईघर में दाल-भात पकाते-पकाते ही जिंदगी निकल जायेगी।···खूब मिलजुलकर दोनों दोस्त एक रोस्ट मुर्गी टुकड़े-टुकड़े कर खा गये। काफी मसालों से तैयार हुई थी। पेट में अंडा। चर्बीदार उस मुर्गी के लिए शायद प्रतिवाद करने लायक कुछ न था।

उधर विश्वंभर। मन में विचार था—"बात सब जान गये हैं।"

लंबी-लंबी मूंछ रखे वह माधव पाणिग्रही। है तो क्लर्क ही, फिर इस तरह दबा-दबाकर मुस्कराता क्यों है ?

उसके साथ फिर पेटू भगिया मल्लिक—उस दिन सुना-सुनाकर ऊंची आवाज में कुछ कह रहा था। उसे भी पता है।

लगता है अप्पया भी जान चुका है।

सब। इस शहर में कुत्ते-बिल्ली तक सभी गली-गली में जान चुके हैं। यहां की हवा में आज विश्वंभर मंगराज की इज्जत उड़ती फिर रही है। सब जानते हैं।···

खुद वह अमानुष है। उल्लू है।···हिजड़ा, डरपोक भरत भारदा की इज्जत दो कौड़ी की होते अपनी आंखों क्या नहीं देख चुका ? फिर पिसकर, रगड़कर मिट्टी में मिल जाने की उसकी इच्छा है। कुछ लोग हैं जो अपनी देह को ब्लेड से चीर-फाड़ डालते हैं। खुद को 'आह बेचारा' कहने में भी मजा आता है।···इनमें से यह एक है।

अपनी औरत को और एक दूसरा आदमी बीच बाजार में गाड़ी में बिठाकर ले जायेगा। वह पता नहीं किस बड़प्पन में डूबा है कि उसका गला नहीं भींच पाता !

उल्टे स्साला इंतजार में है कि बेटा होगा !!

तो फिर क्या हो जायेगा इससे ! यही तो कि वह जयंत परिड़ा का बेटा है···तो क्या लुट जायेगा ? क्या बिगड़ेगा जयंत का या सुजाता का ?

बेहया सोच रहा है कि दोनों पकड़े जायेंगे···और प्रमाणित हो जायेगा कि सामंत का बच्चा यह विश्वंभर मंगराज शुद्ध साधू है।

नपुंसक यादव कहीं का !!

वे ही क्या नहीं कहेंगे कि बीबी के कारण ही तो नौकरी मिली। किस-किसका मुंह बंद करेगा ?

···थका घोड़ा जाड़ों की भोर में गाड़ी न खींच पाने पर घुटनों के बल मुड़ जाता है, तब मालिक चाबुक सटकारता है, खून जहां निकल रहा होता है उसी घाव पर वह चाबुक की मूठ रगड़ता है।—कुछ इसी तरह विश्वंभर क्लांत है—घबराया हुआ है—वैसे ही लाचार है। हर वक्त कौन है जो उसे यों कान के पास—कौन बेरहम, अकपट निर्दय है जो डांटे

जा रहा है !

आंखों में नशा वुझ रहा है।

मगर छाती उठती और गिरती है। नथुने फूल रहे हैं। माथे पर पसीने की बूंदें जम रही हैं।

विश्वंभर के अंदर से झुड के झुड निशाचर प्राणी अंधेरी गुफा में तैरते जा रहे हैं। शायद ये सब पालतू जंतु हैं। न किसी के दांत हैं, न नख और न डंक···।

"हरामजादा ! पेट भर नशा कर लक्ष्मी भठियारिन पर आकर मर्दानगी दिखाता है ! ···नालायक आदमी और करता भी क्या ··? शायद तेरी वंश-परपरा भी तुझे जगा दे, इसलिए क्या तूने उस दिन अपने बाप की फोटो की हत्या नही की···इतना लाल-पीला हुआ, आखिर क्या फैसला किया कि···सुजाता को नायिका बना दिया जाये। एक टुकड़ा खुद भोगे और दूसरा टुकड़ा जयंत की ओर बढ़ा दे। छिः, छिः स्साला, ओछा, बेईमान !

इस चाबुक की चोट से भड़ासकर विश्वंभर उठ खड़ा हो गया। कमर और गरदन कांप उठे। नशा और नींद सब एक तीखी तपिश में इकट्ठे कहीं उड़ गये। उसने सुना—इस अपमान का प्रतिशोध तू नही ले सकेगा। नामरदों के हाथों से फरसा नही चलता। न सही, खुदकशी ही कर लेता !

फंदा लगाकर मर जा !

कुएं में डूब मर !

छुरी भोंक ले ! जा···जहर खा ले ! ···मर, मर कहीं जा ! सुजाता की हंसी में उसके दांत खूब चमके हैं। जयंत की मूछ ऊपर उठ जाती है सिगरेट के धुएं के पीछे।

"जा छुरी भोंक दे ! मार···मार ! सौ-दो सौ बार मार···आ···आ···ह।

चीख उठा शहर का वह अंधेरा इलाका···विश्वंभर के कान भर गये उस चीख से। कोई और न सुन सका उस विकल आत्मा की पुकार।

दबोचकर आदमी को मछली की तरह काट डालो तो शायद दो मिनट लगे। कुछ चीख, कुछ छटपटाहट के बाद सब साफ हो जायेगा।··· इस्स कैसा गिलगिला !—कटे बलि के बकरे की तरह दो टुकड़े पड़े होंगे—

एक मरद और एक औरत···खूब नरम, चिकना, नंगई में डूबे मांस के दो लोंदे।···

चुप ! अमानुष ! यों इसमें से कुछ चित्र जोड़कर क्यों पी रहा है ? कभी खटमल भी मारा है अपने हाथों ? कभी जिंदा मछली तक काटी है दंतरी से ?···छोड़ यह सब तेरे हाथों होने से रहा। अगर लाज आती है तो जा तू खुद मर। धिक्कार है तेरी नामुराद की ऐसी बेआबरू जिंदगी ! किस मुंह से कल सुबह फिर जाकर उसके साथ घूमेगा-फिरेगा ? उस दफ्तर में चोर की तरह घुसेगा, उनके बीच बैठेगा···या जायेगा ··धत तेरे की। निर्लज्ज स्साले।···तेरे काठ-से चेहरे के लिए जूते भी नहीं।···

···कचहरी की घड़ी ने दो बजाये। सुनसान अंधेरा, रात। दिमाग में खूब शोर-शराबा। छोटी-सी खाट पर लथ से बैठ गया विश्वंभर। आंखें तरेरकर देखा। वो दीवार से चिपटी छाया दीख रही है, काली-काली, वही तो लक्ष्मी है ?···अच्छा इसके पास आने का मतलब क्या ? इसमें तू क्या सोचता है कि किसी पर प्रतिशोध ले रहा है ? तू खुद को ही पीटता जा रहा है, लांछित करता जा रहा है। जैसे नशे में डूबता जा रहा है, इस खाट में तेरी इज्जत का खून करता जा रहा है—ठीक जैसे जयंत को छोड़ दिया है तेरा सारा मान-सम्मान लूट-खसोट खाने के लिए। तू तो जयंत परिड़ा का कुत्ता है। उसी का काम पूरा करता जा रहा है यहीं। शुरू से आखिर तक जो कुछ करता आया है सब गलत है, मूर्खता है। जयंत की बातों में फंसकर तूने आंख मूंदकर एस० पी० की लड़की को घर में डाल लिया ! सो नहीं तो और क्या है ? छवि तो तेरे जैसी बिलकुल नहीं···। आठ वर्ष भी कोई कम नहीं। इतने दिन क्या सुजाता ठगती आयी है ?···ना ना···ठगेगी क्यों ? पति देवता के चरण धोकर जल पीकर जिंदा है। अबे···यह सब कोई नया है ? तू तो कब का जान चुका था। मर्दानगी का तो तेरे अंदर नाम भी है कहीं ? जानकर भी मुंह फिराकर अनजान बना रहा। बस, बैलगाड़ी की लीक पर चला जा रहा है। तेरे बाड़े में और भी दो-चार जारज लोटने तक ऐसी ही उत्तेजना में जीता चल। सुजाता के चेहरे पर वह हंसी खिलने रहने तक उसका सहारा लिये रोटी-कपड़ा चलाता रह ! !

ना ! ना ! ना !!

इस्स ! बाप रे ! शेर की तरह साली गरजता है मरदूद ! झपट्टे में लक्ष्मी पर कूद पड़ा।। लोहे की सडासी जैसे हाथों मे नरम गरदन पर अकूत क्रोध,हिंसा, प्रतिशोध उंड़ेल दिया। टप-टप कानों तले से पसीने की बूंदें झर गयी। मुह से लार टपक आयी। सारी देह बाकी होकर तेंदुवे की तरह तन गयी। बहुत दिनों की सुलगती आग फट पडी। दांतों मे पकडकर चूस ले गया गरम खून !

ओह ! विश्वंभर मगराज सुजाता का खून पी गया है ! जयंत का खून कर सका है।···ना उसके धक्के चढने पर कोई नही बच सकेगा।

खूब पैर फैलाकर, कमर पर हाथ रख एक अजीब-सी मरदानगी जाहिर कर रहा था वह।

हूं। यही स्साली लक्ष्मी है। क्यों ?—मर। मर, पैर पटक रहा था। झुककर दो हाथ उठाकर खींच लिये, ठंडी गुदड़ी थी।

पुराना तकिया किसी मरे पक्षी की तरह धुनाई हुआ पड़ा था।

हा···हा···हा···ही···ही···।

एक ओर लुढका पडा था कोई छोटा आदमी। रूई मे सने हाथों से मुह ढंककर रो पडा विश्वभर मगराज। किसी नरभक्षी मरद की दहाड उपहास करती उस घर की चहारदीवारी में भर गयी थी, फैल गयी थी।

नामरद ! हिजड़ा ! रुलाई नही थमती। आंसू का नाला उमडा आ रहा है।

भि···भि···भि···भिः।

फुसफुसाकर कोई उधर कुछ कह रहा है। कोई हस रहा है···ही···ही···ही···ही।

"वो नशा कर आता है। उसे कोई होश रहता है ? वो रात बीतने तक उधर पडा रहेगा।"···ही ही।

सिर उठाकर अंधेरे में आसामी सुन रहा देखें दुनिया की राय क्या होती है।···

लक्ष्मी कहती है—"तू क्यों ऐसे डरता है रे ? वह तेरा क्या कर लेगा ? वो तो अपनी औरत को ही नही संभाल पाता।"

रहा है—"आप लोगों के सारे पुराने रास्ते गलत हैं। आप सिर्फ बुतपरस्ती छोड़ दें। इस आध्यात्मिक मार्ग के लिए आपको कुछ खास नहीं करना। —जैसे चलते थे, ठीक वैसे ही चलते रहेंगे। सारा जीवन योग है। इसमें झूठ-पाखंड रहेगा ही रहेगा। उसका अब कोई रूपांतर हो जायेगा ? यह लें आप जिसे 'घूस' कहने के अभ्यस्त हैं, वह सिर्फ पुराना अंधविश्वास भर है।—दरअसल ठीक समझें तो वह धन का लेनदेन मात्र है। उसमें रुपयों को कंकड़-मिट्टी की तरह बिखेर दिया जाता है।—इसमें जैसी निरासक्ति है, वैसी और किसी चीज में नहीं। धन एक ताकत है। उसे किसी तरह अदाकर गुरु सेवा के लिए आश्रम भेजने के बाद जो कुछ बचा रहा, वह शुद्ध है। पाप सिर्फ मन में होता है। देह से कुछ भी करो कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर मांस खाने की बात लें। आपको आमिष खाना ही होगा। ···वरना शरीर का रूपांतर होने तक कमजोर हो जायेंगे। आध्यात्मिक धक्का सहने के लिए आवश्यक शक्ति चाहिए। जो भी खायें, मन को निर्विकार रखें। फिर सब ठीक है। आदम के जमाने की चोटी-तिलक वाली अक्ल छोड़ें। नाक दबा कर कुंडलिनी जगाना—ये सब बकवास है। बस आंख भींचकर आधा घंटा ध्यान लगायें, आध्यात्मिक शक्ति के बल पर बाकी सारी शक्तियां अपने आप आयेंगी। जो चाहेंगे सो होगा।

शाम को मीठी-मीठी हवा में आश्विन की पूर्व सूचना भरी थी। किसी परिचित मित्र की तरह आश्विन को जयराम बाबू कितनी भी दूर हो, पहचान लेते हैं। बहुत दिनों की जान-पहचान ठहरी···अनेक सपनों के रेशमी तंतु में लिपटा सोया है आश्विन। उसे हटाकर देखो तो आंसू बह आते हैं। ढेर सारी ठंडी राख तले सुगबुगाता उनका आश्विन। फिर भी हर वर्ष बकुल के फूलों की महुवाई गंध सांसों में भरकर झूमती है। जयराम बाबू बहुत बेमन से उसे एक लंबी सांस भेंट देते हैं। उस सांस को समय से मापें तो तीस वर्ष और गहराई से मापने बैठें, तो रस्सी पहुंचती ही नहीं नीचे तक।

उस आध्यात्मिक सभा में माइक पर चलता हो-हल्ला। किसी विलायती कुत्तों के झुंड की तरह हो-हा करता उनके पीछे पड़ा है। कुछ ही दूर आगे जाने से कच्ची सड़क पर धीरे-धीरे उनके अपने पैरों की आवाज

सुनाई देने लगी। वे धीरे-धीरे दूर चले गये। थोड़ा चैन आया इस निर्जनता में।

कोई सहारा तो लेना ही होगा। निरालव खड़ा रह सकने लायक आदमी का बल इन हाडों में कहा?—मगर सहारा लेने झुकें भी किधर? मकडी अपने पेट से सूत निकालकर जाला बुनती है। आदमी-आदमी के बीच का सपर्क-ततु कुछ इसी तरह का है। उसका सहारा लेना तब तक चल जाता है जब तक अपने अदर से रस निकाल उस ततु को मजबूत करता हो। धन जुटाकर कई लोगों का पालन-पोषण जैसा है अनेक तर्कों के बीच कोई आदर्श को पालना भी वैसा ही है। उसी आदर्श के लिए, जिंदा रहने की आशा में प्राण देने पर भी दुनिया कुछ नहीं देगी। खून-पसीना बहाकर अंत में आदमी मर जाता है।···

विद्याधर राय!···बुरा नहीं वह मनुष्य। बस कुछ मजबूत विश्वासों को जकडे पड़ा है। लेकिन जिन विश्वासों का पुलिंदा बाधे वह फिर रहा है उन्हें खोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। उसे भय है। अपना पेट चीर, अपनी अतडियों का सत्य देखने में मानो कोई कुठा, सकोच और भय उसे हिला देता है। वह चाहता है कि बस चलता रहे—एक चमडी में ढककर इस सारी गंदगी को एक छपी मुहर के नीचे चला देना चाहता है। यह बेचारा तो शायद सदेह तक नहीं करता कि उसके विश्वासों का पुलिंदा एक गोल मात्र है।···तो भी क्या बुरा है? सब कुछ खोल-खोलकर देखना क्या इतना जरूरी है? इस तरह तार-तारकर देखना भी एक तरह की लत है। आखिर सब तो अर्थहीन, फालतू, वाहियात···कीच का ढेर।···

संभवतः पासबुक खाली होने आयी।···खाली हो जाये। सत्य-धर्म नाम की जो गाय की पूछ है, उसे पकड़ने के बाद तो फिर और कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। संसार के विपरीत धर्म पर चलोगे तो ससार क्यों तुम्हे अपनायेगा। धूप के दिनों में बिना पानी के पेड़ सूखकर जल जाता है। जो माटी उसे खूराक जुगाती आयी, वह पथरा जाती है। निर्दय बन जाती है। उसे नरमाने के लिए ऊपर से वर्षाधार पडनी ही होगी। यह बात क्या कभी इस जल रहे पेड की कातर प्रार्थना पर निर्भर करती है?

वह अपने किसी और नियम के अनुसार आती है, जाती है। वहां कोई करुणा-फरुणा नहीं।...यहां तो ऐसा कुछ आंखों के सामने हो रहा है, फिर मिट जाता है। ...सहा नहीं जाता इसलिए दुनिया भर की कल्पना। आत्मा, चैतन्य-पुरुष, आरोहण-अवरोहण संस्था, सभा-समिति—सारे सत्य को कंबल से ढंकने के अथक प्रयास हैं। मगर आकाश को ढंकने के लिए तो सदा मेघ पूरे नहीं पड़ते। उस दिशाहारे नीले गड्ढे की ओर देखना भी तो कोई सुखकर नहीं। आकाश की आकाशभर शून्यता को टक्कर देने के लिए कोई गिरजा या मंदिर काफी नहीं। फिर भी ईसा झूठे नहीं हैं। जरथ्रुष्ट, शंकर, अरविंद मिथ्यावादी होने का कोई कारण नहीं। कहां क्या हो रहा है, सब धुएं में छिपा है। उसे किसी ने किस तरीके से टटोला है? कभी-कभी वह धुएं में पहचाना नहीं जाता और कभी-कभी चट से साफ दीख जाता है। तैरते मेघों को देखते रहो, कभी वे हाथी जैसे दीख जायेंगे तो कभी घोड़ा और कभी फिर अपने जैसे ही अनोखे लगेंगे। जैसे कि कभी न थे, न हैं और न होंगे।...

छोड़ो!

यहां युद्ध करते तो कैसा होता!—मगर किसके साथ? जयंत पण्ड्या? धत। तो उसे मान जाओ। उसी की तो इस समाज में जय होती जा रही है। वह जो चाहे सो करे, यह सब ढंक लेगा। वह कर सकता है, मगर तुम नहीं कर सकते। जाकर सभा में उससे एक-दो सवाल पूछ डालते तो उसकी हत्या हो जाती—मगर लोग कहते—यह असूया है, ईर्ष्या है, आक्रोश है।—उसे आमने-सामने विरोध करने में तो घृणा होती है या डर? इधर राजनीति में। उंगली बढ़ाने में भी संकोच होता है। याने उसे ही मौका दिया जा रहा है। आगे बढ़कर, प्रतिवाद न कर खड़े रहना कायरता है—डरपोक और कमजोर लोगों की आदत है।...

हो सकता है ऐसा ही हो! केवल ताकत होने पर ही बराबर आदमी लड़ सकेगा यह भी तो नहीं। लड़ाई के लिए प्रवृत्ति होना जरूरी है। सब खत्म होते आते समय आग सुलगाकर फिर लड़ाई संभव नहीं। लड़ाई करने पर भी जैसे पराजय और मृत्यु, न करने पर भी वैसे ही उपेक्षा और मृत्यु।...

पांडिचेरी ! ···उन्नीस सौ अड़तीस में मद्रास से जाकर देखा है। आश्रम में कोई एक नया परीक्षण चल रहा है। इसी कौतूहल से वहां पहुंचे। उनकी दीवार के अंदर, उनके सप्रदाय के व्याकरण में वे जो कह देते हैं, वह सब ठीक है। वह भी वैसे कोई नयी बात नहीं। यही, इसी शरीर में दिव्य जीवन—जरामृत्युहीन ज्योतिर्मय शरीर ! ये सब तो योग-विद्या की बहुत पुरानी जड़ी-बूटियां हैं। अरब में उन्होंने खोजा है। मध्य अफ्रीका में भी ढूंढा है—अमर फल, अमर रस, अमर ज्योति—कुछेक निगलकर फिर मरेंगे नहीं। बारबार उसमें हारने पर भी उसी ओर खिंच-कर जाने की आदमी की प्रवृत्ति है। सचमुच उन्हें कोई उधर खींचता है —या उस जीवन का लोभ ही मरुभूमि में खजूर के पेड़ की तरह एक मरीचिका पैदा करता है ?

जयंत परिडा के लिए यह मुखौटा पहनना एक फैशन है। गांधी टोपी की तरह धर्मगुरु का होना एक आध्यात्मिक सौदा है। रामकृष्णन कुछ उसी ढंग के साईं बाबा के भक्त हैं। आकुली पंडा हैं—वे अनुकूलचंद्र को भजते हैं। कोई योगानंद, कोई चैतन्य, कोई आनंदमार्ग, कोई रामकृष्ण मार्ग···!! ओफ ! तैंतीस कोटि देवी-देवताओं को लेकर पचपन करोड़ परीक्षण कम पड़े जो अब फिर इस तरह का विलास किये बिना नहीं चलता ! उड़ीसा तो धर्म-व्यवसाय के लिए खूब अच्छी सतियानी धरती है। लोग झांझ-मजीरा लेकर ढोल मृदंग उठाये इंतजार में बैठे हैं। उनके बीच जाकर उन्हें उकसा देने पर वे जाग उठेंगे। गुरु भी कंकड़-पत्थर की तरह बिखरे पड़े हैं बंग धरती पर। गली-गली में सिद्ध पुरुष भरे हैं। वे नाक से सूंघते चले आते हैं इस धरती पर। भक्ति चुगते हैं, मठ खड़े करते हैं। फिर चलता है उनमें झगड़ा-झंझट। कौन गुरु बड़ा है, किसके शिष्य कितने हैं। उस मंडली में साहबों की संख्या कितनी है ? किसी की फोटो से शहद झरता है, तो किसी से विभूति। कोई फोटो से निकल भक्त के हाथ से चौलभ पीकर फट फोटो में जाकर रम जाता है।···ईडियट्स !!

"हूं···हूं···हूं···हूं।"

चौंक उठे जयराम। इन सब बातों पर उन्होंने एकदम खुल्लमखुल्ला मत व्यक्त किया है। शुरू से वे स्पष्टवादी रहे हैं।

अचानक बहुत कमजोरी महसूस हुई उन्हें। एक छोटे पुल पर बैठ गये। वहां कभी भीड़भाड़ नहीं होती। आसपास पेड़-पौधे भी खास नहीं। आकाश तारों से लदा था।

जयराम के अंदर पता नहीं क्यों सूखता जा रहा है। कोई अनजान डर चारों ओर से घिरा आ रहा है। कभी-कभी ही उन्हें ऐसे लगता है। माथे और गले से पसीना बह गया।

इतने बड़े विशाल मैदान में चमचमाते बेशुमार श्रोता। इस आध्यात्मिक सभा में भाषण देना कोई मामूली बात नहीं। दूर माइक सुनाई पड़ रहा था। जयराम को लगा यह उनकी अपनी आवाज है। वे मन ही मन हंस पड़े।

सच, वे शुरू से बिलकुल स्पष्टवादी हैं।

बचपन में कई बार उन्होंने लोगों को चोट पहुंचायी है, आहत हुए भी हैं।···उन दिनों कालेज की पढ़ाई के दिन। एक दिन आकर घर पहुंचे तो देखा गेरुआ पहने एक ठग बैठा डींग हांक रहा है। कुछ देर खड़े रहने के बाद गंभीरतापूर्वक दो-चार घुमावदार प्रश्न पूछ डाले। उत्तर वह नहीं दे पाया और सबके सामने लजा गया। उन्होंने खुद कहा—आओ कोड़ी-कुदाल उठाओ मिट्टी खोदेंगे। मैं तुम्हारे पेट भरने की व्यवस्था कर दूंगा। पसीना बहने पर, पेट जलने पर, आंखों के रास्ते आग की झल निकलने पर, तुम्हें सत्य का पता चलेगा। यहां क्यों इस तरह इन निरीह लोगों को ठगते जा रहे हो? यह धंधा नहीं चलेगा। तुम्हारे पीछे पुलिस पड़ेगी, हम उसे लगा देंगे। वह रोना-रोना हो रहा था। उठकर खड़ा हो गया। चलते-चलते मुड़कर बोला—"मैं बात बनाना नहीं जानता तभी तो तुमने यों अपमानित किया। मगर भला तुम्हारा भी नहीं होगा।"—भला तो नहीं हुआ। लेकिन उसके कहने पर ऐसा हुआ इस बारे में उन्हें घोर संदेह है।

उन्हें अनुभव हो गया है कि विश्वास के राज्य में बहुत कुछ कहने-सुनने से कोई फायदा नहीं होगा। मगर उस विश्वास का अंकुश कहां लगेगा, कैसे लगता है, खूब सोचकर भी वे नहीं समझ पाये।

वह बाबाजी कुंभपटिया। कोई उसे सौर-उपासक कहते हैं। कोई

कहते हैं शून्य पुरुष, अलेख के उपासक। मगर वे तो विद्रोही हैं। शायद पुरोहितों द्वारा यातना पाने के बाद उन्होने अपना एक दल बना लिया। वे जगन्नाथ पर विश्वास नही करते। ब्राह्मणों को अस्पृश्य मानते है। वाह! खूब दंभ है उनमे! मगर उनमें भी वही पुराना रोग दस तरह से नये लक्षणों के साथ उभर रहा है।—वही संस्था, वही गुरुगिरी, परधर्म की निंदा, असूया, द्वेष—याने गुटबाजी के सारे लक्षण प्रकट हो रहे हैं।

जयराम का ममेरा भाई होगा शिखरेश्वर। चोटी का विद्वान। उम्र में बीस वर्ष बड़ा है। काशी मे पद्रह साल रहकर खूब पढाई की थी। शास्त्र का प्रमाण देकर बता रहा था कि अतिम बात कोई नही कह सकता। सब एक-एक मार्ग तो है, पर सब जगह अत मे निराश होना पड़ता है। एक स्तर पर पहुचने के बाद प्रायः सभी कहते है कि इसके बाद प्रकाश नही है। यहां मन और बुद्धि की दौड़ खत्म हो जाती है। अगर कर सकते हो तो एक और गहरी चेतना का आश्रय लेकर बाकी विषयों की उपलब्धि कर लो। वरना अभी यहा जो है, इससे पहले क्या था, या इसके बाद क्या आयेगा, इस बारे मे कोई निर्दिष्ट कुछ नही कह सकता, बस 'इतिश्रुयते'। जयराम खूब जोर देकर मत देते हैं। वैसा ताकतवर न हो तो झुक जाने की बात। पर शिखरेश्वर झुका नही, वरन खूब गंभीर होकर कह गया कि एक दिन मन मे सूर्य उगने की तरह विश्वास उठ जायेगा। स्वतः प्रमाण के लिए तर्क की जरूरत नही।

लेकिन शिखरेश्वर चालीस की उम्र मे चला गया। उस दिन जयराम को लगा किसी सम्राट का ऐश्वर्य चूर-चूर हो गया। कुछ पता ही न चला। शिखरेश्वर दीपशिखा की तरह जला और उसी तरह बुझ भी गया। ससार नही बसाया। विलायत घूम आया, पर आमिष नही छुआ। मनुस्मृति से पिंगल कोड तक, वेद-वेदात से लेकर स्थितिवादी दर्शन तक, आदिम मिश्र से आधुनिक जापान तक वह क्या नही जानता था! जयराम बस ताज्जुब में उसे सुना करते। कभी-कभी विवाद भी कर लेते। आज वह होता तो उसकी कई बातें जयराम को सुहाती। कई बातें वे निर्विवाद मान लेते।···

आकाश में तारों की जमात।

अपनी ही सांस सुनकर जयराम ने चारों ओर चौकन्ने की तरह देखा। हंस पड़े। निर्मम, निराडंवर, निरालंव महाकाश ! सचमुच इसमें आदमी के समझने लायक कुछ छिपा है ? उसने डेढ़ हजार नाम देकर इतनी वार पुकारा। उसके जीवन की ज्वाला, यंत्रणा, सुख-दुख के छंद में उसे अग्राधिकार देता आया, मगर अव तक उसे यही लाभ हुआ कि आपस में खूव कलह, मार-काट, लड़ाई-झगड़ा। आदमी का आदि-अंत पहले जिस तरह रहस्यावृत्त था, आज भी वैसा ही है। वह सदा प्रश्न पूछता जा रहा है। पेड़ सांस लेने की तरह, कृमि की गति की तरह शायद विलकुल स्वाभाविक अथवा निरर्थक है। आदमी के मन का यह आलोड़न। कूलहीन इस महाशून्य में सदा के लिए दूर और दूर वह जाती लहरें हैं ये सव। कूल छुएंगी नहीं। लौटकर किसी को कोई संदेश देंगी नहीं।···

क्यों देंगी ? देने की जरूरत क्या है ?—वहुत दिन हुए जयराम ने तर्क दिया था। तव खूव स्थिर, खूव मजवूत डोर उन्हें चारों ओर से खींचकर रखे थी। घर पर पिताजी, मां, दादा भाई। गांव में मौसा, मौसी, काका, काकी सव ठोस थे। शालिग्राम शिला कीतरह मजवूत औरवजनदार। अच्छी तरह सव स्वीकार कर लेने लायक एक-एक मूल्य। तभी कालेज की छुट्टियों में स्नेह-आदर के इस चंदन-तालाव में हाथ-पैर मारते समय पिताजी सवसे भोले लगते थे। उनका वह चंदन का टीका, सरल-सी आंखें, उदास हंसी कुछ असहाय-सी लगती। आदमी क्या अपने वाहुवल के भरोसे सव कुछ नहीं कर पाता ?—जयराम सोच रहे थे। उस दिन की वात याद है- तव विवाह हो चुका था। शायद रानी आठ महीने की थी। टेलिग्राम पहुंचा कि पिताजी का देहांत हो गया। उन्हें लगा जैसे वे दूसरे किसी गांव गये हैं, लौट आयेंगे। औरों के साथ रोये नहीं। अनुभव किया है कि जिस दीवार के सहारे वे खड़े थे, अचानक धंस जाने पर ढेर सारी ठंडी हवा आकर उनके चेहरे पर शीत उंड़ेल गयी है। अव उनकी वारी है—यहां उन्होंने मृत्यु को स्वीकार किया, उसे सलाम किया था।

फिर जिंदगी की यात्रा में वेथाह शून्य ही वढ़ता चला। धीरे-धीरे वाकी सव एक-एककर खिसकते गये, एक ओर होते चले गये। उखड़ते गये। घर उनका वंट गया और फिर तहसनहस। मां उन्हें छोड़ वेटी और जंवाई के

[illegible] । [illegible], [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] उनके लिए और एक [illegible] के लिए [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] है । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] है । [illegible] है ।''

[illegible] । [illegible] । [illegible] है, [illegible] है । [illegible] है ।'' [illegible] ? [illegible] है । [illegible]

पिताजी की तरह क्यों दिखता है ? उसकी मां तो उनकी भाभी होगी रिश्ते में ? ··

तेज भूकंप में सारे गिरि-शिखर टूट गये थे। धरती के एकांत गर्भ से तरल आग उठकर फैल गयी क्षितिज तक। जली धरती पर जयराम राख का सांचा देख रहे हैं। वे खुद भी तो राख का सांचा हैं।

दीख गया पुरी। इसी समय शायद तबादला पुरी हुआ था। रानी तब पांच वर्ष की थी। उस दिन दफ्तर से आकर देखा तो हड़बड़ाकर खड़े हो रहे थे शिवराम, उनके भाई। उनको दसों दिशाओं में अंधेरा लग रहा था। पहले देख-सुनकर भी अनजान से एक ओर हट गये। रास्ता दे दिया था। वर्षा, बिजली और तूफान के बीच क्या कुछ हो गया, उन्हें होश न था जानने का। बहुत दूर से जब रानी का रोना सुना तो धीरे-से मुड़कर देखा। बाहर का गेट खुला छोड़ कोई चला जा रहा था। क्रोध की गुलेल की तरह वे पीछा करते गये थे जिसमें एक रूलर, फिर टेबुल घड़ी, तेल की बोतल, फूलदान लगे। घर लौटकर देखा तो नमिता नीचे पड़ी हांफ रही है। उनके अपने पैर की एक चप्पल उनके हाथ में तलवार की तरह हिल रही है। रानी रो रही है।···गेट के पास अनेक अपरिचित चेहरे चुपचाप खड़े हो चुके थे। मेघों पर से ढेर सारी लज्जा, अपमान, संकोच बहा आ रहा है कमरे के अंदर ! इस्स !!···उसी दिन शाम को टेलिग्राम आ पहुंचा—शिखरेश्वर भैया गुजर गये।···

उस एकांत में पुल पर बैठे जयराम को लगा माथे से पसीना चू रहा है। मगर जो ज्वार उठा है, उसे रोकना संभव नहीं। उनके पंजर की लोहे की बाड़ से टकराकर बार-बार लौटता रहा है। मगर इन तारों की धीर-गंभीर सभा में वह जरूर उफन कर रहेगा। एकांत में जिसे वे याद करने में भी घबराते थे, वे सब तपती विष की नीली-नीली लहरें उन्हें जलाती-झुलसाती बह आयीं।

"पुरी ! उफ, असहनीय यंत्रणा का नगर !—विपदग्ध पुरी ! नमिता ने इसके बाद उनसे बात नहीं की। नीरवता की आग में दांपत्य का राज-मुकुट जल गया है। छह महीने वे जहर उगलते फिरे हैं। डर के मारे कोई उनसे नहीं बोलता। वे आम सभाओं में चीखते—कि कृष्ण अनार्य संतान

है। ''रामचद्रादि ऋष्यपृंग की जारज संतान हैं ! जगन्नाथ सिर्फ सडियल नीम का खूटा है। शिवलिंग आदिम यौनचिह्न भर है ! प्रत्येक देवी नारी-रूपा है और प्रत्येक नारी मायारूपा है !! शास्त्र सिर्फ कल्पना है ''पुराण अजीबोगरीब, वेद व्यभिचारी !! अदर के सारे सौध और अट्टालिकाएं भूकप मे धराशायी हो गयीं। बुझ गया सूरज का दीप। कमरे मे आकर देखा तो उत्तप्त नीरवता थाम रही है। जाकर नमिता का हाथ पकडा। मुट्ठी भर हाड भर थे। ओह ! नमिता इतना सूख गयी है, उन्हे पता ही न था ! नमिता की आखें गहरी, चेहरा चौडा, बराबर खासी। देह तप रही थी। उनके अपने शरीर मे कोई आग का पलीता फिसल पडा हो। नमिता को उन्होंने अतिम सबल के रूप में सहेज लिया। पंद्रह ही दिन मे अस्पताल की एकात कोठरी मे उस खों-खों खासी का ठडा सकेत समझा था। खासी के बीच धीरे-धीरे खूब दुबले तप्त आसुओं के बीच एक कहानी। पद्रह ही दिनों में पद्रह युग पार हो गये। आसुओं के समुद्र में दु ख का जहाज आकर उडेल गया उस पार के अनेक सामान, मानो बारली उबाली गयी। ज्वर और खासी से निरतर लडती-लडती नमिता खून की उलटी कर डालती। आखो पर बडी-बडी बूदें पसीने की जम जाती। आखें मूद, दात भीच, तनिक मुस्कराकर कुछ कह देती और फिर सो जाती एक और सग्राम की प्रतीक्षा में। मानव-इतिहास के सारे युद्ध और सारी यत्रणा, निष्करुण बालू और अधकार। जयराम दिनों की स्याह छाया मे, रात की रोगी मोमबत्ती के प्रतिवाद मे उनका अनुभव कर रहे थे। दप से सारे ग्रह-नक्षत्र बुझ गये। उनका खून का दौरा रुक गया। फिर एक अर्थहीन अस्थिर कोलाहल''फिर बहुत दूर से रानी की रुलाई ''इसका शायद कोई अर्थ है। मगर वे पकड़ नही पा रहे, विकल हो रहे है।

ज्वार रौंदकर चला गया। जयराम थोडा हसकर ऊपर देखते हैं। ''सुन लिया सभा मे उपस्थित सज्जनो !'' विमर्ष तारे शिखा मद कर सह गये। जयराम में और बल नही, वश की बात नही, देह पर वश नही। गर्दन के पास से तीर का फलक खींच लेने के बाद टपटप सारा रस निचुड जाता है और फिर धीरे-धीरे मुरझता जाता है ''

उसी तरह ग्यारह वर्ष तक एक चिड़िया के अड्डे को लेकर अपना

दायित्व पूरा करते आये हैं। नयी जगह, कालू और रिक्शा। फिर नये-नये मूल्य लेकर आये हैं।

जयराम ने रानी को स्नेह किया है, मगर डरकर प्रकाशित नहीं कर पाते। रोये हैं, पर आंसू छिपाकर पोंछ डाले। शुरू-शुरू में तो रानी रोग में डूबी रही और फिर उन्हें अपना लिया जैसे जाड़ों की ठिठुरती रात में जंगली हरिण-शावक शिकारी की गोद में झुक जाता है। सहमी है, रोयी है और कई दिन तक बड़ी-बड़ी आंखों से देखती रही है। धीरे-धीरे एक दिन आकर पास में खड़ी हो गयी। उस रोज वे कोई किताब पढ़ रहे थे। रानी ने उनकी हाथ की उंगली दबायी। फिर कमीज को आहिस्ते से सहलाया। माथे पर, बालों में उंगली भरकर खींचा। उसे देखकर जयराम शायद अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ हंसी हंसे थे। रानी ने भी उन्हें देकर हंसते हुए एक चाक-लेटदी।···अगले दिन उन्हें याद है, उनका प्रमोशन का ऑर्डर आ गया था। कुछ नया अंकुर माटी चीरकर उग आया—उस यत्न से बढ़ाने का दावा कर रहा था, जड़ में पानी सींचकर स्निग्ध शीतल छाया का सपना देखने के लिए। जयराम उस दिन खंडित हो गये, खींचकर उस एक भूमिका के अंदर चले आये थे। उनके चारों ओर धंसान होता चल रहा था, टूटता जा रहा था आदमी और संस्था का ढांचा।···

"···वह मंत्री का अपना आदमी। खून कर डाले तो भी कोई कुछ नहीं कर सकता। राजनीति में सांड़-लड़ाई, धोखेबाजी और बेहयाई की प्रतियोगिता। उल्लू और अशिक्षितों को भुलावे में डालते हैं, किसी को ठर्रा तो किसी को कौपीन बांटकर वोट जुगाने का निर्लज्ज अपराध दिन-दहाड़े करते हैं।···वे बाबू कन्याश्रम में नारी के हाथों फूलमाला न पाकर नाखुश हैं।···और वे दूसरे बाबू यह भी नहीं जानते कि उड़ीसा में कितने जिले हैं। वे सज्जन तीन घंटा भाषण देने के गर्व में डूबे हैं, उनका कहना है कि पढ़ते-लिखते तो उनकी मौलिक प्रतिभा का विकास न होता। अतः स्कूल-कालेज सब फालतू हैं।···वे जो एक टांगवाले उचककर चलते हैं खूब जोरदार हैं। अपने आसपास खूब थैलियां बांटा करते हैं। ये ही तो हैं देश के कर्णधार! किसी बौद्धिक बात पर बैल की तरह देखते हैं—अशिक्षित जनता के लायक प्रतिनिधि!—कुछेक गणित की संख्या दिखा दो, फिर खाली मटके की

तरह भांय-भाय करने लगेगा। कागज पर निशान लगाकर दिया दी, दस्त-खत छांट देंगे। मगर उनके विचार अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों में छपेंगे। ज्ञान का अजस्र भंडार उन्हीं के पास है। आधुनिक विज्ञान पर उनके मौलिक विचार'''तालियां। उद्‌बोधन!—चरणदास संवाददाता दो टुकड़ों के लिए अपनी पत्रिका और संस्था के लिए इनकी भाट-वंदना करते चलते हैं। शासन चलता है अमला अफसरों के ख्याल पर।'''

अमला और अफसर। उन्हें एक-एककर पहचाना है जयराम ने। उनमें कुछ विवेकी बुद्धू भी होते हैं। हालांकि उन्हें जरा-सा मौका दे दो तो गप से शिकार पर दांत गड़ा देते हैं।'''उन बाबू के पाच मकान'''खास राजधानी में। फलां बाबू पद्रह दिन में बक्सा खोलकर बेटी-जवाई के लिए नोटों के बंडल निकाल देते हैं। निर्लोभी पुरुष। बैंक में भी जमा कराने का रास्ता न पाकर इस तरह बांट देते हैं।'''मगर ये सब सोमवार के दिन पाट-दोसड़ा (रेशमी धोती) पहनकर लिंगराज के मंदिर में जाकर जल और बेलपत्र चढ़ा आते हैं। कोई उनमें बंगला मंत्र का जप करता है। कोई वशीकरण मंत्र जपता है। कोई बैठा सरकारी नौकरों की लिस्ट ढूंढता रहता है किसके साथ कैसे रिश्तेदारी जमायी जाये। सब बच्चों को पढ़ाते हैं डाक्टर बनाने के लिए, आई० ए० एस० बनाने के लिए। पढ़ाना एक फैशन हो गया है, पढ़ाई भी तो एक अजीब धोखाधड़ी है।'''वो जो मुड सिनेमा चौक पर खड़ा है, उनमें एक छोकरा प्रोफेसर है जो टांग फैलाये खड़ा है। वह पता नहीं क्या कुछ पढ़ आया है, सो ये लोग उस पर चर्चा कर रहे हैं, प्रचार भी करते हैं। जो नहीं मानता उसे भी रगड़ देते हैं। तभी तो वे छात्रों में दया बांटते हैं, सिगरेट बांटते है, उसी तरह नकल के लिए बारीक गोल-गोल किये कागज बांटते है परीक्षा में। उसके घर से तरह-तरह की बोतलें निकलती हैं। कई पढ़नेवाली लड़कियों के विवाह न करने का कारण भी वही है, खूब आधुनिक कविता भी लिखा करता है।'''वह कोलाहल जो चल रहा है, गुरु को दक्षिणा दी जा रही है। कारण पुरानी आदत के अनुसार कोई अश्लील शब्द निकल गया, जैसे—सत्य, धर्म, न्याय। ''हां, उसे पेट्रोल छिड़ककर फूक दो। उस स्साले बूढ़े को चढ़ा दो फांसी पर।— यह सब छात्रों की वंदना है। सिर फट जाने के कारण रिक्शे में लादकर

दायित्व पूरा करते आये हैं। नयी जगह, कालू और रिक्शा। फिर नये-नये मूल्य लेकर आये हैं।

जयराम ने रानी को स्नेह किया है, मगर डरकर प्रकाशित नहीं कर पाते। रोये हैं, पर आंसू छिपाकर पोंछ डाले। शुरू-शुरू में तो रानी रोग में डूबी रही और फिर उन्हें अपना लिया जैसे जाड़ों की ठिठुरती रात में जंगली हरिण-शावक शिकारी की गोद में झुक जाता है। सहमी है, रोयी है और कई दिन तक बड़ी-बड़ी आंखों से देखती रही है। धीरे-धीरे एक दिन आकर पास में खड़ी हो गयी। उस रोज वे कोई किताब पढ़ रहे थे। रानी ने उनकी हाथ की उंगली दबायी। फिर कमीज को आहिस्ते से सहलाया। माथे पर, बालों में उंगली भरकर खींचा। उसे देखकर जयराम शायद अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ हंसी हंसे थे। रानी ने भी उन्हें देकर हंसते हुए एक चाकलेटदी।···अगले दिन उन्हें याद है, उनका प्रमोशन का ऑर्डर आ गया था। कुछ नया अंकुर माटी चीरकर उग आया—उस यत्न से बढ़ाने का दावा कर रहा था, जड़ में पानी सींचकर स्निग्ध शीतल छाया का सपना देखने के लिए। जयराम उस दिन खंडित हो गये, खींचकर उस एक भूमिका के अंदर चले आये थे। उनके चारों ओर घंसान होता चल रहा था, टूटता जा रहा था आदमी और संस्था का ढांचा।···

"···वह मंत्री का अपना आदमी। खून कर डाले तो भी कोई कुछ नहीं कर सकता। राजनीति में सांड़-लड़ाई, धोखेबाजी और बेहयाई की प्रतियोगिता। उल्लू और अशिक्षितों को भुलावे में डालते हैं, किसी को ठर्रा तो किसी को कौपीन बांटकर वोट जुगाने का निर्लज्ज अपराध दिन-दहाड़े करते हैं।···वे बाबू कन्याश्रम में नारी के हाथों फूलमाला न पाकर नाखुश हैं।···और वे दूसरे बाबू यह भी नहीं जानते कि उड़ीसा में कितने जिले हैं। वे सज्जन तीन घंटा भाषण देने के गर्व में डूबे हैं, उनका कहना है कि पढ़ते-लिखते तो उनकी मौलिक प्रतिभा का विकास न होता। अतः स्कूल-कालेज सब फालतू हैं।···वे जो एक टांगवाले उचककर चलते हैं खूब जोरदार हैं। अपने आसपास खूब थैलियां बांटा करते हैं। ये ही तो हैं देश के कर्णधार! किसी बौद्धिक बात पर बैल की तरह देखते हैं—अशिक्षित जनता के लायक प्रतिनिधि!—कुछेक गणित की संख्या दिखा दो, फिर खाली मटके की

तरह भांय-भांय करने लगेगा। कागज पर निशान लगाकर दिखा दो, दस्तखत छाट देंगे। मगर उनके विचार अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों में छपेंगे। ज्ञान का अजस्र भंडार उन्ही के पास है। आधुनिक विज्ञान पर उनके मौलिक विचार'''तालियां। उद्‌बोधन!—चरणदास संवाददाता दो टुकड़ों के लिए अपनी पत्रिका और संस्था के लिए इनकी भाट-वंदना करते चलते हैं। शासन चलता है अमला अफसरों के ध्यान पर।'''

अमला और अफसर। उन्हें एक-एककर पहचाना है जयराम ने। उनमें कुछ विवेकी बुद्धू भी होते हैं। हालांकि उन्हें जरा-सा मौका दे दो तो गप से शिकार पर दांत गड़ा देते हैं।'''उन बाबू के पांच मकान'''ग्राम राजधानी में। फलां बाबू पंद्रह दिन में बक्सा खोलकर बेटी-जवाई के लिए नोटों के बंडल निकाल देते हैं। निर्लोभी पुरुष। बैंक में भी जमा कराने का रास्ता न पाकर इस तरह बांट देते हैं।'''मगर ये सब सोमवार के दिन पाट-धोसड़ा (रेशमी धोती) पहनकर लिंगराज के मंदिर में जाकर जल और बेलपत्र चढ़ा आते हैं। कोई उनमें बगला मंत्र का जप करता है। कोई वशीकरण मंत्र जपता है। कोई बैठा सरकारी नौकरों की लिस्ट ढूंढता रहता है किसके साथ कैसे रिश्तेदारी जमायी जाये। सब बच्चों को पढ़ाते हैं डाक्टर बनाने के लिए, आई० ए० एस० बनाने के लिए। पढ़ाना एक फैशन हो गया है, पढ़ाई भी तो एक अजीब धोखाधड़ी है।'''वो जो ठूंठ सिनेमा चौक पर खड़ा है, उनमें एक छोकरा प्रोफेसर है जो टांग फैलाये खड़ा है। वह पता नहीं क्या कुछ पढ़ आया है, सो ये लोग उस पर चर्चा कर रहे हैं, प्रचार भी करते हैं। जो नहीं मानता उसे भी रगड़ देते हैं। तभी तो वे छात्रों में दया बांटते हैं, सिगरेट बांटते हैं, उसी तरह नकल के लिए बारीक गोल-गोल किये कागज बांटते हैं परीक्षा में। उसके घर से तरह-तरह की बोतलें निकलती हैं। कई पढ़नेवाली लड़कियों के विवाह न करने का कारण भी वही है, खूब आधुनिक कविता भी लिखा करता है।'''वह कोलाहल जो चल रहा है, गुरु को दक्षिणा दी जा रही है। कारण पुरानी आदत के अनुसार कोई अश्लील शब्द निकल गया, जैसे—सत्य, धर्म, न्याय। ''हां, उसे पेट्रोल छिड़ककर फूंक दो। उस स्साले बूढ़े को चढ़ा दो फांसी पर।—यह सब छात्रों की वंदना है। सिर फट जाने के कारण रिक्शे में लादकर

अस्पताल पहुंचाया गया है। वह एक और भूतखाना है। वहां अब जो आकर मालिक पहुंचे हैं वे कभी कुष्ठाश्रम में थे, तब तीन लाख की मामूली-सी कोठी खड़ी कर आये हैं। कई विदेशी संस्थाओं की दवा और उनके द्वारा दिये गये धन का यथार्थ उपयोग उनके जिम्मे है। बाल-बच्चों के गुजारे के लिए पांच लाख की व्यवस्था कर दी गयी है। इन सबके अलावा जनता की सेवा के लिए वे राजनीति में भी पैर रख चुके हैं। अस्पताल नामक सरकारी संस्था में सारे सरकारी नौकर ऊंघते हैं। रंग-बिरंगा पानी बांटा जाता है। विदेशी दान के रूप में आयी महत्त्वपूर्ण दवाएं जनता के स्वार्थ को ध्यान में रखकर आधे दामों में बाजार में बेच दी जाती हैं। अभाव तो चलता ही रहता है। मकानों की कमी, सो है। खुद बड़े इंजीनियर ने खड़े रहकर छत की ढलाई कराई थी। एक भाग सीमेंट में चौदह भाग बालू मिलाकर चौदह पीढ़ी की भूख कंट्राक्टर मिटा गये हैं। देश की भी चौदह पीढ़ी का उद्धार कर गये। मील भर नेशनल हाइवे पर सरकारी खर्च में सैकड़ा की दर से दरवाजे पर बैठे चौकीदार से लेकर फूलदान के पीछे से झांकती हाकिमी आंखों तक सबके गले तर हुए हैं। दरिद्र सुंदरगढ़ और कोरापुट में आदिवासी तबाह हो जाता है। सुनार ठग लेता है, वकील ठग लेता है, व्यापारी ठग जाता है। अब न ठगना उल्लूपन, अपराध हो गया है। एक-दूसरे का गला काटने में ही जिंदगी बीत जाती है। इस अजीब मूल्य-कटे समाज में…।

जयराम ने सांस लेकर देखा इधर-उधर। उन्हें तूफान बह जाने के बाद खूब थकावट, अवसाद, खूब एकाकीपन असहाय-सा लग रहा था। आकाश और गहरा, और अधिक स्याह, और भी अपरिचित लग रहा था। तारे भी खूब जल रहे थे, छिटक गये और अधिक दूर-दूर तक। उनका थका मन फिर उसी रास्ते पर लौट पड़ा बीच में ही, फिर जीवन के स्रोत में बह चलने के लिए। उसे देखने के लिए, फिर उसमें डुबकी लगाने के लिए… ढेर की ढेर घटनाओं में हालांकि रानी की पढ़ाई चलती रही। कमीज सिलाई, उसके जूते, छाता, कंपास, पेंसिल आदि। एक दिन खाने आये। रोज जैसे आते, रानी भी आयी थी। देखा तो रानी का छाता है, जूते हैं। मगर रानी बाहरवाले कमरे में बैठी रेडियो लगाकर पत्रिका नहीं पढ़ रही

थी। आवाज दी—"रानी, रानी" कोई उत्तर नहीं। रसोइन मौसी आकर खड़ी हो गयी बोली—"रानी नहीं आयेगी बाबू।" शर्ट से बटन खोलते-खोलते जयराम ने उसे देखा—'हें-हें' हंस पड़े। कहा—"क्या रूठ गयी? अरे उसकी कमीज कल जरूर लाऊंगा।"

"नहीं बाबू, रानी बिटिया···"

जयराम का हृदय धड़क उठा। पूछा—"क्या? बोलती क्यों नहीं?"

बस मुंह ढक मुस्करा उठी, आंखों में एक कोई बात थी। कुछ देर बाद आंखों का संकेत समझ पाये।···फाय से सांस छोड़कर बैठ गये।

आंखें परेशान थीं।

···और फिर एक दिन रानी ने लाकर कॉफी बढ़ा दी। जयराम बाबू ने सिर उठाकर देखा। एकदम परिचित काजीवरम साड़ी में से परिचित चेहरा उन्हें देखकर हंस रहा है। हाथ से कप छूट जाता। अपना विस्मय छिपाने के लिए वे ठहाका मार बैठे—खूब अश्लील करुण हंसी थी यह। रानी अजीब भंगिमा में खड़ी कह रही थी—"इसे मां के ट्रंक में निकाल कर पहन लिया है। फबती है ना?"—उत्तर में वे सिर्फ सिर नीचा किये 'हू-हू' हंसते रहे, शायद रोते रहे।

···काकीनाडा से पत्र आया था, खूब मजे में है। उनके पापा को तो दफ्तर से छुट्टी मिलेगी नहीं, वे दोनों छुट्टी लेकर आयेंगे। "अरे रे! बिलकुल नहीं। तुम्हारा यहां आना कतई उचित न होगा।"—सिर हिलाया जयराम ने। अतीत की बाढ़ का पानी आकर वर्तमान के स्रोत में मिल गया। रात भी काफी हो गयी थी। पता नहीं क्यों वह पड़ोसी गांववाला जो दो-दो चुनाव जीतकर आया है कोठी, जमीन, घर बना गया, मगर अब जूठे आम के छिलके की तरह फेंक दिया गया है। उसका बेटा अब भी सोचता है कि वह मंत्रीपुत्र है। नशे में धुत रहता है, दोस्तों के बीच जुआ खेलता है। उस दिन पैसों के लिए बुड्ढे को पीटकर नीचे पटक डाला। पास में वह बावरी छोकरा था, वरना बुड्ढे की आंखें ही नोंच लेता। छाती पर बैठा मुक्के मारता जा रहा था। उसी बावरी छोकरे ने आकर बचाया। वह सामंतराय डॉक्टर की बात भी कह रहा था। बुड्ढा रिक्शे में बैठकर अपना पचास वर्ष का अनुभव लेकर मद्रासी बैग थामे रोगी देखने जाता।

इतने दिन तक अनेक रोगों के साथ लड़ते-लड़ते दब चला है। कम दीखता है, ऊंचा सुनता है। कमर में दर्द होता तो खाट पर बैठा-बैठा अपने रोगियों को दवा देता चलता।...प्रोफेसर दास...आज भी जाते हैं तो दुष्ट छात्रों तक का सिर झुक जाता है।...मुजीबुर खां वकील अब भी सच कहकर गुजारा चलाता है।

जयराम के मन में एक ओर पुराने मूल्यों को थामे ये कुछ लोग अभी खड़े हैं बाढ़ में भी न डूबनेवाली पहाड़ी चोटी की तरह। मगर दूसरी ओर लाखों असुरों का समूह। कमोवेश सब जयंत परिड़ा की तरह कर सकनेवाले हैं। जोर आजमाई होने पर उन्हें लगता है सत्यधर्म की अब जय नहीं होनेवाली। पशु की तरह दांत लगाकर अपने लिए वे नोंच लेंगे। उनके लिए नीति की कोई रुकावट नहीं। विकट स्वार्थ के एक-एक आदि रूप। चौंकाता-सा याद आया मंगराज परिवार।...वे जानते हैं विश्वंभर का लापता होना। सुजाता के पास अनेक संवेदना प्रकट करनेवालों की भीड़ होती है। विद्याधर राय को एक नौकरी मिली थी, तीन सौ रुपये महीने। हजार रुपये मिल जाते तो यह धंधा छोड़ देते। कोई भी आदर्श हो मुट्ठी भर कौरवी अन्न पाने पर बिक जायेगा।...चलने दो। इन सबके बावजूद कुछ साल जिंदा रहने के लिए आदमी घानी में जुता चल रहा है। भोजन की रुचि की तरह आदर्श की रुचि भी बदलता जाता है। निर्लज्ज जानवर! हाथी को सूखी मछली खिलाओ, चाहे सिंह को छछूंदर! खाने दोगे तो मर जायेंगे, मगर रुचि नहीं बदलेंगे। लेकिन आदमी! जरूरत पड़ने पर सूअर की लेंडी भी निगल जायेगा। यह जंतु सारे विचार-बुद्धि के बावजूद भी मरना नहीं जानता, इसलिए जीना भी नहीं जानता। क्रोध, अपमान, वितृष्णा, हताशा का बगुला चक्कर काटकर चला गया। आकाश में सूखे पत्ते उड़कर चले गये। असंभव, अर्थहीन ये तारे और यह आकाश। कितनी निर्मम है यह पृथ्वी और ये लोग! जयराम के चारों ओर बेशुमार दिगंत, बेशुमार शून्यता। वे तारों की उसी छाया में देखते खड़े थे। आगे जाने पर वह एक टुकड़ा भाड़े का मकान और अर्थहीन कुछ दीवारें और बरामदे। बेमतलब कुछ दांत दिखाकर प्रकट की गयी आत्मीयता।—कुछ और पीछे जायें तो वैसे ही कई अपरिचित रास्ते और चेहरे। वहां दिशा

का कोई अर्थ नहीं, गति का कोई मतलब नहीं, स्थिति भी निरर्थक। जयराम की आखें मुद आयीं। हाथ-पांव किसी उत्तेजना में भर गये। मानो किसी उत्कंठा की ताड़ना में थरथराती हवा में निस्तेज सरकंडे की घास हो!! आंखों की यहां कोई जरूरत नहीं। यह तो एक तरह का अंध-प्रवाह मात्र है। यहां अपनी कोई स्वाधीन गति नहीं, धारा में गिरने के बाद तिनके का अपने ऊपर कोई वश नहीं रहता। स्रोत का भी कोई जोर नहीं चलता। उसे कोई पीछे से धकेल देता है। यहां हाड़ रखकर बैठे-बैठे बस बह जाने की बात है।···

अंदर कुछ तो सुलग उठा है। खड़ा रहा सिर्फ निस्तेज जली हुई राख का एक सांचा। स्मृति की जमानतदारी पर जो अतीत टिका था और उसके सहारे जितने सारे संबंध थे, सब छिटक पड़े थे। आदतन जयराम नाम और उसके जरिये अनेक वस्तुओं और लोगों को वह ग्रहण कर चुका था। इन सबको एक ओर कर देखो—सच, जीवन कितना बड़ा रहस्य है!!

कई बार जयराम यह भावांतर देखते आये हैं। वह उन्हें बीच बाजार में नंगा कर चला जाता है। संपर्कों की अनेक रस्सियों को हटाकर संपर्क-हीनता की हल्की पर औचक करती शून्यता और निर्जनता उनके अंदर गहरे तक लहरों की तरह भरती जाती है।···जयराम ने फिर एक बार देखा दूर खड़े वस्तों के खूंटे को। मुड़कर और भी दूर देखा टिमटिमाते तारों को।···

कुछ आता-जाता नहीं। कोई फर्क न होने के कारण किधर भी बढ़ जाओ एक ही बात है। एकदम अपरिचित राज्य की दो बस्तियां—एक पूर्व और दूसरी पश्चिम।—न विरोध न वैषम्य। मन में किसी तरह की विवाद या द्वन्द्व नहीं। क्योंकि दोनों दिशाएं सूनी पड़ी है। जयराम ने कसकर मुट्ठी भींचकर देखा अपनी उंगलियों को। उनके खूब पीछे से बहुत दूर से माइक का कोलाहल आ रहा था। जयंत धर्मसभा में भाषण दे रहा है। डोल गया विद्याधर राय का दुर्बल आदर्श।—विश्वंभर, सुजाता, रोजी, विमल एवं बाकी लोगों से झूलते समाज का विस्तीर्ण चंदोवा।—बहुत-बहुत दूर रानी और उसके पति।—उनका गांव, आसपास के हजार गांव—यह शहर, दूसरा शहर और ऐसे ही कितने शहर।—गली-गली में भूखे कुत्ते, बीमार गायें, ढीले-ढाले पिलपिलाते बच्चे—जानवरों और आदमी दोनों के।—

कसाई, डॉक्टर, वकील, सुनार—नाना धंधे, नाना रुचि, और नाना प्रकार के लंद-फंदिया लोग। किसी को फुरसत भी नहीं मुड़कर देखने की या इधर-उधर निगाह करने की। हालांकि एक साथ पास-पास रहेंगे, खायेंगे-पियेंगे, झुंड में चलेंगे-फिरेंगे। समझते भी नहीं कि मौका पड़ने पर आपस में नोंच-खसोट कर बैठेंगे। ताक में बैठे हैं कब मौका मिले कि बस चट से वार कर दें।

एक बहुत गहरी खाई उन्हें इस उत्तप्त कोलाहल से हटा ले गयी। फिर भी मन मुड़ने को राजी नहीं हो रहा था। अनिश्चित या अज्ञात के लिए शायद उनमें कोई डर नहीं है। बल्कि बहुत दिनों की यह जानी-पहचानी धरती और अधिक भयंकर हो सकती है। सब कुछ टूट चुका है। टटोलने पर कोई रस्सी हाथ नहीं आती। फिर भी…

फिर भी गाय अपने अभ्यास से चारों खुरों के बल पर अपने ठांव की गंदगीभरी संकीर्णता को लौट आती है। जयराम के किराये के मकान तक लौटते-लौटते रात में उस रोज बारह से अधिक बज चुके थे।

इक्कीस

एक बजे तक अस्पताल के बरामदे में भीड़ नहीं रहती। सब थके-हारे, ऊंघते होते हैं। रोगी-निरोगी सब ऊंघते रहते हैं। ऐसे समय बाहर कड़ा पहरा दे रहा था उत्तप्त सूर्य। ऑपरेशन थियेटर से खाकी हाफ पैंट पहने निःशब्द दो जन स्ट्रेचर लिये बाहर आये। सांय-सांय आवाज आ रही थी।—चिकने फर्श पर रबर के जूतों की आवाज। स्ट्रेचर पर जो बच्चा है उसके माथे पर काफी बड़ी पट्टी। सिर कांप रहा था। रक्तहीन सफेद पड़े पैर भी थरथरा रहे थे। वह इस पार है या उस पार पता ही नहीं चल रहा था। पैर घसीटते-घसीटते वे चले गये। चेहरे पर पट्टी बांधे अपना चढ़ावा लेकर हट गये किसी के नैवेद्य के लिए।

लंबी बेंच पर विद्याधर राय ने काफी देर तक प्रतीक्षा की। कई प्रकार की चिंता उनके माथे में आ रही थी। कई तरह के दृश्य चश्मे से टकराकर छिटक गये हैं। आदमी की यंत्रणा में हवा बोझिल हो गयी है। विद्याधर राय के अंदर अनेक प्रश्न।···

उनके घराने की ही तो है सुजाता। मायाधर राय उनसे कोई छह वर्ष ही तो छोटा था। उधर स्पेशल केबिन खाकी वर्दीवालों की भीड़ में भर गया। पंद्रह दिन वहां होश खोकर पड़ा रहा, उस बीच तीन-चार बार विद्याधर राय आकर देख गये। सारी बातें छोड़ आये थे भाई को देखने, जिसे बाड़ी से अमरूद तोड़कर दिये थे कभी। कटक पढ़ने आया तो समझा-बुझाकर साथ लाकर छोड़ गये थे। मगर अस्पताल में उन्हें किसी ने आने को नहीं कहा, न बैठने को कहा। बहू ने भी झट से मुंह फेर लिया था। विद्याधर ने फिर भी दरवाजे से झांका। मायाधर की आंखें, नाक और माथा मानो पहले की तरह 'विदाभाई' कहकर बुला रहे हैं। मगर वे मुड़कर चले गये थे। किसी से पूछने का मन नहीं हुआ कि मायाधर को क्या हुआ है। विद्याधर राय के कान तले तीन इंची दाग उनकी गांधी टोपी के नीचे भी छिप नहीं पाता। ग्यारह बजे रात गये उन पर शराब का गिलास फेंककर मायाधर पीछा करता आया था। नशे के ताव में उसकी लात पेट पर पड़ी थी। मगर विद्याधर वह लात खाकर फिर नहीं लौटे। कारण ? ओह ! ···कारण अनेक हैं ! ···विद्याधर नौकरी बिना खाली पेट भरने लायक भी नहीं।—वो कौन होता है कहनेवाला कि किस एस॰ पी॰ ने शराब पी या घूस ली ? उसका क्या अधिकार है यह कहने का कि सुजाता जयंत के साथ कब जाती है, कब लौटती है ? उनके भाई की बहू गाड़ी और कर्तार मियां ड्राइवर को लेकर क्यों तीन दिन किसी अनिर्दिष्ट गश्त पर जाती है, यह पूछनेवाले होते कौन हो ? फिर भी···

फिर भी विद्याधर राय ने उस दिन सुबह सुना कि सुजाता घर में बेहोश पड़ी है। विश्वभर डेढ़ महीने से घर पर नहीं। खून में लथपथ सुजाता को रिक्शे में ले जाने के काफी देर बाद मूलचंद की गाड़ी आयी थी। अस्पताल तक गयी थी। विद्याधर राय ने चुपचाप बैठे-बैठे हाथ हिलाकर चले जाने को कह दिया।

सुजाता !—सुजाता उनकी भतीजी है। उन्हें चाय लाकर देते समय हाथ से कप गिराकर तोड़ दिया था। वाजार से लीची लाने की जिद्द की थी। कालेज के दिनों में सुजाता सुंदर थी, वाल काफी लंबे···आज उसका जीवन खतरे में है।

विद्याधर राय करवट वदल वेंच पर वैठे। सरोज के पास टेलिग्राम किया है। दिगंवर मंगराज को भी। वे सव अपना-अपना दायित्व निभायें। फिर समाज सेवक विद्याधर राय समझेंगे कि उनका दायित्व पूरा हो गया।···सरोज तो उन्हें ताऊ कहकर वुलाने से रहा और दिगंवर मंगराज उन्हें समधी का सम्मान देनेवाले नहीं ! सरोज जुआ खेलकर तीन महीने जेल भोग आया है, अव गांव में एक कितावों की दुकान पर वैठा है। मां के गहने छुड़ाने के लिए जमीन वेच रुपये लाया और उनसे जुआ खेल दिया। भुवनेश्वर में दो मकानों का किराया सात सौ रुपये मिल जाता है। खेत से कुछ धान आ जाता है, उसमें मां-वेटे का चल जाता है, स्नो-पाउडर और वोतल का खर्च निकल आता है। उनका ख्याल है कि उनकी इस हालत के लिए विद्याधर राय जिम्मेदार है। छोटे भाई की वहू का सहारा लेकर चलना चाहते थे। अपने भाई के नाम पर झूठ-फसाद कहने पर जांच हुई थी। मायाधर राय गुस्से में, अपमान में और रक्तचाप में मर गये। हूं ! ये फिर ताऊ !···दिगंवर मंगराज ने सरकार के डर से वारह लोगों के नाम पर जमीन रजिस्ट्री कर डाली थी। अव वे ही जमीन दखल कर वैठ गये। सिर्फ गांववाली जमीन पर गुजर करता है। वारीक चावल, घी, भाकुर का भेजा कुछ कम हो गये। विश्वंभर पर वूढ़ा किस जमाने से विगड़ा हुआ है। जोरू का गुलाम, कुलांगार के नाम एक हिस्सा है जमीन का, मगर उस पर से वूढ़े की आशा टूट गयी। वह अव सोच रहा है, छोटा वेटा सोमनाथ कालेज की पढ़ाई पूरी कर वड़ा आदमी वनेगा। डॉक्टर होगा। सुजाता एक वार गांव गयी थी। चप्पल पहने घूमी—देवों के कमरे, रसोईघर को कुछ नहीं माना। उस दिन से फिर वहू को और घर में घुसने नहीं दिया गया। मगर पोते-पोती दोनों वूढ़े के प्राण हैं। उनके लिए तरह-तरह की चीजें वैलगाड़ी में लादकर भेजता है। एक दिन निधि दलई ने लौटकर रोते-रोते वताया कि वहू सांतानी (सामंताइन) ने उन्हें धमकाकर भगा

दिया। निधि दलई तीस वर्ष से मंगराज के घर का गुमास्ता है। वांछा भी उसी तरह किसी जमाने का उस घर का पुराना नौकर है। सब सुनकर दिगंबर मंगराज ने उस दिन भोजन नहीं किया। छिः कर दिया बहू को, पोते-पोती को, सबको। मायाधर राय की बेटी ने आकर खानदान को उजाड़ दिया है। मूछें नीची करा दीं। विश्वंभर उनका मरा हुआ बेटा है। और विद्याधर राय? मायाधर राय का भाई? वह भला कौन है?···

धूप काफी है। अस्पताल सुनसान हो गया है। सूखे कनेर की डाल पर कजलौटा जीभ निकाले हांफ रहा है। उधर वार्ड में कोई बड़ी कठिनाई से रो रहा है। ऑपरेशन रूम से तेजी में धाय ने आकर कहा—"आप जरा चलें। केस सीरियस लगता है।"

विद्याधर राय संभलें, तब तक अंदर थे। मुंह पर पट्टी बांधे कुछेक सफेद छायाएं एक लाल टेबुल को घेरे खड़ी थीं। आंखें उनकी साफ थीं, मगर थकावट से भरी और खिन्न। लाल सरकारी कंबल के अंत में एक चेहरा। विद्याधर राय पहचानते हैं, मगर विश्वास नहीं होता। किसी ने कहा—"चिंता की कोई बात नहीं। केस काफी देर से आने के कारण खून निकल गया है, जबरदस्ती गर्भपात में ऐसा तो होगा ही। फिर भी रक्त दिया जा रहा है। मगर अपना कोई आदमी पास होना चाहिए। आप जल्दी इनके पति को बुलवा दें।"

विद्याधर राय को कुछ कमजोरी महसूस हुई। चारों ओर अंधेरा घिरता-सा लगा। शिष्टाचारवश उन्होंने कह तो दिया—"जरूर, जरूर! पहले उन्हें बुलाना होगा।" और फिर चेहरा नीचे लटक गया। माथे की रेखाएं अपने बोझ से झुक गयीं। न कुछ अधिक कह सके और न स्थिर कर पाये। धीरे-से वहां से सिर झुकाकर लौट आये। आठ जोड़ा आंखें दरवाजे तक छोड़ने आयीं थीं, आपस में एक-दूसरे को देखती रहीं। उसने फिर कहा—"शायद बूढ़े को काफी कष्ट हुआ है। मगर किया क्या जाये? वैसा किये बिना चल भी तो नहीं सकते। अच्छा तुम लोग सावधान रहना! एक बोतल खत्म होने पर दूसरी लटका देना खून की। लंच के बाद आकर देख जाऊंगा।"

बाहर चिलचिलाती धूप। विद्याधर राय कमर पर हाथ रखकर नीचे

झुके सोच रहे हैं कि क्या करें ? अब क्या होगा ? तभी धीमे-धीमे जूतों की आवाज उनकी तरफ आती लगी। शायद मुड़कर देखते। अस्पताल के गेट में दो गाड़ियां सांय-सांय करती दाखिल हुई। विद्याधर राय को लगा जूतों की आवाज पास आकर रुक गयी है। गाड़ी की ओर देखने लगे। गाड़ी से आठ-दस लंबे-तगड़े मोटे-मोटे आदमी उतर पड़े। उनमें से एक शायद मूलचंद थे। मगर सबके आगे जो पीछे देखे बिना चला आ रहा है वह कौन है ?—सरोज ? उसकी तो इतनी बड़ी-बड़ी मूछें न थीं। बाल यों भुतहे, कली इतनी लंबी कभी न थी। आंखें अंदर इतनी धंस गयीं कि उन्हें पहचानना कठिन हो रहा था। फिर भी, यह तो सरोज ही है। लगता है वह विद्याधर राय से पूछता है—"क्या ? केस कैसा है, जरा बतायें तो सही।" विद्याधर राय के उत्तर देने से पहले ही वे नन्हें-नन्हें पैर परिचित आवाज में कहने लगे—"ना, खास घबराने की बात नहीं। हालांकि केस खूब सीरियस है।"—तो सरोज ने उनसे कुछ नहीं पूछा, उनकी ओर देखा तक नहीं। कोई दूसरा देखनेवाला भी नहीं, न पूछनेवाला है।

कई तरह के जूतों की आवाज। कुछ अस्पष्ट बातें उनके पास से दूर चली गयीं। पीछेवाले दोनों में से एक ने कहा—"जयंत बाबू काफी मुश्किल में पड़ गये। आ नहीं पाये।···खबर आयी थी कि असिस्टेंट इंजीनियर विमल बाबू खुद डाकबंगले में बहुत बीमार हो गये हैं। उनकी स्त्री रो-धोकर निढाल। ये तो दूसरों का दुःख जरा भी सह नहीं पाते। बाध्य होकर छुट्टी लेकर अपनी गाड़ी में लेकर गये हैं।—"किसे लेकर गये हैं ?" शायद मूलचंद ने पूछा।—"विमल बाबू की स्त्री को।"···छप से छोटी आवाज आयी। मूलचंद ने अधजली सिगरेट बाहर फेंक दी। उसकी मोटी-मोटी आंखें सिकुड़ गयीं कुछ फुसफुसाकर कहने के लिए। बाद में फिर दूर हो गयी। मगर वह सबके साथ आगे बढ़ गया।

डॉ॰ मिस सुलोचना ने शायद ऑपरेशन रूम के पास पूछा—"आप विश्वंभर मंगराज हैं तो ? मैं डॉक्टर मिस सुलोचना।"···कुछ लोग एक साथ हंस पड़े शायद। मगर मूलचंद ही हंस पड़ा अबकी बार कई भूमिकाओं में। फिर फिसफिसाहट के बीच नंगे पैर थियेटर में घुस गये। किवाड़ खुद-ब-खुद बंद हो गये। विद्याधर राय नीचे उतर गये और अतीत में।

सूने उत्तप्त रास्ते में उन्हें एक कदम भी आगे मार्ग नहीं दीखा। यादों की बेशुमार भीड़। हाथ पीछे कर, नीचे देखते विद्याधर राय—क्रांतिकारी, समाजवादी नेता, समाज-संस्कारक आगे बढ़ रहे हैं। फंड के लिए चंदा उगाहने खुद जाना पड़ सकता है। इस मूलचन्द ने खबर भेजी थी तीन हजार का चेक देने के लिए। दुकान का एकाउंट दो घंटे शाम को देखने के लिए महीने के तीन सौ तक देने की बात भी कहलवायी थी।···

विद्याधर राय अचानक रास्ते पर लात मारकर तन गये। अधपकी भौंहें आकाश की ओर देख फुंकार उठीं। चारों ओर सूना सूरज, निर्जन रास्ता। उन्हें सुनाई पड़ा—"ना, ना—दूसरा रास्ता ही नहीं। ''उस मूलचंद के पास हाथ जोड़ भीख मांगे बिना तू जी न सकेगा। वह तेरी इज्जत ले सकता है, तेरे नाक में नाथ डालकर खींच सकता है, नचा सकता है, क्योंकि तेरे पेट के लिए भी तो वह कुछ टुकड़े डाल देगा।···जीने का और कोई उपाय है ?···ना ना ना···ना ! !"

उम्र के असहाय पथरीले बोझ तले फिर भी विद्याधर राय फन उठाये लंबे-लंबे डग भरते तपता रास्ता पार कर गये। उनके नाक की सीध में झुकी हुई धूप चमक रही है। लगता है सचमुच जैसे बूढ़े के अंदर से बारूद समाप्त ही नहीं हो रही। दबा दो, अभी भी बिजली की-सी कड़क की ढेर संभावना है !

बाईस

सूना जंगल का रास्ता बांका-टेढ़ा उठ गया है ऊपर की ओर। सारा जंगल उसी तरह उचक आया है इस संकरी चढ़ाईवाली सड़क पर आदमी को चढ़ते-उतरते समय देखने के लिए। संतरी की तरह कंधे से कंधा मिलाकर इन छोटे-छोटे उदभिदों की भीड़ खड़ी है, पालतू नींबू, जामुन, इमली और आम को लिये। कुछ दूर इसी तरह चले जाने के बाद चौरस मालभूमि

पड़ती है। यहां फिर रास्ता उतना तीखा नहीं रह जाता। इस दर्रे में बटोही थककर बैठ जाते हैं। पानी पीकर कुछ राहत की सांस लेते हैं और फिर निकल पड़ते हैं। गाड़ी के इंजन की प्रतिवादी घूं-घूं यहां बदल जाती है। वे गरजते नहीं। बहुतों का विश्वास है कि यहां घाटमंगला का निवास है। एक मंदिर भी ईंट और चूने से बनाया गया है। वहां थोड़ा सिंदूर और एक पीतल की थाली भांति-भांति के बटोहियों की नजर में पड़ते। किसी के मन में आया तो दो पैसे फेंक देता, न मन किया तो न सही, बगल देकर निकल जाता। गाड़ी में चढ़कर जानेवालों की तो बात न्यारी है। वे इधर-उधर नजर भी नहीं फिराते। पहाड़ की चढ़ाई के समय उधर देखने की फुरसत ही न होती।

विश्वंभर मंगराज उस रात एक ही सांस में भागता-भागता थक गया। देखता है गोरों का कब्रिस्तान, कुष्ठाश्रम वगैरह पार कर घाटरोड के जंगल में कुछ दूर तक घुस आया है। जिससे दूर भागने की वह कोशिश कर रहा है, वही उसके अंदर घुसकर खदेड़ रहा है। क्रोध, अपमान और डर मिलकर घड़ी-घड़ी में विस्फोट कर रहे हैं उसके अंदर। लावा की धार बही आ रही है आंखों से उछलकर, छाती लांघकर बीच-बीच में अपना गला आप दबाकर गूं-गूं गरज उठता है। मुट्ठी में बाल नोंचता जाता है सिर के। छाती पर धप-धप मुक्का जमाये जा रहा है। पसीने में तर मूछों के नीचे धुएं के बादल उगल दांतों को रगड़ रहा है—शिकार दीखे तो कच्चा चबा जायेगा। गति स्थिर नहीं, दिशा कोई निश्चित नहीं। बगुले-बवंडर की तरह विश्वंभर भागा जा रहा है। तनिक धीमा पड़ता है तो फिर वह खिलखिलाहट सुनाई पड़ती है। संकुचा मछली की चाबुक।...औंधा पड़ा विश्वंभर—जलते हुए क्रोध में मांसपेशियों का उबलता लौंदा—हिजड़ा कहीं का।...

भोर का सिंदूरा फटने में कुछ समय है। घने अरण्य में चारों ओर छपछप नीरवता। झकझोर हवा बहती जा रही थी। पहाड़ की चोटीवाले तीखे पेड़ों की फैली हुई शाखाएं हिल जातीं। पर यह सारी दुनिया एक तेज छंद में विश्वंभर मंगराज के कानों में धप-धप टकरा जाती। चेहरे से एक हाव उतर जाता, रोम-रोम से आग की लपटें छिटक पड़तीं।...घने

अंधकार मे दूर-दूरात मे पहाड़ पहले गमगमाता कांप उठा। धीरे-धीरे लदा हुआ ट्रक घाव-घाव गरजकर मुड गया। विश्वंभर की सास रुंध गयी। लगा जैसे कोई फरार आसामी है, उसे पकड़कर फिर जेल मे भरने के लिए गाडी चली आ रही है ? बगल मे गाडी के गुजरते समय लगा शायद वह रुकी, वह रुकी। भडाक से किवाड खोल ड्राइवर उतर आयेगा। पीछे से कूद पडेंगे अप्पया, लक्ष्मी, सुजाता, जयंत और उसे घसीट ले जायेंगे। बीच बाजार मे सबके सामने वह नगा खडा होगा। उसके चारो ओर ताली बजाकर सब हंसते होंगे, पत्थर मार-मार उसकी हसी उडाते होंगे—"जोरू का गुलाम! औरत को सभाल नही पाया। नामर्द के चेहरे पर चप्पल फेंको, थूको। थू··· थू। यह मर क्यों नही गया? जिंदा है, क्यो?" सबके सामने जयंत सुजाता की कमर में हाथ डालकर खींच ले जायेगा। सुजाता मुह मोडकर घूम जायेगी, दोनों चल पडेंगे। अप्पया मुंह खोले साप की तरह फुफकारेगा। उधर शायद अनेक जाने-अनजाने बाबू-भैया के बीच जयराम बाबू भी सिर नीचा किये चले जायेंगे। किटकिटाकर हंस पडेगी लक्ष्मी···अप्पया की औरत।

घावुक पडने की तरह लप से उठ पडा विश्वभर। ट्रक कब से कही निकल चुका था। चारो ओर देखने पर उसे कही से एक परिहास की-सी आवाज सुनाई पडी —"तू तो दिगंबर मगराज का बेटा है, सामंत घराने का बेटा है! यहा कैसे ?···हैं हे हैं! यहा कैसे ?"—चुप कर वे स्साले!! भडभडाकर कमीज उतार डाली और फाड डाली विश्वभर ने। रूई घुनने की तरह उसे तार-तार कर डाला और फेंक दिया सडक के दूसरी तरफ। वह निर्मम आवाज फिर सुनाई दी—"हें हे हे! अमुक दफ्तर में हेड असि-स्टेंट है!"—अबे स्साले! वे! थप्पड पडी थी मुह पर, गले पर।

—"तुम मायाधर राव एम० पी० के खुद जमाई!···"

क्रोध मे रो पडा विश्वंभर। उस रुलाई मे कच-कच अपने दाहिने हाथ को चबा गया। पथरीली धरती को चीर गया यह दस उगलीवाला। टप-टप दातों के बीच से खून बह गया, नाखून के बीच से।

"—तुम बी० ए० पास हो···महीने के महीने तनख्वाह पाते हो···तुम रवि-छवि के बाप हो···ही···ही···लक्ष्मी को रखैल बनाया है।"

पत्थर के गड्ढे से उठकर फिर भागा। तब तक पहाड़ की चोटी पर प्रकाश निखर आया था।···

घड़ी पहर दिन चढ़ आया था। घाटमंगला का पुजारी पहाड़ पर अपनी कुटिया से आकर देखता है देवालय में सिंदूर पुते बलि के पत्थर को बाहों में बांधे कोई आदमी पड़ा है। देह खुली है। सिर्फ एक धूल सना फुल पेंट पहने है। पत्थर की खूंटी से खून की धार नीचे तक वह गयी है। उसका नाक और माथा फटकर बेहाल हो चुके हैं। मगर आदमी सुबक रहा है। हठात साहस नहीं कर सका उसे छूने का। सोचा शायद कोई आदमी खुद इस तरह कर उसके माथे मढ़ देने बैठा हो तो।···या चलती गाड़ी से गिरकर यह हालत हुई हो, घसीटकर कोई इस हालत में डाल गया हो!···ओफ! होने दो। दुनिया से क्या धर्म उठ ही गया? दया-धर्म नहीं है, तो दुनिया चल कैसे रही है? "जै मां मंगला!" कहकर घसीट ले गया विश्वंभर मंगराज को मंदिर के पिछवाड़े बरामदे तक। उसे लगा जैसे यह लड़का बिलकुल हार गया है। शायद सब कुछ चुक जाने के बाद आकर मां के पास शरण आया है, विकल होकर सिर पीट लिया है।

विश्वंभर मंगराज का चेहरा पीतल की फूलदानी से मार खाने की तरह फूल आया है। हाथ से खून बहा जिससे हथेली भीग चुकी है। उंगलियों की पोर से मांस टूटकर लटक रहा है। दांत भिच गये हैं, होश डूब चुका है। नालायक को नालायक कहने पर क्या सदा ऐसी ही टीस होती है? आग का लुआठा निशाना साधकर फेंकने पर वह सारी दुनिया को जलाकर राख कर देगा, मगर सहेजकर पास रखो तो वह खुद जल-भुनकर रह जायेगा। कांच के बर्तन में गुस्सैल सांप को बंद कर दें, आखिर वह खुद को किच-किचकर काट खायेगा, कांच का घेरा कभी नहीं तोड़ पायेगा।···बेचारा विश्वंभर नहीं जानता था कि सरल, उदार, भोला सामंत का बेटा औरों के आगे इतना हास्यास्पद हो सकता है! सब कुछ जानकर भी कितनी निर्लज्जता से देखा, जयंत के साथ उसकी जूठ खाकर जीने की बात! कितना निर्बोध! आखिर सोचा कि लक्ष्मी उसे मानती है।···ओफ! प्रतिशोध कोई यों लिया जाता है?···इस्···इस्···मर जा तू! इस सिंदूर पुते पत्थर पर सिर पटक-पटककर मर जा!

तेईस

तीन महीने हो गये रवि और छवि को दादाजी के पास आये। दिगवर मगराज उस दिन बाहर चबूतरे पर बैठे पान पर सुपारी की कतरी रख रहे थे। बाछा ने कायदे से गले में गमछा डालकर पालागी की! पास खड़े रहे चुपचाप रवि और छवि।

"क्यों रे बांछा···बात क्या है?"

"मामतजी! क्या बताऊं? आपके आगे कहू भी तो क्या? वहा सह नही पाया तो मुह खोलना ही पड़ा। कल रात जो झगड़ा हुआ फिर वापस दोनो नही लौटे। मैं खुद ही दोनों बच्चों को लेकर चला आया। सोचा, इनका तो कोई कसूर नहीं हैं।"

निधि दलई जिस दिन बैलगाडी लौटा लाया उस दिन से दिगवर मगराज ने फैसला कर लिया था कि अब बस हो गयी।—सड़े फल को उसके नाके से लटकाये रखने में कोई फायदा नही। आखिर इन दोनों बच्चों की माया भी बूढे ने छोड़कर, दरकिनारे कर दी। अतः थोड़ी देर तक गभीर बने पान चबाते रहे। यह चुप्पी देख बांछा तनिक सहम गया। स्कूल में प्रार्थना के समय जैसे सावधान खड़े रहते हैं, छवि और रवि उसी तरह चुपचाप खड़े थे। छवि ने थोड़ा-बहुत समझा। उसकी आखो में पानी छलछला आया। वह सिर नीचा किये जूते में अगूठा दबाये धरती कुरेद रही थी।

बूढे कुछ समय तक चुप ही रहे। आखें मुदी थीं। चेहरे पर लगा मानो उनके मुह का स्वाद खट्टा हो गया है। फिर झटके में उठे। दोनो बच्चों को बाहों में भर लिया। दोनों को सहलाते जा रहे थे। आंखों से धार बह रही थी। पान चबाने के बहाने वे बहुत सारे आवेग के रास्ते को रोककर रूधे दे रहे थे।

बाछा की आखों से आसू ढुरक गये। गमछे के एक छोर से पोछ डाला। नाक में सू-सां करता खडा रहा। कुछ नहीं बोला। बहुत देर बाद

वे जाकर पान की पीक थूकने के लिए उधर कोने की तरफ गये। फिर सिर उठाकर भाप छोड़ते-से कहा—

"हां! प्रभु जगन्नाथ! जो करो! बुढ़िया होती तो अब यह जंजाल संभालती।···जा इनको अंदर ले जा और इनकी देख-रेख कर। सोमनाथ का कमरा खोलकर इनके लिए ठीक कर दे। ले यह रही चाबी।"···बच्चे भी बांछा के पीछे-पीछे अंदर दाखिल हो गये।···

उस जमाने का पत्थर का मकान। बड़ी-बड़ी दीवारें। खूब बड़े-बड़े पत्थर के खंभे। लंबा-चौड़ा दालान।···सोमनाथ उनके काका। एक-दो बार जाकर उन्हें बिस्कुट दे आये हैं, स्नेह भी दिया है और एक दिन पता नहीं क्या हुआ, रोते-रोते निकल गये। मां गुस्से में गर-गर होती रही।···काका के कमरे का ताला खोला गया—बच्चों ने देखा अंदर बहुत बढ़िया है। टेबुल, कुर्सी, खाट—सब तो बढ़िया! दीवारों पर कितने किस्म के फोटो। अचानक रवि ने कहा—"देख छवि! तेरी फोटो!" छवि देखकर खुश! काका, सच कितने अच्छे आदमी! भाई-बहन को एक बार खड़ा कर खुद फोटो लिया। शायद यह वही है।···उस दिन रात में दादा के पास बैठकर मछली के बीजों की भाजी और शोरबा खूब छककर खा लेने के बाद काका के कमरे में सोने गये। दादा एक बार घूमकर देख चुके थे। चारों ओर देखकर हंसे, कहने लगे—"वाह! अब सो जाओ!"—दरवाजे पर बांछा चटाई डालकर सो रहा।

अगले दिन उठे तो कुछ नया-नया, कैसे भी तो अटपटा-सा लगा। बांछा ने जब हंसते हुए आकर मुंह धोने के लिए पानी पहुंचा दिया, फिर सब कुछ कायदे में पड़ गया। दोनों फिर छलक उठे। दादा के चेहरे पर हंसी। घर में सबके चेहरे पर खुशी। दोनों नयी कोयलों को घेरकर हिल-मिल गये। घर के सारे नौकर-चाकर, रसोइया-गुमाश्ता—मंगराज सामंत के घर के जीवन में नया अंकुर खिला था, नया अर्थ कहां से आकर सबको हिला गया। आज अमराई, कल मछली का पोखर, अगले दिन नाले के किनारे की तीन फसलवाली क्यारी फिर गाय-गोठ···बच्चे भी उसमें खो गये। महीने भर बाद अचानक कभी कैसे चौंकाने की तरह याद आ जाती मां! याद आ जाते पिताजी! मन कुछ समय के लिए उदास हो जाता।

भय और आतंक से सहम-से जाते। फिर आखें रगडकर चारो ओर देखते —वह सब गायब हो जाता। बच्चे कूदते भाग छूटते। बूढे मगराज ने अब एक अवधान (पडितजी) को बुलाया है। बच्चो को पढायेंगे। समय देख-कर उन्हे गांव के स्कूल मे ले जाना होगा, नाम लिखाना है।

अचानक एक दिन आ पहुचे काका। गर्मी की छुट्टिया हो गयी थीं उनको। पहले तो रवि-छवि को गोद मे भरकर नाच उठे। हजार ताकीदें चलने लगी। पढाई की छोटी टेबुल, उसी के माफिक कुर्सी। तरह-तरह की फोटोवाली किताबें—अग्रेजी, हिंदी, बगला। मोटी-मोटी किताबो मे अजीबरग के, अजीब आकार के जीव-जतुओ के चित्र देखकर छवि-रवि मशगूल हो जाते। काका के पास से एक मिनट भी छोडने को मन नही होता। काका की वह मशीनवाली बसी लेकर पोखर के किनारे घूमते, उस दिन इतनी बडी रोहू पकड़ी थी। जितना भी मना किया रवि ने उसे उठा-कर लाने की जिद् की। आगे-पीछे लोग चल रहे हैं। सबको कौतूहल लग रहा था, सबसे ज्यादा रवि को। बाकी सब प्रतीक्षा मे थे कि छोटे मामंत *का शौक पूरा हो जाये तो फिर मछली घर तक ले जाते। बीच-बीच में वह* जिंदा मछली पूछ फडफडाती किलबिला उठती थी। रवि और कसकर पकड़ लेता। सबके पीछे बसी पकडे आ रहा था सोमनाथ। बच्चो के कितने अच्छे काका!—छवि काका का हाथ पकड़े जा रही थी। पूछती चल रही थी—"मछली पानी मे क्या खाती है? वहा उसे कैसे दीखता है? उनके छोटे बच्चो को तैरना कैसे आता है?"—इसी प्रकार हजार बातें।

ऐसे तीन महीने बीत गये। ··

उस दिन रात मे सबके लिए एक जगह स्थान बनाया गया था। दादा के लिए बड़ा पीढ़ा, बडी थाल। इतना बडा थाल! काका के लिए वह सब कुछ छोटा था। छवि-रवि के लिए नये बनवाये गये थे छोटे-छोटे पीढे, छोटी-छोटी थालिया, चौकोर पीढ़े दो, खूब चिकने और पीले-पीले। उनके लिए स्टील के बर्तन काका ने ला दिये हैं। उनमे बाह्मा जरूरत के मुताबिक परोस देता है।—जब कचहरी घर से दादा आ जाते, मुह से पान निकाल कुल्ला करते। इसमे देर होती तो बच्चे पहले ही बैठकर सोचने लगते। काका खडे रहते, दादा शुरू करें तो बैठें।

"क्यों रे रवि ! आज क्या कुछ तरकारी बनायी है ?" कहते हुए दादा हँस पड़े।

बच्चों को उत्तर देने की याद नहीं। पता नहीं कब भोजन शुरू हो चुका। बीच-बीच में दादा सिर उठाकर छवि को देख लेते। बोले—"क्यों री तेरी नयी कमीज तो आज सिलाई होकर आनेवाली थी ! आयी ?" एक साथ तीनों ने कहा—"हाँ" मगर रवि ने मछली का टुकड़ा मुँह में भरकर अचानक कोई दीवट पीटने की तरह कहा—"जयंत मौसा ने जो कमीज दी थी, वह तो इनसे बहुत बढ़िया थी।" अचानक मानो सबका हाथ थम गया। रवि को कोई परवाह नहीं। वह कहता जा रहा था, उधर खाना भी जारी था।···

"···जयंत मौसा छवि को बहुत स्नेह करते, मुझे बिलकुल नहीं। उसके कपड़े सदा रेशमी होते, जाली जरी, टिवकल, खूब बढ़िया-बढ़िया कपड़े। मेरा तो वही स्कूलवाला नीला पैंट, सफेद शर्ट—बस।"···हाट के बीच कब रवि दादा का हाथ छोड़कर भीड़ में घुस गया है, पता ही नहीं चला। सिर उठाकर देखा तो अपरिचित लोगों की भीड़। काका का सिर नीचा। दादा का सिर भी नीचा। छवि खा नहीं रही। कुछ घिर गया है सबके ऊपर। रवि ने ब्लू बियर्ड की निषिद्ध कोठरी खोल दी है शायद ! वहां अनेक सिर लटक रहे हैं। उसे कोई देखना नहीं चाहता, देखने से डरते हैं, अतः वहां सदा ताला लटका होता।···रवि भी कोई गलती कर बैठा है यह सोचकर सहम गया है। जयंत मौसा अच्छे आदमी नहीं हैं—यह बात तो कबसे रवि ने छवि को कह दी है। वह मानती न थी। उसका कहना गलत था। जैसे रात में सांप का नाम लेने से वांछा ने मना किया है, कुछ उसी तरह जयंत मौसा का नाम लेने में भी दोष है। मगर क्या किया जाये, कह तो दिया। इतना बड़ा बरामदा, बहुत सूना लगा। मछली के कांटे नीचे डालने की आवाज सुनाई पड़ी।

वांछा को लगा कोई अदृश्य बोझ उतरा आ रहा है। उसने हलके-से खांसकर पूछा—"सामंतजी माछ-भाजी थोड़ी और दूं ?"

दादा ने गला साफ कर कहा—"ना।"

इतना कह चुलू कर उठ गये।

कोई और क्या कहता ? सीधे मुंह धोकर खड़ाऊं पहनकर चल पड़े ।

छवि ने रवि की ओर देखा। काका ने रवि को देखा। उनकी आंखों में भर्त्सना भरी थी। "तेरा तो मुंह बहुत बढ़गया है रे रवि !" मुरब्बीपन में छवि ने तरेरा—"तू दादा के आगे क्या इधर-उधर की बक जाता है ?"

काका ने छवि से कहा—"हां, बच्चा है। कह दिया तो कह दिया। उससे क्या हो गया ? अरे बाछा ! अच्छा-सा टुकड़ा मछली का रवि के लिए लाना तो।"

रवि की आंखें थलथल थीं। नाक में आंसू भर आये थे, जलन हो रही थी। उसका पेट कोह से भर रहा था। ऐसा क्या कहा जो कभी उससे छुटकारा पा नहीं सकेगा ! काका कितने अच्छे हैं ! सच, जयंत मौसा क्या ऐसे हैं ? ना पिताजी भी वैसे नहीं हैं।···

काका ने कहा—"समझे रवि ! तू जिसे जयंत मौसा कहता है, वे असल में किसी के मौसा नहीं हैं। वे हमारे कुछ नहीं होते। वो बहुत दुष्ट आदमी है।

"जरूर होगा"—सोचा रवि-छवि ने। वरना काका इतने अच्छे आदमी होकर कोई झूठ-मूठ वैसा कहते ? रवि ने मन में तय कर लिया कि फिर कभी जयंत मौसा की बात नहीं करेगा। वह बहुत बुरा आदमी होगा। वरना दादा क्यों खाना खाये बिना ही उठ जाते ? मगर वो जो कमीज छवि के लिए लाये थे, वह इस आजवाली से अच्छी न थी, इस बात में रवि बिलकुल राजी नहीं हो पा रहा है। ठीक है, कमीज अच्छी हुई तो क्या मौसा अच्छे होंगे, यह कोई बात है ?···

छवि सोच रही थी प्राय: यही बात—कहां जयंत मौसा की कमीज, कहां यह कमीज ! फिर भी जयंत मौसा के लिए ही मम्मी डैडी झगड़ा करते हैं। और उस दिन। सिनेमा न जाकर मम्मी उनके घर जो चली गयी थी ? बाप रे···छवि और अधिक आगे सोच भी न सकी।···जैसे-तैसे निगलकर उठ गयी।

उस दिन और फिर बच्चों की गपशप नहीं जम सकी। सोमनाथ काका भी देर तक करवट बदलते रहे। नींद आने के लिए कुछ लिये हुए पढ़ रहे थे।···

"क्यों रे रवि ! आज क्या कुछ तरकारी वनायी है ?" कहते हुए दादा
स पड़ते ।

वच्चों को उत्तर देने की याद नहीं । पता नहीं कव भोजन शुरू हो
चुकता । वीच-वीच में दादा सिर उठाकर छवि को देख लेते । वोले—"क्यों
री तेरी नयी कमीज तो आज सिलाई होकर आनेवाली थी ! आयी ?"
एक साथ तीनों ने कहा— "हां" मगर रवि ने मछली का टुकड़ा मुंह में भर-
कर अचानक कोई दीवट पीटने की तरह कहा—"जयंत मौसा ने जो कमीज
दी थी, वह तो इससे वहुत वढ़िया थी ।" अचानक मानो सवका हाथ थम
गया । रवि को कोई परवाह नहीं । वह कहता जा रहा था, उधर खाना भी
जारी था ।...

"...जयंत मौसा छवि को वहुत स्नेह करते, मुझे विलकुल नहीं । उसके
कपड़े सदा रेशमी होते, खाली जरी, टिवकल, खूव वढ़िया-वढ़िया कपड़े !
मेरा तो वही स्कूलवाला नीला पैंट, सफेद शर्ट—वस ।"...हाट के वीच
कव रवि दादा का हाथ छोड़कर भीड़ में घुस गया है, पता ही नहीं चला ।
सिर उठाकर देखा तो अपरिचित लोगों की भीड़ । काका का सिर नीचा ।
दादा का सिर भी नीचा । छवि खा नहीं रही । कुछ घिर गया है सवके ऊपर !
रवि ने ब्लू वियर्ड की निषिद्ध कोठरी खोल दी है शायद ! वहां अनेक सि
लटक रहे हैं । उसे कोई देखना नहीं चाहता, देखने से डरते हैं, अतः व
सदा ताला लटका होता ।...रवि भी कोई गलती कर वैठा है यह सोच
सहम गया है । जयंत मौसा अच्छे आदमी नहीं हैं—यह वात तो कवसे
ने छवि को कह दी है । वह मानती न थी । उसका कहना गलत था ।
रात में सांप का नाम लेने से वांछा ने मना किया है, कुछ उसी तरह
मौसा का नाम लेने में भी दोष है । मगर क्या किया जाये, कह तो
इतना वड़ा वरामदा, वहुत सूना लगा । मछली के कांटे नीचे डा
आवाज सुनाई पड़ी ।

वांछा को लगा कोई अदृश्य वोझ उतरा आ रहा है । उसने
खांसकर पूछा—"सामंतजी माछ-भाजी थोड़ी और दूं ?"

दादा ने गला साफ कर कहा—"ना ।"

इतना कह चुलू कर उठ गये ।

कोई और क्या कहता ? सीधे मुंह धोकर खड़ाऊं पहनकर चल पड़े।

छवि ने रवि की ओर देखा। काका ने रवि को देखा। उनकी आंखों में भर्त्सना भरी थी। "तेरा तो मुंह बहुत बढ़ गया है रे रवि !" मुरब्बीपन में छवि ने तरेरा—"तू दादा के आगे क्या इधर-उधर को बक जाता है ?"

काका ने छवि से कहा—"हां, बच्चा है। कह दिया तो कह दिया। उससे क्या हो गया ? अरे बांछा ! अच्छा-सा टुकड़ा मछली का रवि के लिए लाना तो।"

रवि की आंखें थलथल थीं। नाक में आंसू भर आये थे, जलन हो रही थी। उसका पेट कोह से भर रहा था। ऐसा क्या कहा जो कभी उससे छुटकारा पा नहीं सकेगा ! काका कितने अच्छे हैं ! सच, जयत मौसा क्या ऐसे हैं ? ना पिताजी भी वैसे नहीं हैं।···

काका ने कहा—"समझे रवि ! तू जिसे जयत मौसा कहता है, वे असल में किसी के मौसा नहीं हैं। वे हमारे कुछ नहीं होते। वो बहुत दुष्ट आदमी है।

"जरूर होगा"—सोचा रवि-छवि ने। वरना काका इतने अच्छे आदमी होकर कोई झूठ-मूठ वैसा कहते ? रवि ने मन में तय कर लिया कि फिर कभी जयत मौसा की बात नहीं करेगा। वह बहुत बुरा आदमी होगा। वरना दादा क्यों खाना खाये बिना ही उठ जाते ? मगर वो जो कमीज छवि के लिए लाये थे, वह इस आजवाली से अच्छी न थी, इस बात में रवि बिलकुल राजी नहीं हो पा रहा है। ठीक है, कमीज अच्छी हुई तो क्या मौसा अच्छे होंगे, यह कोई बात है ?···

छवि सोच रही थी प्राय यही बात—कहां जयत मौसा की कमीज, कहां यह कमीज ! फिर भी जयत मौसा के लिए ही मम्मी डैडी झगड़ा करते हैं। और उस दिन। सिनेमा न जाकर मम्मी उनके घर जो चली गयी थी ? बाप रे···छवि और अधिक आगे सोच भी न सकी।···जैसे-तैसे निगलकर उठ गयी।

उस दिन और फिर बच्चों की गपशप नहीं जम सकी। सोमनाथ काका भी देर तक करवट बदलते रहे। नींद आने के लिए कुछ लिये हुए पड़े रहे थे।···

ऊपर अपने कमरे में दिगंवर मंगराज भी पूरे जाग रहे हैं। पान चवा रहे थे और कई वातें सोचते जा रहे थे।···चेमी का आना तो वे भी घर में पसंद नहीं करते। मगर रहम खाकर विशिया की मां ने लाकर यहां रखा दिया···कहा—"धान कूटनेवाली घर में रहे तो दस काम में सहायक होगी। वीस वर्ष वाप के घर रही, वहुत दुःख-सुख पाकर, तव उसका खसम लौटा था आसाम से। मगर ससुराल गयी—महीना-दो-महीना उस मरीज की सेवा-सुश्रूपा की और फिर रांड होकर लौट आयी। उसके तो दोनों कुल डुव गये। यहां न सही, कहीं तो पेट भर लेती।··· सूखते पेड़ में पानी पड़ने की तरह महीने भर वाद उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। चेहरे के रास्ते उमर चढ़ रही थी। राह चलता आदमी देखकर थम जाता।···आदमी का मन ही तो है।—विशिया की मां भी वेटे को लेकर चल दी पीहर—एकदम पंद्रह दिन के लिए।···

दिगंवर मंगराज करवट वदलकर सो गये। याद आ गया—वर्षा—अंधकार में···आगे-पीछे विचारशून्य वह रात। कितनी भूख आदमी के मन में छिपी रहती है! मौका पड़ने पर जल उठती है। चेमी तो तेरे घर में आश्रय लिए है, वेवा है, आगे-पीछे कोई नहीं। दोनों कुल सूने हैं···दिगंवर मंगराज तकिये में मुंह गड़ाये लाज छिपाने की कोशिश कर रहे थे। पिछले तीस वर्ष की लाज, पचास गांव के घर-घर में जानी-मानी लाज—कि मंगराज ने उमर के उफान में कभी पैर नहीं फिसलाया। विवाह कर घरवार वसाकर इस तरह के झंझट में पड़ गये।···वात खुल गयी। उन्होंने अपना कर्तव्य भी ठीक कर लिया था, मगर चेमी सिर उठाकर सवके आगे चलती-फिरती रही। वेटा पैदा हुआ उस दिन भी किसी ने उसके चेहरे पर जरा लाज या शर्म नहीं देखी।···वही है यह जयंत। उनके पाप का फल—परिड़ा के घर की वहू के पेट से हुआ—जयंत परिड़ा!

इस उत्तप्त घटना पर जला जा रहा है उनका घर-संसार। पत्नी ने मुंह फेर लिया, फिर कभी वात नहीं की। विश्वंभर के वारह वर्ष वाद जाकर सोमनाथ। उसके पहले वर्ष चेमी पता नहीं क्या कुछ खाकर मर गयी। उस पर भी लोगों ने कई वातें कह डालीं। दारोगा वावू ने आकर तरह-तरह की जिरह की थी। वारह वर्ष का कलह वहीं टूट गया था।···

उफ कमजोर है विशि की मां, मगर है कितनी घोर जिद्दी। तीन ही महीने हुए होंगे, सोमनाथ को बुला-बुलाकर शाप देकर चली गयी। कह गयी—"अब अपना संसार तुम सभालो। मैं ही तो काटा थी, सरक जाती हूं एक ओर। अब तुम कुछ भी करो, कोई एक शब्द भी कहनेवाला नहीं। मेरे कारण रुकावट थी। अब घर में कोई पूरा झुंड भी लाकर भर लो, कोई मना करनेवाला नहीं होगा।" दिगंबर मगराज ने हाथ पकड लिया था—"ना-ना, तू मुझे फालतू इतना मत झिडक। दोष किया है, इसके लिए तेरे कितने निहोरे किये, तूने सुना नहीं? कोई इतना निर्दय होता है?" उसने कुछ नहीं सुना और वैसे ही बेरहम बनी चली गयी।—जयंत के लिए भी पता नहीं क्या इच्छा हुई, मगराज ने उसे घर से निकाल दिया। उस दिन के बाद से चैन से दो बात करने उन्हें किसी ने नहीं देखा।···अर्सा गुजर गया। उस पर अनेक घटनाएं परत की परत ढकती चली गयी। दिगंबर मगराज ने बहुत सभालकर खुद को अलग रखा है। समय की भी एक पपडी जमती है। धीरे-धीरे लोगों की जबान से बात उतर गयी है। दिगंबर मगराज की वह पुरानी मान-मर्यादा लौट आयी। बीच-बीच में वे जयंत परिडा की बात सुनते हैं। उसकी पढाई, छात्रवृत्ति की बाबत सुनते तो लजा जाते। फिर जानबूझ अकेले में याद करते। शायद अच्छा भी लगता। इच्छा होती कि इसमें अपना दायित्व स्वीकार कर अपना अधिकार जताते। मगर वे उभर गये लोक लाज के डर से।···फिर विश्वभर का विवाह!—वह एक यादगार है। विश्वभर और जयंत की दोस्ती की बात वे जानते थे, मगर कभी प्रतिवाद नहीं किया। जो हो दोनों का खून तो एक है। जिस दिन विवाह के समय कन्यावालों की तरफ से जयत आकर उन्हें प्रणाम कर खडा हुआ, वे उसे देखकर चौंक गये। क्षेमी क्या इस तरह नये रूप में आ गयी? सच! कितना गोरा, वैसे ही खडे कान, सीधी नाक, काली स्याह भौंहें, मोगरे की कली-से दांत, हसने पर गालों पर गड्ढे।

विजली का धक्का लगने की तरह दिगंबर मगराज विस्तर पर बैठ गये। दोनों आखें खुली रह गयीं। जीभ लटक गयी, हाथ-पाव, सिर काप रहे थे धक-धक-धक।

किसी तरह लडखड़ाते सहारा लेते सोमनाथ के कमरे में पहुंचे। सोम-

थ वत्ती जलाकर क्या कुछ हाथ में लिये पढ़ रहा था। पिताजी का आना हीं जान सका। दूसरी खाट पर रवि-छवि एक जगह सो गये थे। मंगराज ाकर कुछ समय वैसे ही अपलक छवि के चेहरे पर निगाह टिकाये देखते रहे। हाथ-पैर और भी कांपने लगे। मुंह पर हाथ रख मुड़ने लगे तो सोम-नाथ ऊंघता-सा उठ पड़ा, आवाज लगायी—"कौन ?—वापू !!" देहरी पर कटे पेड़ की तरह ढेर हो गये दिगंवर मंगराज। सोमनाथ ने छलांग मारकर उन्हें थामा। "क्या हुआ, क्या हुआ" कहते वांछा ने उठकर टटोला। दूसरा टहलुवा छोकरा भी दौड़ा आया।

वूढ़े को उठाकर खाट तक ले जाया गया। पानी-वानी छिड़का, दवा की गयी तव जाकर उन्हें होश आया। वे सिर्फ आंखें फिराते देखते रहे—कुछ वोल न सके। सवको मन में पाप छू गया। सोमनाथ को पास खड़ा देख-कर वोले—"विश्वंभर को वुला···विश्वंभर···विश्वंभर···विश्वंभर!!" सोमनाथ और भी घवरा गया। पिताजी का हाथ पकड़कर पूछा—"क्या हो गया ? वापू ! इस तरह क्यों हो रहे हो ?" दिगंवर वेचैन हुए जा रहे हैं। सिर इधर-उधर झटपटा रहे हैं—"ना ना ! कभी नहीं। यह नहीं हो सकता। विश्वंभर सुनेगा तो काट डालेगा। मैं उसे जानता हूं, वह का डालेगा !! वुला···खवरदार !···उसे वुला !!"

वूढ़े की छाती धड़क रही थी। माथे पर काफी पसीना जम आया थ वांछा दौड़ गया निचली वस्ती से हेडमास्टर को वुला लाने के लिए, होमियोपैथी दवा दिया करते हैं। सोमनाथ की समझ में ही नहीं आया क्या करे ! वह वहीं पत्थर वना वैठा रहा। मंगराज चारों ओर फाड़े देखते रहे।

"ना ना ना। मैं तुझे काट डालूंगा···जा···आ···।" कहते स कमरे से ऊपर धनुष की तरह तन जाते।···"विश्वंभर का कोई दो है। उसे कोई नहीं छू सकता—सावधान ! दोष मेरा है। मुझे दोप मेरा है, मेरा-मेरा !"

हेडमास्टर को आते-आते घंटा भर। मंगराज थोड़े होश में अ शायद सो गये थे।

हो-हल्ला वुलाने-विठाने के वीच रवि-छवि भी जाग उठे

डर लगा तो वे भी आकर दादा की खाट के पास खड़े हो गये, चुपचाप।···
दिगंबर मगराज ने आँखें अचकचाकर हठात देखा। छवि की ओर निगाह चली गयी। समूचे काँप गये। एक चीख निकल गयी। सब चौकन्ने हो गये। बूढ़े ने साल के खंभ की तरह दोनों हाथ बढ़ाकर छवि का गला पकड़ लिया। दांतों से आग निकल रहे थे—चेभी। मैं तुझे मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। तू मेरे बड़े-बड़ों के आसन पर नहीं बैठ सकती···ई···ई।"
सोमनाथ जोर से चिल्लाया। वांछा और रवि भी। छवि की आँखें निकल आयीं, मछली की तरह छटपटा रही थी। जीभ बाहर आ गयी। चेहरा जामुनी पड़ गया। तीन आदमी···खींचतानकर किसी तरह जकड़न खुल ही नहीं रही थी। सब थरथरा रहे थे। किसी के हाथ-पैर थिर न थे।···ओ हो कैसा हो गया! ··बड़ी मुश्किल से हाथों का कसाव कम हुआ।
पेठे के नाके की तरह छवि लटक गयी। देह सारी थरथरा रही थी। उसे उठा ले गये दूसरे कमरे में। दिगंबर मगराज की देह काठ हुई पड़ी थी। छवि की देह तवे-सी तप रही थी सिर्फ टसक रही थी। रवि घबराया उसे आवाज-पर-आवाज दे रहा था। हेडमास्टर खुंटिया बाबू खुद व्यस्त हो गये, समझ में ही नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाये? सोमनाथ बावला हो गया था, कभी इस कमरे में, कभी उस कमरे में दौड़-धूप कर रहा था।
छवि का ज्वर चढ़ता जा रहा था। हालत काबू से बाहर थी। इसी में छवि ने बिस्तर पर ही पेशाब कर दिया। सोमनाथ ठहरा बच्चा। माथा घबरा गया उसका। कुछ समय कुर्सी पर बैठा रहा। आवाज सुनकर देखा तो रवि छवि के चेहरे को पकड़कर खींच रहा है। उसके सिर पर जरी का मुकुट था। कह रहा था—"छवि! मैं तेरा जरी का मुकुट अब नहीं फेंकूगा। मैं उसे पहने हूं...देख, देख! छवि देख तो सही।" रवि का चेहरा विकृत हो गया और वहां आंसू बह चले। वांछा बिस्तर पर मुंह रखे रो पड़ा।
पता नहीं क्या सोचकर सोमनाथ एक ही छलांग में जा पहुंचा बाहर-वाले कमरे में। किसी की ओर नहीं देखा। साइकिल उठाकर निकल पड़ा। निधि दलई ने रास्ता रोककर पूछा—"आधी रात गये कहां जाओगे सामंतजी? चलो मैं आया। मैं भी चलता हूं।"

गले में सोने की कंठी है।

मूलचंद सोंघी सिगरेट बुझाकर सिर पर उगलियां फिरा रहे हैं—"तो फिर अबकी राजन की बारी है। क्यों राजन ? ज्यादा के ज्यादा तीन साल, वरना छह महीने में सलाम करा देंगे। पाच सौ तोले के गोल्ड बिस्कुट जाघ में बांधने को कहा है। सत्ताईस तारीख को मद्रास मेल की स्पेशल बोगी में बैठकर आना होगा। वे कटक स्टेशन पर पकड़ने के लिए इंतजार करेंगे। उनका फोटोग्राफर होगा। प्रोग्राम के मुताबिक आयेंगे। बस फिर तुम्हें कोई असुविधा नहीं। अगले दिन उस इंस्पेक्टर के साथ मैं तुम्हें हाजत में मिलूंगा। खबरदार, वहां मुझे पहचानने का कोई इशारा न करना—केस रामसुमग के जरिये इंस्पेक्टर पकड़ता है। सबके लिए मैं इसमें नहीं हू। अबकी उनके कहे मुताबिक पकड़ा देने पर फिर छह महीने बीच बाजार में कारोबार का माल उठा लाने पर भी कोई कुछ कहनेवाला नहीं होगा। तेरे बेटे को गैरेज भेजना होगा तेरी तनख्वाह महीने में पंद्रह सौ रुपये।—फिर जेल स्पेशल पाच सौ और। पूरे दो हजार तेरी बीवी को हर महीने हमारा आदमी जाकर दे आयेगा।

राजन है वही अधेड़ अध्यापक की तरह माननीय चेहरे का आदमी। ···वह गंभीर होकर कुछ समय बैठा रहा। मूलचद ने तीखे गले से कहा—"क्या सोचते हो ?" राजन ने अचकचाकर कहा—"नहीं हुजूर ! सोच रहा था कहीं तीन साल हो गया तो, ससुराल में क्या कर सकते हैं ?" हें-हें कर मूलचंद सेठ हस पड़ा। मगर बाकी लोग चुप थे। फिर कटे गालवाले की ओर देखकर कहा—"तेरा क्या हुआ ? जेब नहीं कटती क्या ? तुम्हारी पलटन क्या कर रही है ?"

उसने उठकर कहा—"पलटन तो हरदम काम करती है, सरकार ! मगर सोचते हैं स्सालों की जेब न काटकर गला काटना शुरू कर दें। सब स्साले गरीब हैं इस मुल्क में। मालिक ! वरना आपकी खिदमत में ऐसे हजार-दो-हजार पेश ही नहीं करता।"

"अच्छा, अरे लच्छी सिंह ! तूने कितने चावल का बेड़ा पार किया ?" —"पार तो बहुत किया हुजूर, मगर आजकल के ये अफसर लोग भी बड़े निकम्मे हैं, स्साले। सौ के नोट पर कौवे के जैसे बड़े-से-बड़े भी लड़ जाते

हैं। होता क्या है कि शुरू से आखिर तक पैसा लगाना पड़ता है।"

मगर मूलचंद कुछ और ही सोच रहा था। अनसुनी करते हुए कहा—"अच्छा ! तुम लोग जाओ दो नंवर गाड़ी के लिए। और राजन तुम तैयार हो जाओ।"

"जी हुजूर, जी हुजूर।" कहकर सव उठ गये। मगर वह तांवे के तार जैसे दाढ़ी-मूछवाला आदमी उदास आंखों से उनके चले जाने की प्रतीक्षा करता रहा।

"क्यों वे, आज तो खूव गंभीर वना वैठा है।"—हंसकर पूछा मूलचंद ने।

"मेरा विभाग आज और काम नहीं कर सकेगा। ये सव इतने पक्के चोर हैं कि इन पर निगरानी रखकर रोज खवर देना, लगता है मेरे लिए कठिन हो रहा है।"

"अवे अपना मुखौटा उतारकर रख। हरामजादा कितनी चापलूसी दिखा रहा है !"

हें-हें कर चेहरे से खोल उतार दिया। असिस्टेंट इंजीनियर विमल वावू का नौकर। भोंदू, मुटकी आंखवाला वुद्धूराम !

"अच्छा डाकबंगले का क्या हुआ ?"

"वही पुरानी वात ! एक रात पूर्ण योग की शिक्षा खूव हुई। वस लौटकर चिड़िया मुरझा गयी है।"

"क्यों ? वह माल तो वैसा नहीं।"

"हुजूर, वात को तनिक समझें तव ना हो। एक गुजराती पेशेदार शिकारी को लेकर दढ़ियल सरदार वहां कैंप डाले पड़ा था यह वात जयंत वावू को पता थी। उस जंगली डाकवंगले में वावू वहुत वेरहम काम हो गया।"

"चुप कर वे ! स्साला रहनुमा वनता है ? वेटे जयंत की क्या खवर है ? वो जंगल का ठेका खुदीराम को दिया या नहीं ? स्टील चद्दरों की वो एजेंसी राठोड़ मलिक को मिली या नहीं ?"

वुद्धूराम जानता है कि ये सव मूलचंद सोंधी के एक-एक नौकर हैं। इस तरह नये-नये नामों पर काफी कारवार चलता है।

"हुजूर, अवकी थोड़ी दिक्कत हो गयी।"

"क्यों बे ?" सतर्क हो गया था मूलचंद। बुद्धूराम की आखों के अंदर झाका। पूछा—

"ठीक से बोल, बंधी-बंधायी तनख्वाह मिलती है इन अफसरों को या नहीं। खदड़िया नेता ने रुपये लेकर ऊपरी तबके में बांटे या नहीं ? मूलचद सोंघी के कागज को आठ घटे मे ज्यादा क्यों लगे ? रेडक्रास को एक लाख, आरोविल को पचास हजार, डिफेंस फंड में डेढ़ लाख दिया जा चुका है। अखबारवालों को बख्शीश भी गयी, फिर फोटो निकलने में क्या ढिलाई ? तू हरामजादा मेरे साथ चालाकी खेल रहा है ? क्यों ?"

अधिक कुछ सोचने से पहले बुद्धूराम के गाल पर ठाय से थप्पड़ जम चुकी थी, होंठ फट गया था, वहां से खून बह आया। मगर वह फिक से हंस पड़ा। आंखों के कोने सिकुड़े-सिकुड़े थे। दांतों के बीच से आवाज आयी—

"हुजूर के लिए यह गुलाम क्या नहीं कर सकता ! सरकार ?"

मूलचंद झटके से खड़ा हो गया। बहुत सुंदर, बहुत इज्जतदार। बुद्धूराम वैसे ही पड़ा रहा। वह जानता था कि आज जैसा दिन भी आ जायेगा। कलकत्ते के गरियाहाट में उसके सात मकान, दो राइस मिल और तीन माल गोदाम थे। मूलचंद दाव लगाकर मार बैठा है यह सारी संपत्ति। और आखिर उसकी बीवी को जबरदस्ती उठा ले गया है। कोई नहीं जानता कि मूलचंद ले गया है। दोष करामत मियां का है ! लोगों के जरिये मूलचद ने मियां का खून कराया है।...हामिद उसी दिन से जाज-पुर आकर मूलचद की नौकरी कर रहा है। कुछ दिन बुद्धूराम बनकर वह विमल बाबू के घर भी काम कर चुका है। उस पर कड़ी नजर ! मगर उसके अंदर आग जल रही है। वह कभी-न-कभी बदला ले ही लेगा।

बदला संभव हो नहीं रहा। मूलचंद उसके चारों ओर सात गाव की दीवार खड़ी किये है। उसके चौदह खून माफ हैं। वह जो चाहे कर जाये, ढंकने के लिए लोग हैं। जेल जाने और फांसी पर चढ़ने के लिए लोग हैं। ऐसी भेड़ों को खरीदने के लिए पैसे जेब में रखता है। सौ-सौ के नोटों का बंडल लेकर निकलता है तो अपनी मुस्कान और चेहरा मिलाकर वह सारी सरकार को सिर से पैर तक खरीद लेता है। जयंत बेटा सोचता है कि मूलचंद उसका दोस्त है। स्साला बेवकूफ ! सोंघी उसे घंटे भर में

हजम कर सकता है। हमीद को याद आया, किस ढंग से वालीमेला का कंट्राक्ट न मिला तो हंसा था उस पर। जयंत ते उठा-पटक की ! हर अफसर के घर जा करसन किये, कह-सुनकर उसके लिए लड़ाई की। हमीद ने आकर वह सारी दास्तान सुनायी है। इसके दो दिन बाद लछन्ना विहार से आया। मूलचंद अब गहरे पानी में उतरा है। उसकी चाल जानना हमीद के लिए भी मुश्किल है।

सोंधी चुपचाप सिगरेट चूस रहा है। बाहर मेघों की उमड़-घुमड़ गरज-तरज चल रही है। हमीद हाथ उठाकर होंठों से खून भी नहीं पोंछ पा रहा, न आंखों से पलक झपकाता। वैसे ही एक और राज्य की ओर अपलक देख रहा है।

मूलचंद ने खप से छुरी खोलने की तरह सौ रुपयेवाले नोटों का बंडल फेंक दिया टेबुल पर।

हमीद की आंखें सिकुड़ आयीं। शायद कुछ वैसे ही हंस दिया।

एक और बंडल फेंककर मूलचंद ने घड़ी देखी और चला गया। निःशब्द।

हमीद ने न मूलचंद को देखा और न फेंके गये उन बंडलों को।

वह समझ गया कि इस तरह मूलचंद उसे बरखास्त कर चला गया है। आम खाकर गुठली फेंक गया है। हमीद के चेहरे पर मेघ घिर रहे थे।--- आंखों पर बरसाती बिजली फट पड़ी। उसने कमर से छुरी निकाल नोटों की हत्या कर डाली। प्रत्येक कागज से तीन सिंह देखते रह गये। किसी नोट से रक्त नहीं झरा। हमीद में गरज उठा खूब पुराना स्पर्द्धित तैमूरलंग। फूली आंखें लाल कनेर-सी फैल गयीं। अंधाधुंध वह पागल-सा भोंकता जा रहा था छुरी, आकाश में, टेबुल पर, चमचमाते सोफे की गद्दी फटकर उखड़ आयी। भूखे शार्दूल ने झुरमुटे की ओर से झपटकर छलांग मारी है अपने शिकार पर। हमीद झपट गया किवाड़ों की ओट में। किवाड़ों के उस ओर लंबा बरामदा। कुछ दूर सिल्की पंजाबी, धोती और सिगरेट के धुएं की लहर बही जा रही थी। हमीद अपने जूतों से निकल आया। जीभ निकालकर चाट लिया गाढ़े रक्त की धार को। सारी चेतना निचुड़ आयी थी दो अस्थिर और उत्तप्त पसीने में तरबतर

रोयेंदार पैरों में से। संडासी की तरह जकड़नेवाले पंजों में। तरल, फेनिल, उबलती हिंस्रता आंखों से फटी जा रही थी और बिजली की तरह सक-सक चमकती छुरी की धार से दीवार के सहारे-सहारे कुछ कदम आगे बढ गया हमीद। एक किवाड़ खोलकर जब मूलचंद अंदर जाने लगा, हमीद छाया की तरह पीछे हो लिया।

सारा खून धप-धप करता चेहरे पर उतर आया। कान के रास्ते झांय-झांय लपटें जा रही थी। पिंजर पर हथौड़े की चोट कर रही थी, सचमुच अभी झर जायेगा हाड़-मांस का पिंजर।

यह मूलचंद का खास कमरा है। सबका विश्वास है कि वहां पांच-छह गुप्त दरवाजे हैं। इत्तफाक से किवाड़ की ओर पीठ किये खड़ा है मूलचंद। उसके सिर पर तैर जाती है सिगरेट की मोटी-मोटी रिंग।

आग की लपट जूट के ढेर को छू गयी। हमीद झपट पड़ा—छुरी जमा ही देगा।

मगर कुछ था जिसने उसका गला झप से दबोच दिया, दाहिनी कलाई को अंदर मरोड़ ले गया। सक से मुड़ गया मूलचंद और उसी क्षण सांप देखने की तरह वह समूचा कांप उठा। इसके बाद वह खूब स्थिर, अविचलित खड़ा था सिगरेट की रिंग छोड़ता। धुएं का फन उठाये।

गरज उठता था हमीद, मगर आवाज नहीं निकल रही थी, गले में ही अटक गयी थी। खच-खच उसी के पेट में वह पतली मूठ तक बार-बार घुस गयी। खून बिखर गया। गले की नसें निचुड़ने की तरह चेहरे पर फूल आयीं। प्रतिवाद करने पसीने में भरे पैर और सडासी की तरह दोनों हाथ छटपटाकर मूल गये हैं। कटी बकरी की तरह हमीद वहीं निढाल हो गया। उस पर निगाह रखे खड़ी थी दो लोमश गजी पहने छाया।

सफेद धोती और सिल्की पंजाबी के चिकने मांसल खंभे पर बन रहा था धुएं का तोरण। हीरे की अंगूठी बना रही थी सिगरेट की आग। नीचे पड़ी थी अभियोग, प्रतिहिंसा और क्रोध में जलते अंगारे-सी दहकती हमीद की अपलक आंखें।

खूब धीरे, एकदम ठंडेपन से सिर फिराकर मूलचंद ने दुबारा घड़ी देखी। सिगरेट फूकता जा रहा था। दोनों छायाएं झुककर घसीट ले गयीं

ाने और खून में डूबे मुटकी आंखवाले वृद्धूराम को। इस लड़ाई में वह र गया था। उस पर कोई बड़ा भारी दुर्मद चक्का चढ़ गया था। उसने तिवाद किया था सारी दुनिया के विरुद्ध। मगर उसका सब कुछ खतम हो या, वह मिट गया, किसी ने जबान नहीं खोली उसके पक्ष में। जंगल में ृग के मासूम मांस के लोभ में उसके गले में छेदकर खून पी जाये कोई तो केसी को उसमें क्या कहना है? अंधी हिंसा, निर्ममता इस जंगल की परं-रा है। नाखून, दांत और पंजे के जोर पर इस जगह जीवन-संग्राम चलता है' यहां हमीद के हारने की बात—आज नहीं, इसी तरह वह बराबर हारता आया है। ''मुटकी आंखवाला ही तो ठहरा और क्या होता!

प्रतिवाद करने की तरह गरज उठे आकाश में मेघ। मूलचंद ने फिर घड़ी देखी। वैसे ही मुंह नीचे किये पुकारा '''ल'''छ'''न्ना।"

छपाक-से उनमें एक छाया हाजिर।

"पांच मिनट में गाड़ी तैयार करो। कुछ दूर जाना है। वो पहाड़ी के ऊपर ढलाव पार कर जाना है। तुम भी तैयार हो जाओ। साथ में दो रिवाल्वर। एक मेरे लिए।"

गड़गड़ाते मेघ फिर गरज उठे। पल भर के लिए लछन्ना अनमना हो गया—"जी हुजूर।" कहकर एक ओर हो गया। मूलचंद वैसे ही सिगरेट पी रहा था। "बहुत हिम्मत स्साले की। ठहर, मैं तुझे ठीक कर देता हूं! नमक हराम! क्या कहा कि धर्से कर्पनजी ने तुझे पैसा देकर खरीदा है! क्यों? देख लूंगा तेरे को!—तू आज रातों-रात रुपये लेकर राजधानी जायेगा? '''हूं! अच्छा ठीक है—देख लेंगे!"

पच्चीस

अफसरों के क्लब में आज डिनर है। कृष्णमूर्ति को विदाई देने के लिए।

कृष्णमूर्ति अच्छी उड़िया बोलते हैं। वे बोलते हैं तो लोग समझ

जाते हैं। उनकी वाइफ अच्छा गिटार बजाती हैं। इससे भी अच्छी अंग्रेजी बोलती हैं। गाड़ी ड्राइव करती हैं। सबसे अच्छा सिलेक्शन उनका होता है—विदेशी पेय! ...उनकी सिफारिश के बिना मूलचंद मोधी क्लब के लिए माल नहीं पहुंचा पाता।

मिसेज कृष्णमूर्ति के डैडी नेवी में कैप्टन हैं। डैडी के साथ बहुत बार क्लब जाती थी। 'पे-डे' याने तनख्वाह के दिन डिनर की परंपरा उन्हीं की देन है। उस दिन सब अफसर पुरानी बाकी चुकती कर देते हैं, फिर आरंभ करते हैं नये हिसाब का। आखों में जब सिर्फ शराब दीखती, गलीचे पर सब फेंक देते अपनी-अपनी गाड़ी की चाबी का गुच्छा, फेंक देते पुराना संकोच, कुसंस्कार, सड़ी-गली दकियानूस संस्कृति को। तब उनकी मिसेज की आंखों में भी छलछलाता शराब का होली का खेल होता। वे उठा लेतीं चाबियों केगुच्छे, साथ में एक नये आभिजात्य का स्वेच्छाचार। किस हिस्से में कौई भी पड़ता। लाटरी उठाने की तरह रोमांचक उत्कंठा और अनिश्चितता। अगले दिन पहचानने और अदला-बदली के बाद अपने-अपने घर लौटते, तब तक एक निःसंकोच, मन के कोने-कोने को उल्लसित करनेवाली उन्मत्त अनुभूति होती।

मिसेज कृष्णमूर्ति का जाना क्लब के लिए अपूरणीय क्षति है। मिसेज कृष्णमूर्ति का जवाब नहीं। उनके जाने से क्लब का नैतिक बल टूट जायेगा।

मगर मिस्टर कृष्णमूर्ति के लिए आज डिनर है। उन्हें विदा दी जा रही है। इसके लिए अनेक मोटे चर्बीदार मुर्ग पंख छोड़कर सात टुकड़े हुए भाप छोड़ रहे हैं। कई स्कॉच की बोतलों पर जम गया है ठंडा धुआं। सब माड़ लगी कालर पर गला सीधा किये हैं। जूते चमचमा रहे हैं, मूंछ ताव खाये। चिकने-चुपड़े जूड़े चमक रहे हैं।

विदेश उत्सव का परदा झूल रहा है। बावर्ची उत्सव की पोशाक पहने हैं। चारों ओर झीनी-झीनी चमचमाती रोशनी। खिन-खिन करते कांच के ग्लासों का समारोह।

सफेद सड़क पर फिसलती आ रही हैं एंबासडर, फियट, स्टैंडर्ड।— उतरे आ रहे हैं डॉ॰घोष, सुनील बाबू, अनिल बाबू, श्री निवासन, शास्त्री,

मिस्त्री, घड़ेई और प्रधान।···रकम-रकम की महक, रंग-विरंगे कपड़े। मिस्टर और मिसेज की भीड़।

"हैलो श्रीनिवासन, परिड़ा कहां ?"

"अरे हां, हां, परिड़ा, जयंत परिड़ा कहां ? वो अब तक नहीं आया ? वात क्या है ?"

एक ने गिलास से कुछ पीकर धीरे-से दो शब्द कहे। उधर सात-आठ स्त्री-पुरुषों की हो-हो-हा-हा हंसी के तार इकट्ठे गुंथ गये। आवाज छत से टकरायी, दीवारों से टकराकर विखर गयी। अनेक कौतूहली चमचमाते जूते उधर वढ़ गये। सुन लें तो वे भी थोड़ा हंस लेंगे।

मांग हुई—वात फिर से कही जाये। सवके लिए कही जाये।

एक ने कहा—"जर्सी सांड को वरवाद किया जा रहा है, यह सुनकर वे गये हैं तहकीकात करने।"···हो···हा···हा !!

"गये हैं लुलुं डाकवंगले में पूर्णयोग ट्रेनिंग देने के लिए।"···हे ! हे ! हे ! हे !

"गये हैं अपने वचपन के दोस्त विश्वभंर मंगराज को ढूंढ़ने।"

"गये हैं राजधानी···किसे मारें, किसे तारें, वे ही जानें।"

हंसी का ज्वार संभालना कठिन है। क्लव की हर दीवार, छत, गलीच। सव हो-हा, हे-हे से हिल रहा है। हंसना एक फैशन है। इस तरह हंस न पाना, हंसते-हंसते पास वाले पर गिर न पाना गंवारूपन, भोंदू-पन है।

नशे में, हंसी में सवके चेहरे लाल हो गये हैं।···

जयंत घुस आया।···उसकी गाड़ी का आना कोई नहीं जान सका। उसका चेहरा भी अस्वाभाविक रूप से कुछ अधिक गंभीर है, शायद किसी जरूरी अवस्था के कारण लाल लेवल लटक रहा है उसकी आंखों पर।

हंसी थम गयी। उसके पास घिर गये अनेक कौतूहली जूते।—सवके मुंह लंवे, चमचमाते, वंद। घड़ी देख चारों ओर नजर घुमायी, फिर पूछा —"कृष्णमूर्ति कहां ?···आई एम सॉरी ! मैं अधिक नहीं रुक पाऊंगा। वहुत अर्जेंट है। मैं तुरंत चलता हूं।"

"क्या हुआ ?" "क्या वात है ?" "मैं कुछ मदद कर...

शिलाखण्ड की आदमकद मीनारें झुक रही थीं।

"नो, सेनर। कृपया निराश और सिरीज कम्पयुनि को मत देखो, समय में कल पर आकर मानी बात सुना।"

सिगरेट की राख की तरह बिखरी है ओरिचना।

"अजनबी को भगाता हूँ।"

एक गायकाना और एक अनाम दूती को नाचें और वो पर नाल परिदा रंग-रंग करता निकल गया। गाड़ी तेज से भारी थी पीछे पर।

काली पेड़, गाढ़ेर कतील जहाँ भूरिक प्रकाशनायी एक-दूसरे की दिवारें, एक-दूसरे पर झुके, और फिर से।...

उस गये अचानक कि भीषि अचानक गाड़ी रोककर आगे परिन्दा के थोड़ी-सी खिड़की में गाड़ी डालकर भी दिया। ओरिचा ज्यों गर्दन गाल नहीं। इसने उसकी कलिका तक जाती है और फिर आगे में लहरें लिया उतर-तीरे साथ ढीली-- भारी, रास्ते, निराकार।...ठीक है...सब ठीक है।...

मन में बिजली कौंध गयी। उलट-पुलट दिन रात के।

"हाँ...हाँ! मैं विश्वास नहीं करता! अब तक ईश्वर! यह जाना-पहचाना निश्चय—उसका, यह रास्ता, बहते हैं हजारों भी मार्ग हैं!...कहते हैं कि इस मार्ग के हैं! लेकिन यहाँ कौन मार्ग में नहीं है? आगर नहीं है कोई भी रास्ता इस बात देते। हूँ!...विराम यह तक और ईश्वर है। सपने दोनों हालांकि निरीह कम्पयुनि से कई गुना अच्छी है...देखिभाली सब मिल!..."

गाड़ी शहर छोड़ दिन पाने पर आ गयी थी। आकाश में इधर-उधर से बादल तिर घुमड़ आये। इस मील-मील फैली गाड़ी के भीतर आ जाती है। तूफान आ सकता है।

यहाँ को हजारों साल हुआ भी सब कुछ दे देंगे। यू लगता सूरजमुखी मेरा कौन है यहाँ कहनेवाला?—यहीं भी यह सोचती...आह!...गाड़ी हवाल कुर्सी के किनारे-किनारे छू गयी। फिर कहाँ हो गयी...मैं ईश्वर ढूँढ़ता, क्या भाग है उसका?...अनायास...उसकी भी यह बातें...सारे अधिकार है। लगता उसकी कल्पना भी करता है, आखिर क्या नहीं दिया

उजाड़ में छोड़ आया ! ···वास्टर्ड ! !"

"घर्से कहता है कि वह राजधानी में बंगला खड़ा करेगा। मूलचंद जो देने के लिए कह रहा है उससे भी बढ़िया। हो सकता है घर्से की ह्विस्की खालिस स्कॉच हो। ··आह, खूब प्यास लगी है।"

गाड़ी फिर अटक गयी। सारी गाड़ी के अंदर सूखी-सूखी प्यास भरी थी। जीभ, तालू, गद्दी की रैक्सीन सब सूखे-सूखे। खड़-खड़। टलटलाती झुक आयी स्वच्छ धारा। आकाश में अनेक मेघ, सांय-सांय करती हवा, मगर बूंद भर भी पानी झुका नहीं आ रहा।···न आये स्साला ! गाड़ी फिर चली।

"हा ! ···देखा जायेगा··· । हैंदर ! कोई नया आया है। स्साला बिना माल-पानी के फाइल छोड़ता ही नहीं। वह स्साला बीस से ज्यादा क्या चाहेगा ? साले को गाड़ दूंगा। देखें कैसे नहीं छोड़ता। घर्से तो मंत्री की बेटी के विवाह में निमंत्रण पाकर गया था। वह एक बड़ा प्वायंट है।—स्साला होगा नहीं, जायेगा कहां ? घर्से देना जानता है, खूब दिया है, ऐसे ही देता जायेगा। इस हीरे की अंगूठी ने तो सबको चौंधिया दिया है। स्साले मर जाते हैं जलन से।···छ्वे ! जिसका जो मन किया यार-दोस्ती में दे गया, उसमें क्या दोष है ?···वह स्साला चाहता है और देता, और नहीं तो एक नेकलेस सेट··या; ना, मैंने रोजो को जो दिया था उससे भी कीमती···मगर किसे देगा ? एक मिसेज परिड़ा होती तब न चलता।" ढेर की ढेर हंसी निकल रही थी पेट से।

"मिसेज परिड़ा···हा···हा नानसेंस।" गाड़ी के अंदर अपनी ही हंसी अजीब-सी लगी···मेघ घड़घड़ाकर गरज रहे थे।

"मुझसे शादी की सभी फिराक में हैं ? ऐसे किसी को फांस दे जो स्साली मेरी निगरानी करेगी ? और ये सब निस्तार पा जायेंगे। मैं किसी को छोड़नेवाला नहीं। इस समाज में बराबरी आयेगी, संपर्कों में किसी तरह का संकोच नहीं होगा—इसके लिए सारी दीवारें तोड़ डालने का प्रण किया है। सबके घर में कम-से-कम नंबर एक बास्टर्ड न होने तक वे समझ ही नहीं पायेंगे कि यह कितना स्वाभाविक है, कितनी सरल और कितनी जोरदार बात है ! ये स्साले बाम्हन ज्यादा अभिजात्य दिखाते हैं।

एक नहीं, कई बाम्हनी वेदी पर बिठाकर विवाह कर जयंत परिडा के घर का रास्ता दिखा देगा। वे देखती रहेंगी मेरी अनुकंपा को। मेरी असंख्य संतान गोद में खिलाती रहेंगी। उनके दादा तिलकधारी फलां आचार्य, फलां शतपथी'''सरकारी नौकरी में रहने तक एक से अधिक शादी नहीं की जा सकती! '''हा'''हा'''हू'''हू'''! एक-एक को त्यागपत्र देकर घर पर बांध रखने से नहीं चलेगा ?'''वे बेटी नहीं देंगे ?'''कौन है स्साला जो नहीं देगा ? मैं बड़ा अफसर हूं। मेरे पास बेशुमार दौलत है, रुतबा है, दबदबा है मेरा ! मैंने सरकार को सौ बार खरीदा है सौ बार बेचा है, और बेचूंगा।'''जापान गया था व्यापार समझौते के लिए।'''जर्मनी जाना है कारीगरों की टीम लाने के लिए। फिर अमेरिका का टूर है। सरकार का योग्य ऑफिसर, सरकार का प्रतिनिधि हूं ! '''मैं ही मालिक ! स्साला, राजा कृष्णमूर्ति क्या मुझसे भी सीनियर है ?सीनियर क्या है वे ?तू स्साला पहले पैदा हो गया इसलिए।—इसमें स्साले तेरी क्या बहादुरी ? प्रतिभा दिखा अपनी। तुझे स्साले 'लाइफ डिवाइन' दिया जाये तो पढ़कर क्या समझेगा ? स्साला ओछा कहीं का !"

गाड़ी फिर छप से रह गयी। जितना पीता है और तेज हो रही है। बेतहाशा बेलगाम प्यास! आदमी के आदिम नाभि केंद्र से इसकी तेज सांस चक्कर काटकर उठ आती है। उसे कितना भी आवरण में ढंककर रखो बीच-बीच में फूटकर बाहर निकल पड़ता है।'''दो-चार घूंट शराब को पीने से यह अमाप प्यास मिट सकती है ? मुंह में शराब पड़ते-न-पड़ते खून का ताप बढ़ जाता है, दिमाग में धुआं भर जाता है। कुछ क्षण डूब जाती है तृष्णा की तेज धार।

मैं क्या करूं न करूं, इसके लिए दूसरा कोई कौन होता है आदेश देनेवाला ? न्याय-अन्याय की लाल-पीली पेंसिल पकड़कर मेरे आचरण या बातचीत पर चिह्न लगानेवाले स्साले ये होते कौन हैं ?'''यह दुनिया चतुरों की है, ताकतवर की है। यहां जो जितना फायदा उठा ले, परिस्थिति को अपने मतलब के लिए जितनी काम में लगा ले—सीधी-सीधी बात है, इसे यों साफ-साफ समझ लो तो फिर चक्कर काटने की जरूरत नहीं। मार खाकर उस पर मरहम लगाना क्यों ?—स्साला न्याय, धरम !हाय-

पांव बांधकर आदमी को सूअर बनाने के धंधे हैं, एक-एक बेड़ी हैं बेमतलब।...ब्लडी फूल्स! मन ही मन स्साले स्वर्ग भोगते हैं! मंदिर में एक पत्थर को पुकारते रहो, जिंदगी बिता दो इसी में। उल्लू कहीं के! न ठीक से खाना, न सलीके से पहनना। चारों ओर से जितनी ठोकर खायेंगे, जितने बिलबिलायेंगे—उतना ही पुण्य होगा। पीते रहो स्सालो शून्य को। तुम्हें तो ठगकर, बहकाकर, लूट-खसोटकर खाते रहें, उनके लिए किस भोग-विलास की मनाही थी। तुम्हें बस आंख मूंदकर पोटली थमा दी और खूंटा बैठा दिया, अब खा रहे हैं सब कुछ तुम्हारा धन, संपत्ति।...उन्हें क्या नरक मिलेगा?...हा...हा...हा बेहया स्साले! इतना भी नहीं समझते नरक-फरक...अबे कुछ नहीं, वही अंधे की पोटलीवाला धंधा है...। यहां लेकर खा-पी लो। अपनी इच्छा से जी लो! हर पल पर लाद दो रोमांच की दौलत। जो स्वादिष्ट लगता है चुन लो, खा-पी लो। अगर बाहों में जोर है, खींच लो, उठा लो, गले पर एड़ी रखकर बढ़ जाओ।...मैं अपनी पूरी फरमाइश दुनिया से वसूल करूंगा। अपनी सारी इच्छा पूरी करूंगा। इस जिंदगी में न हुई, उसे विज्ञान से हो, योग के बल से हो, दस गुना, पंद्रह गुना, सौ गुना अमर कर भोगूंगा खुद को, अपने चारों ओर झूलते रसीले फलों के अंबार को।...बीच-बीच में यदि मन करे तो कुछ संगीत, कुछ योगदर्शन भी ह्विस्की के साथ पिया जा सकता है। यहां यही चरम सत्य है, यही अंतिम बात है।...इसके बाद फिर एक और बैठा है।—बैगन।...मेरे लिए खेत में किसान मेहनत करेगा। उसी तरह कुछ लोग मेरे लिए शास्त्र लिखेंगे। पढ़ेंगे। मेरी इच्छा हुई, मैंने सुना, पढ़ा, न हुई, न सुना। वह कोई जोर-जबरदस्ती नहीं। मैं उपयोग जानूं तो रोजी की तरह झुक जायेंगे सारे मंदिर के देवी-देवता, शास्त्र, दर्शन, शासन, सरकार। सबको झुकाकर चूसकर फेंक दूंगा। मैं भेड़ नहीं हो सकता। झुंड में रह वहीं खाना-हगना, एक तिनके को अनेक चबा डालने के बाद बाकी को खाकर जिंदा नहीं रह सकता। मेरे दांतों के बीच मांस का कतरा न रहे तो जीभ पर खून का नमकीन स्वाद कैसे आयेगा और उसके बिना जिंदगी नहीं। मैं शेर की तरह जिंदा रहूंगा। मैं अलैक्जेंडर।...जितने अधिक लोगों को रौंदकर जो खड़ा हो सका वह उतना ही बड़ा वीर है।..."

पहाड़ की चोटी पर उतर आयी औंधे मुंह खोले माल की तरह बिजली। कड़कड़ाकर टूटा वज्र। नदी की धार की तरह हवा का स्रोत सांय-सांय करता बह आया…

गाड़ी में बटन दबाकर रोशनी में घड़ी देखी जयंत परिडा ने।

"टैम इट। कुल टेन थर्टी। देखें, इसे पार होने दें। ठाढ़े के आगे झुकना जयंत की खास नीति है।…मंत्री के पी० ए० के साथ पहले बातचीत हो चुकी है। रातोरात बुलाया है वरना सरकार दिल्ली निकल पड़ेंगे। वहां एक छोटी पार्टी में धर्से ने पांच हजार रुपये का जुआ खेला है। पार्टी चलती होगी। फिर पी० ए० ने भेंट का निर्देश दिया है। स्थाला "राव जाते ही क्या उथल-पुथल हो जायेगा इसी भय से अंधेरे ही अंधेरे बुलाने में उसका मतलब है। हमारा भी करीब यही मतलब है, क्यों? तो यहां अंधेरे में डुबकी लगा वहां रोशनी में निकलना भी एक जोरदार कारगुजारी है। ऐसा कौन बैल है जो दोपहर के उजाले की इंतजार करता बैठा रहेगा?

जो हो बस इस थोड़ी-सी दूरी के बाद। शायद घाटमगला है—वहीं गाड़ी रखकर इंतजार करने से भी तो चल सकता है।

धूल और हवा का स्रोत काटती ऊपर चढ़ आयी जयंत परिडा की फियट गाड़ी।…

छब्बीस

सुजाता को भाई के साथ पीहर आये एक पखवाड़ा होने को आया। फिर भी देह बहुत कमजोर है। बेंत की कुर्सी पर क्लांत संध्या बिताते समय उसकी उदास आंखों में अतीत के अगणित अतिथि उतर आते हैं। उस भीड़ को हटाकर आज के दुर्बल नाबालिग क्षण और आगे नहीं जा पाते…कोई आकर खड़ा होता है तो पहचान के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

पीहर उजड़ चुका है। छोटा भाई इतना नशेवाज, जुआरी कि उसे कुछ भी पूरा नहीं पड़ता। उससे छोटा भाई स्कूल छोड़ आया है। छोटी-मोटी चोरी कर मार खा चुका है।···मम्मी का भी पहले की तरह पहनावा नहीं रहा। कई बार फफक पड़ती हैं। उस दिन रात नौ बजे सुजाता के कानों में आया—

"हम नहीं मांगता किसी का। क्यों उनमें से एक को पालने जाऊं ?—मेरे पास पैसा नहीं।"—सरोज का स्वर।

मां ने दबे स्वर में कहा—"अरे कितना हल्ला मचाते हो ? वह सुने तो क्या कहेगी ?"

"कहने से क्या हो जायेगा ?···मेरे पास पैसा नहीं।"

दम-दम पैर पटकता सीधा चला गया सरोज। सुजाता ने आंखें मींच लीं। अनसुनी की तरह पड़ी रही।

घर में पैसा नहीं। तो बैंक में भी नहीं ?···लाख रुपये छोड़ गये थे डैडी।—मम्मी के गहने क्या नहीं हैं ?—क्या जमीन से कुछ नहीं आता ? ताज्जुब है।

"मम्मी ! सुनना तो जरा।"

सकपकायी-सी आंखें पोंछती आ गयी मायाधर राय की विधवा पत्नी। उम्र थी जब लोग जाती हुई को मुड़कर देखते थे।—क्लब में इसके साथ जरा-सी बातचीत के लिए बड़े-बड़े अफसर खुद को धन्य मानते थे।···सुजाता को शुरू से ही अभिजात समाज में चलना सिखाया था।···जयंत को प्रश्रय देनेवाली भी यही।···शरीर ढल गया है। आंखें धंस गयीं। बिना पकनारा का सफेद मोटा कपड़ा पहने खड़ी हैं—बस···और कुछ नहीं।

अपरिचित एक गहरी सांस एक पल दोनों के बीच खड़ी रहकर निकल गयी।

"कितना चाहिए ? मैं दिये देती हूं।"

"अरे उस पगले की बात सुन ली। वो कुछ नहीं।"

"मुझसे छिपाने से कुछ फायदा नहीं। सिर्फ सरोज के जुए के लिए ही कम पड़ता है। फिर नशे के लिए और थोड़ा हिस्सा चाहिए तो संपत्ति को

उडाने में कितनी देर लगेगी ?"

माँ वहीं कुर्सी के पास झुककर बैठ गयी। बेटी की गोद में असहायता का एक आंसू भर ज्वार गुजर गया।

"रो क्यों रही है ? क्या होगा ? समझ ले मैं ही तेरा बड़ा बेटा हूं। मैं तुझे पास रखूंगी।...मेरे अनेक मित्र हैं। कभी रुपये-पैसे की कमी नहीं पड़ेगी।"

"ना...ना ...ना ना। यह सब झूठ है। तू इन सबमें और न पड़। मैं सब जानती हूं। विश्वभर घर छोड़ चले गये...तीन महीने होने को आये। बच्चे गये। दिगंबर मगराज ठहरा बूढ़ा। उसकी संपत्ति आधी तेरी। बस यही तेरा सहारा है। और ये बंधु-मित्र, कलत्र-पलत्र सब दो दिन के हैं। मैं जानती हूं उनका मतलब, अच्छी तरह।"

"जा जा—मूलचंद सोंघी क्या मुझे भूल जायेगा। अभी मांगने पर पांच हजार भेज देगा।"

"उहूं ! कभी भेजता, अब नहीं। उनकी चालबाजी मैं जानती हूं। तू उस हवा में न उड़ बेटी। तुझे मैंने ही, मुहजली ने उनके दल में चलने-फिरने छोड़ा था। भूल मेरी है। आंख होते हुए भी अंधी थी।"

"छि: ! मम्मी ! तुम भी किसी बुढ़िया खूसट की तरह बातें कर रही हो। मैं अपने फ्रेंड को न जान सकी तो तू जानेगी ? ला, कागज, पेन ! दिखा दूंगी तब तो एतबार आयेगा। जा, उठ ला।"

"कागज ?—इस घर में कागज कहां से आयेगा ?...कलम क्यों कर मिलेगी ? नालायकों को कागज-कलम से क्या मतलब ?"...लौटकर बोली—

"अरे सुजू...यहां कागज-कलम तेरे जाने के बाद से कभी नहीं आये।"

"मेरे सूटकेस में होंगे, ला।—यहां और क्या रहता ?"

राइटिंग पैड और शेफर्स कलम लेकर उसकी ओर बढ़ा दिये। सरक गयी घर में। वहां साधारण गुजारा चलाने तक के लिए पैसा नहीं। रोजगार नहीं। सुरंग में चले जाने पर रोशनी धीरे-धीरे बुझती जाती है। फिर तो आगे एकदम अंधेरा, सब कुछ डुबो देने लायक।

"डीयर चांद।···यहां आकर अचानक···शार्ट पड़ गया। विश्वास है···" वगैरह वगैरह। पसे के लिए किसी को लिखने की यह तो पहली मजबूरी···वहां ढाई महीने में विश्वंभर के रखे पैसे थोड़े-बहुत, बाकी जो कुछ बैंक में जमा था, साफ हो चुका है।···उसे लाने में जयंत ने ही मदद की है। वरना वह पैसा न मिलता।

अचानक सुजाता को लगा रीढ़ की हड्डी पर बर्फ की सिल्ली रख दी गयी है। छत पर से किसी ने धकेल दिया। पैरों के तलुवे सिहर गये। छाती धड़क रही थी।···अज्ञात भय से कहीं आकर खामोशी में अपने पंख झाड़ गया।···उसके हाथों में भी चूड़ी नहीं। न माथे पर सिंदूर। देह सूख गयी। आंखें झुक गयीं। सिर्फ एक बिना किनारेवाली धोती।—और कुछ नहीं।

सुजाता ने होंठ काट लिये और सीधी तनकर बैठ गयी। नानसेंस। ऐसा कभी नहीं हो सकता। ऐसे क्या एकदम हार मानी जा सकती है? नो। नो। कभी नहीं। मैं आज चलती हूं। यहां इस बुरी हालत में रहने से ही मन दब जाता है।

फरफर चिट्ठी को चीर डाला। अपने दोनों हाथों को देखकर रुक गयी। एं! ऐसे तो नसें कभी नही दीखती थीं। लगता है ये फिर नहीं छिपने-वाली। काफी समय तक चिकनाई की ओट में रहने के बाद सत्य विद्रोह कर बाहर आ गया है। ये विदेशी संतरी जब तक घेरे हुए हैं, इस राज्य के बंधु-कुटुंबी पास फटक नहीं सकते। है भी स्वाभाविक। सब एक ओर हो जायेंगे।···घिर आयेगा नसों से भरा मछुवारेवाला जाल।···हैं हैं···हैं यों पेसिमिस्ट विचारों की दवा एक कंकटेल ही काफी है।···हालांकि ड्रेसिंग रूम में बैठते समय कभी कैसे-कैसे विचारों की छाया उसके मन में आईने के इस छोर से उस छोर तक कौंध गयी है···ये सब बिलकुल बुद्धूपन की बातें हैं।···जिसके पास जिंदा रहने लायक कोई सामग्री नहीं, जो शुरू से ही विश्वास खोये बैठा है, उसके लिए यह सब सत्य हो सकता है। लेकिन जिसके लिए दुनिया हाथ फैलाये बैठो है, वह आदर-सम्मान के ढेर पर गुलाब की कली खिलाता चला जायेगा।—ऐसे विचारों के साथ उसका संपर्क क्या? ··मधुचक्र के केंद्रवाली रानी मक्खी के लिए आवारा

जंगली जीवन की अनिश्चितता निहायत एब्सर्ड, फालतू है। मगर सदा क्या वे सुजाता की ओर खिंच रहे हैं? दस वर्ष पहले उनकी भीड़ सभालना मुश्किल हो रहा था। उसकी हंसी का एक कतरा पाने के लिए आंखें बिछाये कितने भिखारी लाइन लगाये रहते। मगर जैसे आग के शोले पर धीरे-धीरे रात की परत रेशमी चादर की तरह फैलती जा रही है। देखने वाली आंखों में भी अब और आग नहीं दबकती। शायद अब उसे वे लोग उस तरह और देखते भी नहीं।···मूर्ख कहीं के, बिल्कुल नहीं समझते। आकर इतने पास खड़े होने पर भी नहीं पहचानते।···मगर अब, थोड़े और कायदे की जरूरत पड़ती है, लेकिन वह हम दे तो अब भी कौन है ऐसा जो झेल लेगा?···इम्पॉसिबल!!

सुजाता की भौंहें स्पर्द्धा में ऊपर उठ गयीं। उस बुड्ढे कैप्टन के इस उम्र में मुंह से लार टपकते देखा है।···मगर सब भूखे लोग हैं। उनके अंदर निर्लज्ज भूखे किसी नंगे भिखारी के लड़के की तरह टुकुर-टुकुर ताकती रहती है। यथासमय किसी को जरा हंसी, किसी को दो शब्द। और फिर किसी को जरा छू दिया 'बस इसी तरह थोड़ा-थोड़ा अनुग्रह बांटती है। न बांटना अशिष्टाचरण, गैरसामाजिक व्यवहार, जंगलीपन, गंवारूपन भरा अंधविश्वास कहलायेगा।

वैसे ही कुलाचार को घृणा से धकेलकर सुजाता फिर पहुंच गयी क्लब रूम की ऊष्मा के अंदर। रोम-रोम में पुरानी स्मृतियां फिर जाग उठीं। गीत, नाच, बिलियर्ड···डांस, डिनर, पिकनिक, कार···हाथ थामना ··होंठ छूना···टा-टा·· सुजाता की आंखों के आगे असंख्य आग की चिनगारियां दीख रही थीं। जीभ में पानी भर गया। ममी कह रही हैं कि यह सब कुछ नहीं है।···झूठ···वे लोग ही अधिक अपने हैं।···बिना सोसायटी के आदमी जिंदा कैसे रहेगा? ओ···आइ···मी!···अगर जयंत उसे अपनी कहकर क्लब न ले जाये तो?···धत ··देखा जायेगा, यह भी कोई समस्या है?···मूलचंद लेगा, घर्स लेगा, वरना वह खुद क्या नहीं जा सकेगी?···ना। वह अफसर जो नहीं है। न किसी अफसर की बीवी है। ··हूं, वह गीत गाने के लिए जा सकती है, नाचने जा सकती है···हो सकता है किसी और गेस्ट बनकर चली जाये—याने उसका

अपना कोई अधिकार नहीं !···शट अप ! वह ग्रेजुएट है। ··वह एस० पी० की बेटी है। याने विश्वंभर मंगराज की स्त्री···माने जयंत परिड़ा की फ्रेंड···हा ! हा हा हा ! वह क्या किसी की रखैल है ?···वह कोई सोसायटी गर्ल है ?···शट अप ! तुम सब सड़ियल जमाने के ठूंठ हो। नेचुरल है कि तुम मॉडर्न संपर्क समझोगे ही कैसे ? वह वेश्या है ?···वह बहुभोग्या है ?···ओफ···आइ सी ! उसे तुम क्यों इतना महत्त्व देती हो ? ···सिली !···अब तो परमिसिव सोसायटी हो गयी···आदमी अपनी इच्छा से जीना सीख गया है। तुम क्या जानती हो ?···वे सब अपने मतलब के बाद एक ओर खिसक जायेंगे। सारे संपर्क भूल जायेंगे।···भूल जायें मेरी बला से—वह किसी की परवाह करती है ? वे जायें, फिर और नये आयेंगे—फिर और···फिर···।

कोई नहीं रहेगा—रहने की जरूरत भी नहीं। तब अकेलापन···हां, मैं अकेलेपन से कोई डरती हूं ?

—चलेगी कैसे ?···रुपये···घर ?···कपड़े ?···दवा ?···हा-हा-हा···

सुजाता की आंखें खुली रह गयीं। लकड़ी पर टंगे जाड़ों के ओवरकोट चुपचाप खड़े रह गये—सोसायटी के लोग। बहुत दूर से घिर आते मेघ घड़घड़ाकर गरज उठे—"अरे सुजू ! सुजू रात बहुत हो गयी, बैठी-बैठी ऐसा क्या लिख रही है ?"—उस कमरे से ममी की आवाज।···वह स्वर भी बुझा-बुझा जा रहा है ! बुझ जायेगा एक दिन। फिर जो बच रहेगा वहां उसे नाम लेकर बुलानेवाला कोई न होगा। पौष की पतझड़ के बाद अजाना ठूंठ इसी तरह नीरव सूनेपन की ठंड में सिर उठाकर रह जायेगा —स्पर्द्धा में नहीं, बेबसी में, उसका सिर-माथा टूट नहीं पड़ता इसलिए—विडंबित, बिलकुल हारा हुआ, छिपा हुआ, बह जाते दीर्घ सांस के सहारे चढ़ा पत्थर।

मेघ फिर गरजे।

सुजाता के आंख, नाक, कान रुंध गये थे, गरम भाप को रास्ता ही नहीं मिल रहा था।···क्षितिज तक फैली हरी-भरी फसल पर दूर तक खारे पानी की बाढ़। उसके अंदर के बेशुमार सपनों पर से परत के परत रेशमी

आवरण फिसल पड़े। अदर की नगी मिट्टी का पुतला है जिसे अपनी उगलियों से गढ़ा है।···इस · इतनी बेहया, निर्लज्ज, नमकहराम हो सकती है दुनिया !···उफ · कितना भयकर है !

सुजाता की आखे जिसे अपलक देख रही है वह खाली चूने से पुती दीवार है। उसमे नाक, आख, कान कही कुछ नही। मन से एक और स्मृति का ज्वार आकर आखो पर छा गया। दीवारें हिल उठी। घर, बरामदा, जयराम बाबू, रोड, कार, जयंत···इतने परिचित ··अपनी तरगें एक साथ पी जाने को उसकी पलकें दूर तक फैल गयी।···इस भीड में दो सहमे-से शिशु ··छवि और रवि। कितने अच्छे दीख रहे हैं वे दोनों ! सच्चड़ कही के। लाना तेरा गाल इधर। मरोड दू···सिर सूखा रखना, क्या यह नया फैशन है ?·· हाथ हिल गया। सपना बिखर गया।···गहरी मास फिर जमकर फिर खडी हो गयी चूना पुती दीवार बनकर। ब्लाटिंग पेपर की तरह यह दीवार सचमुच उसका सारा खून चूस लेगी। अनंत पत्थर में फासिल की तरह वह वहा चिपक जायेगी अनत काल के लिए।

···माथे पर पसीने की बूदें उभर आयी थी। वह क्लात होकर कुर्सी के सहारे टिक गयी। ढीली पलकें झुक आयी कुछ मुटकर, कुछ सिकुडकर। ···मच पर से दोनों शिशु अभी भी नही उतरे थे। वैसे ही फुलके-फुलके गाल, बिखरे हुए बाल, तारों-सी आंखें। छवि हस रही है। उसकी आख की पुतलिया सूर्य की किरण मे झिलमिलाते दो झरने हैं—कितने गहरे, कितने निर्मल, कितने जानदार।···छवि सब समझती है।·· मगर वह कभी किसी को कुछ कहेगी नही। ··इस्स कितनी भली है वह लडकी ! छवि तो हमारा हीरा है। ··देख, देख तो यह साडी कितनी फबती है !···यह हार ले···यह घडी पहन ले। देखें-देखें·· वैसे क्या भ्रो बनाती हो ! तेरी तो वैसे ही खिची है।···वो जो कश्मीरी लडकी गवर्नर के साथ आयी थी, उसकी तरह।···अरे ठहर, इतनी हैरान क्यों हो रही है ?··· टाइम हो गया ?·· क्या···डिनर ? कौन ?···जयंत परिटा के साथ जायेगी ?

"ना, ना। नो···आइ से इम्पॉसिबल !!"···

उठी सुजाता।

उस कमरे से आवाज सुनायी पडी—"क्या सुजू ! क्या हुआ ?" ममी

ने सुजाता को देखा तो वह थर-थर कांप रही है।···वह रो उठी। धीरे से लेकर सुजाता को खाट पर सुला दिया।

मेघ गड़गड़ाकर गरज उठे।

सत्ताईस

"क्यों, जयराम बाबू घर पर हैं ?"—कहते हुए अंदर दाखिल हो गये विद्याधर राय। कई दिन बाद आये थे।

किराये का मकान। काफी छोटा है। काफी नीची छत। मुंह अंधेरे का समय होगा। अंदर झक-झक जलता हुआ चूल्हा। उसके प्रकाश में अचानक किसी अपरिचित को देखकर वे संकोच में खड़े हो गये।···

खूब पतला, हड़ीला आदमी, खुली देह। एक गेरुवे रंग का गमछा पहने है। दाढ़ी में कुछ सफेदी। माथे पर गेरुवा फेंटा बंधा है। झुककर चूल्हा फूंक रहा है।

"यहां जयराम बाबू नहीं हैं ?"—सवाल विद्याधर राय ने पूछा। खूब छोटी-सी हंसी और वैसे ही छोटा-सा उत्तर था—"नहीं हैं।" विद्याधर राय चले जा रहे थे। फिर कुछ सोचकर मुड़े। आवाज तो खूब परिचित है। कुछ जाने-अनजाने से ठिठके रह गये।

अचानक चौंककर बोले—"कौन, जयराम बाबू ?" कहते-कहते धम-से बैठ गये जमीन पर। ठोड़ी नीचे हो गयी थी विस्मय से।

"बैठिए। मैं अच्छी चाय बनाना सीख गया हूं। एक कप पीकर जायें।"

विद्याधर राय हाथों के बल थोड़ा पास आ गये। फिर जरा गौर से देखा। छोटी दाढ़ी, गेरुवा फेंटा सिर पर और बीच में जयराम बाबू की वे ही आंखें, वही हंसी !!···शायद तीन-चार महीने हो गये। भेंट ही नहीं हुई। विद्याधर राय की आंखें नम हो गयीं। होंठ थर्रा गये और नाक से पानी बह निकला।

जयराम के चेहरे पर वैसी ही निर्मल हंसी। चुपचाप उस गरम अल्मूनियम के डिब्बे को उतार रहे थे। ढक्कन उतारकर उसने धुएं में से कुछ देखा और फिर ऊपर लगा दिया।

"और कहिए, विद्याधरजी! आपका हाल ठीक?"

"वो बात पीछे। पहले यह बतायें कि यह माजरा क्या है? आपने कब से दीक्षा ली? किससे?···कभी चर्चा तक नहीं की?"

फिर कुछ हंसी।

"कहता तो आप भी यह ठगों का भेष धारण करने?"

इस तरह निर्मम होकर सच कहना उनकी आदत है—विद्याधर राय ने सोचा। मगर दीख रहा खूब जोरदार है। लगता है जैसे यही कोई किनारा पा गये। "हम रहे हैं किस कदर!···हम पा रहा है यह आदमी, यही तो सबसे आश्चर्य की बात है।···और कुछ पास आ गये। इसी बीच विद्याधर राय का स्वास्थ्य कुछ सुधर गया लगता है। काफी मोटे-मोटे भी हो गये।

चाय दो घूंट एक कप में डालकर उनकी तरफ रख दी जयराम ने। अपने लिए कुछ ढक्कन में रख छोड़ी।

विद्याधर राय खूब विस्मय से चश्मे के अंदर से देख रहे थे उन्हें। बहुत कुछ बदल गये हैं वे। सबसे ताज्जुब तो चेहरे पर निरंतर बैनती हंसी पर आ रहा था। गेरुवे के छोटे-से फेंटे की तरह हंसी।

"क्या गुरु दीक्षा ले ली?"

विद्याधर राय वैसे ही भोले समाज-सेवक रह गये। थोड़ी बहुत पत्रकारिता करने की अभी भी इच्छा है। फिर कुछ हंसे जयराम। कहा—"ना।"

"तो फिर यह सब क्या है? गेरुवा किस लिए?"

"ठगने के लिए ··चाय पीजिए।"

साफ हंसी और बातों में भी साफगोई। कभी कोई संदेह नहीं कर सकेगा ऐसी स्थिर आवाज।

"ठगने? किसे?"

"पहले खुद को। फिर विश्वास से अंधे कुछ गरीबों को।"

मगर पूछने की बात मुंह से नहीं निकल रही।

फिर कुछ हंसकर—"क्या फर्क पड़ता है, आप कुछ भी करें। बिना ठगे भला निरावरण सत्य को लेकर चल सकता है ?"

"मतलब ?"

"चाय कैसी बनी ?"

"बहुत अच्छी।···मगर बिना ठगे क्यों नहीं चलेगा ?"

चाय पीने की 'सुड़-सुड़' आवाज, आंख के कोनों में मिजी-मिजी हंसी।

"अच्छा, मूलचंद सोंधी गुमाश्तागिरी के लिए क्या देता है ?"

विद्याधर राय की आंखें झुक गयीं। जमीन पर धीरे से हाथ घुमा लिया।

"किया भी क्या जाये ? जीना तो पड़ेगा। सबके बावजूद जीना पहली समस्या है।"

फिर जरा-सी हंसी। चाय सुड़कना जारी है।

लज्जा को हटाकर सचमुच जैसे चाय गले के नीचे उतर ही नहीं रही।

"आपके मालिक के साथ जयंत परिड़ा की नहीं पटती इन दिनों।"

"पता है।"

तभी आ गया एक पिल्ला, पूंछ हिला-हिलाकर वह पहले जयराम बाबू के सहारे नाना भंगिमा में एक-दो बार अपनी देह घिस ली। कई बातें कह गया अपनी उस कूं-कां भाषा में।

आवारा पिल्ला शायद दुनिया में आये दो महीने हुए।

"हां। हां। चाय में मुंह मार देगा।" कहकर बिना कारण अपनी गरम-गरम चाय को सुड़क गये विद्याधर राय। कुत्ते का पिल्ला धीरे-से जयराम की गोद में बैठ गया। शांत शिशु की तरह ढक्कन दिखाया तो सारी चाय चाट गया।

विद्याधर राय को बात इतनी स्वाभाविक लगी, इतनी पुरानी आदत लगी कि बिना कुछ बोले चुपचाप देखते रहे।

"लगता है इस बीच बहुत कुछ बदल गया है।"

"अबे ! जा, अब खेल !···आपको कुछ काम था ? लाइए इधर, वह

कप धो लाऊं।"

"हां, हा, मैं खुद धोये देता हू।"

"तो रहने दें वहीं, फिर देखा जायेगा।"

"जयराम बाबू! यह सब कैसे हुआ, भला?"

"तो पत्रकारिता अभी भी छोड़ी नही?"

"ऐसा कुछ तो नही सोचा। खुद समझ नही पाया इसलिए पूछ बैठा। चारों ओर देखने पर थोड़ी थकावट आ गयी। कभी-कभी रात में नींद नही आती। देह भी तो कैसी रोगी हो गयी है। आगे-पीछे तो कोई है नही।—सोचा था इस स्साले समाज को बदल डालू। एक-एक को खींचकर गोली मार दू। सब खिसक गये।"

"आपकी भाषण देने की आदत भी छूट गयी लगती है।"

"बिलकुल ठीक कहा। अभी भी कहे तो दो-एक भाषण चला लेंगे, मगर अदर से जोर देकर कहा नही आ सकेगा। सब जडें सूखने को हुई। उस जड़ मे पानी देने के लिए तो मूलचद के यहा गुमाश्तागिरी की है।"

"बस! बुरा क्या है? जो हो आपके साथ भेंट हो गयी। ठीक है।"

"मतलब, आप कही जाने की कोई योजना कर रहे हैं?"

"यह चला।"

"निकल पड़े? किधर?"

चौंक पड़े थे विद्याधर राय। घुटनों पर जोर देकर उठ खड़े हुए। ताक रहे थे विस्मय से, भय से।

"एक अनुरोध रखेंगे?"—फिर बैठ गये विद्याधर राय।

"नही, तो रहने दें।"—मुस्कराकर जयराम बाबू ने कहा।

"ना-ना बोलें, कहते क्यो नही? क्या?" काफी बेचैनी और उत्साह था या शायद उद्वेग था विद्याधर राय की आवाज में।

"बहुत-सी किताबें शायद वे सेर के भाव बेच देंगे।"

"कौन? कैसी किताबें? मतलब, आपकी किताबें?"

विद्याधर राय को याद आयी जयराम की थाक की थाक करीब हजार किताबें होंगी।

"अच्छा, विद्याधर बाबू! तो मैं चलता हूं।" आवाज फिर भी स्वाभा-

मगर पूछने की बात मुंह से नहीं निकल रही।

फिर कुछ हंसकर—"क्या फर्क पड़ता है, आप कुछ भी करें। बिना ठगे भला निरावरण सत्य को लेकर चल सकता है ?"

"मतलब ?"

"चाय कैसी बनी ?"

"बहुत अच्छी।···मगर बिना ठगे क्यों नहीं चलेगा ?"

चाय पीने की 'सुड़-सुड़' आवाज, आंख के कोनों में मिजी-मिजी हंसी।

"अच्छा, मूलचंद सोंधी गुमाश्तागिरी के लिए क्या देता है ?"

विद्याधर राय की आंखें झुक गयीं। जमीन पर धीरे से हाथ घुमा लिया।

"किया भी क्या जाये ? जीना तो पड़ेगा। सबके बावजूद जीना पहली समस्या है।"

फिर जरा-सी हंसी। चाय सुड़कना जारी है।

लज्जा को हटाकर सचमुच जैसे चाय गले के नीचे उतर ही नहीं रही।

"आपके मालिक के साथ जयंत परिड़ा की नहीं पटती इन दिनों।"

"पता है।"

तभी आ गया एक पिल्ला, पूंछ हिला-हिलाकर वह पहले जयराम बाबू के सहारे नाना भंगिमा में एक-दो बार अपनी देह घिस ली। कई बातें कह गया अपनी उस कूं-कां भाषा में।

आवारा पिल्ला शायद दुनिया में आये दो महीने हुए।

"हां। हां। चाय में मुंह मार देगा।" कहकर बिना कारण अपनी गरम-गरम चाय को सुड़क गये विद्याधर राय। कुत्ते का पिल्ला धीरे-से जयराम की गोद में बैठ गया। शांत शिशु की तरह ढक्कन दिखाया तो सारी चाय चाट गया।

विद्याधर राय को बात इतनी स्वाभाविक लगी, इतनी पुरानी आदत लगी कि बिना कुछ बोले चुपचाप देखते रहे।

"लगता है इस बीच बहुत कुछ बदल गया है।"

"अबे ! जा, अब खेल !···आपको कुछ काम था ? लाइए इधर, वह

ज्वालामुखी की लपट। मगर उनके पास तक पहुंच नहीं रही थी। आकाश में दूर तक एक तारा रह-रहकर टिमटिमा रहा है। वहां पहुंचे तो देखा कि उसकी प्रत्येक लहर में कितनी अग्नि है, प्रत्येक धूम्रवलय में कितने विस्फोट हैं!

जयराम बिलकुल चुप हैं, निर्लिप्त हैं।

काफी पख फड़फड़ाकर विद्याधर राय क्लांत हो चुके थे। चारदीवारी से शीतल नीरवता झांपती आ रही थी। अपने अंदर की तपिश से फिर भी वे फुफकार रहे थे। नासा फूली हुई थी।

कुछ क्षण मुंह फेर इस तरह बैठने के बाद फिर उनकी आवाज सुनायी दी। उसमें कुछ शंका, संदेह आ गया था, तो भी खूब तेजी थी।

"आप क्या इस तरह कुमपटिया बाबाजी का वेश पहनकर भीख मांगेंगे?" - अंतिम दो शब्द कहते-कहते विद्याधर सिर्फ दो धार उबलते आंसू की रह गये।

शायद धीरे से एक गहरी सांस सुनायी पड़ी। विद्याधर राय झटके से घूम गए।

जयराम उन्हें वैसे ही देख रहे थे। वैसे ही हंस रहे थे और हंसते-हंसते कहने लगे—"बात आपको सीधे न कही जाये तो शायद आप नहीं छोड़ेंगे। यह भेष बदलना मूलतः आत्मरक्षा के लिए है। इस भेष को देखकर कम-से-कम कोई पास नहीं फटकनेवाला। डर होगा कि शायद सोख न लूं। हम दरिद्रता से नहीं डरते, वह तो हमारी चौदह पीढ़ी के अधिकार की चीज है। हम डरते हैं दान से···आप सोचते हैं इस तरह सूख-सूखकर भीख मांगते-मांगते मरने निकला हूं! कभी नहीं। वरन खुल्लमखुल्ला जीने निकला हूं। यहां हम शिष्टाचार पहनते हैं, स्वाभिमान पहनते हैं, फैशन ओढ़ते हैं। खाते हैं सिर्फ कुछेक अभ्यास, कुछ कांटे और चम्मच। चबाते हैं कच्ची-कच्ची भूख। कहते हैं ढेर सारा झूठ, जो हमारी आंखों के आगे इंद्रजाल की शाखा फैलाकर पसर जाता है, गांजे के धुएं की तरह फैल जाता है।···आपको 'चुप कर बे धोखेबाज, सुविधापरस्त, ढोंगी', कहने का मेरे जैसे हिजड़े फायदे की आशा करते चिकने जाल-फसादी लोगों में साहस नहीं।"

विक थी, आंखों में हंसी भरी थी।

विद्याधर राय अचानक जरा तेज हो गये—

"असंभव जयराम बाबू, आप ऐसी आत्महत्या नहीं कर पायेंगे। आप हार गये हैं। इतना तगड़ा योद्धा हार जाये और इस तरह हारे! सहा नहीं जाता। आप क्यों निकल जायेंगे?...कहां जायेंगे? आपका गुजारा चलाने के लिए यह कुंठित संसार राजी नहीं, तो क्या आप इस तरह एक ओर हट जायेंगे? छोड़ देंगे यह सारी धरती सिर्फ इन चौपायों को चरने के लिए? ना, वैसा कभी नहीं हो सकता! मैं आपको नहीं जाने दूंगा।"

विद्याधर राय भाषण नहीं दे रहे थे। कहने का ढंग हालांकि पुराना था, स्वर भीगा-भीगा था। आंखों में आवेग का धुआं, रोम-रोम में आहत आत्मीयता।

जयराम के होंठ सूखे न थे। मगर उनके चेहरे की सीमा पर वैसी लहरें भी नहीं थीं। वैसे भी तो भावांतर आ गया था।

विद्याधर राय आवेग के प्रवाह को रोककर खड़े नहीं हो पा रहे थे। आदमी को गला काटकर कच्चा खा जायेंगे, मगर वह चूं भी नहीं करेगा! ...उस सा'ब ने ठीक ही कहा था। उनके देश में हमारे निरन्न लोगों की बात कही तो वे मुंह बाये देखते रह गए। कहने लगे—"बिना खाये-पिये पेड़ के नीचे क्या सचमुच आदमी जिंदा है!—कैसे जिंदा है?" मगर वह हुआ तो क्या हुआ, अच्छी तरह पहचान थी उसे। बोला—"सिर्फ ही नहीं हैं, खूब संतोष के साथ हैं। वहां लोगों ने असंतुष्ट होना नहीं जाना, प्रतिवाद करना नहीं सीखा। वे पेड़ की तरह जीते हैं। डाल, जड़ काट डालो तो भी एक-एक पौध छोड़कर सूख जाते हैं।" ठीक कहा था उसने। हम कुछेक क्लीव हैं, जिन्हें उदिभद होने का भी अधिकार नहीं।

हंसी की लहर फिर बिखर गयी।

"बात क्या है, विद्याधर बाबू? आप मेरे साथ चलना चाहते हैं?"

"असंभव। मैं पीठ फेरकर यहां से खिसकनेवाला नहीं हूं। हारूं चाहे जीतूं, आमने-सामने लड़ते-लड़ते मर जाऊंगा। आप पर से मेरा सारा सम्मान, सारा विश्वास टूट गया। आप पलायनवादी हैं, स्वार्थी हैं, कमजोर हैं—एक जंतु..."

ज्वालामुखी की लपट। मगर उनके पास तक पहुच नही रही थी। आकाश मे दूर तक एक तारा रह-रहकर टिमटिमा रहा है। वहां पहुंचे तो देखा कि उसकी प्रत्येक लहर मे कितनी अग्नि है, प्रत्येक धूम्रवलय मे कितने विस्फोट हैं।

जयराम बिलकुल चुप है, निर्लिप्त है।

काफी पख फड़फड़ाकर विद्याधर राय क्लांत हो चुके थे। चारदीवारी से शीतल नीरवता ढांपती आ रही थी। अपने अंदर की तपिश से फिर भी वे फुफकार रहे थे। नासा फूली हुई थी।

कुछ क्षण मुह फेर इस तरह बैठने के बाद फिर उनकी आवाज सुनायी दी। उसमे कुछ शका, सदेह आ गया था, तो भी खूब तेजी थी।

"आप क्या इस तरह कुमपटिया बाबाजी का वेश पहनकर भीख मांगेंगे?" - अंतिम दो शब्द कहते-कहते विद्याधर सिर्फ दो धार उबलते आसू की रह गये।

शायद धीरे से एक गहरी सास सुनायी पड़ी। विद्याधर राय झटके से घूम गए।

जयराम उन्हे वैसे ही देख रहे थे। वैसे ही हस रहे थे और हसते-हसते कहने लगे--"बात आपको सीधे न कही जाये तो शायद आप नही छोड़ेंगे। यह भेष बदलना मूलतः आत्मरक्षा के लिए है। इस भेष को देखकर कम-से-कम कोई पास नही फटकनेवाला। डर होगा कि शायद सीख न लू। हम दरिद्रता से नही डरते, वह तो हमारी चौदह पीढ़ी के अधिकार की चीज है। हम डरते हैं दान से···आप सोचते है इस तरह भूख-सूखकर भीख मागते-मागते मरने निकला हू! कभी नही। वरन खुल्लमखुल्ला जीने निकला हू। यहा हम शिष्टाचार पहनते हैं, स्वाभिमान पहनते है, फैशन ओढ़ते हैं। खाते है सिर्फ कुछेक अभ्यास, कुछ कांटे और चम्मच। चबाते हैं कच्ची-कच्ची भूख। कहते हैं ढेर सारा झूठ, जो हमारी आखो के आगे इंद्रजाल की शाखा फैलाकर पसर जाता है, गाजे के धुएं की तरह फैल जाता है।···आपको 'चुप कर वे धोखेबाज, सुविधापरस्त, ढोंगी', कहने का मेरे जैसे हिजड़े फायदे की आशा करते चिकने जाल-फसादी लोगो मे साहस नही।"

जयराम की आंखों में हंसी की मात्रा वहुत कम हो गयी थी। विद्याधर राय के चेहरे और विखरे वालों में तूफान वहुत कुछ घट गया था। फिर सुनायी पड़ा कि जयराम कह रहे थे—"कहने का साहस भी नहीं कि हम सब वहुत सारे घटाटोपों के नीचे कुछेक जंतु हैं। किसी तरह चूसकर, छीना-झपटी कर, लुक-छिपाकर जिंदा रहना ही एकमात्र संभावना है। बाकी जो कुछ देखते हैं, वह सब तो एक आवरण मात्र है। हमारा गिरजा, मस्जिद, मंदिर, विहार सब चिलम के धुएं की सृष्टि हैं। ऊपर का नशा काटकर देखने पर खाली सूना आकाश और कुछेक निस्पृह तारे।—उसके ऊपर और अनेक आकाश और अनेक तारे। शीतला का एक थिर समुद्र और अनेक उसमें जलती आग की चिनगारियां ''ईश्वर नाम का पदार्थ एक शब्द मात्र है, जिसे खोजने के लिए हम कई वार व्याकुल हो जाते हैं, पाते नहीं। पा सकते नहीं या पा सकेंगे भी नहीं। वह कहीं रहकर दवे-दवे हंस नहीं रहा होगा। सो वात भी नहीं कही जा सकती। मगर अव तक मंगल ग्रह के भूत के मनमाने चित्र वनाने की तरह उसे अपनी इच्छा से गढ़ते आये हैं और यह झूठा भूत हम पर सवार होकर हमें परेशान किये देता है, हम वीच-वीच में विद्रोह करते हैं, मगर फिर उस भूत को सिर पर लादकर वचने में ही हिम्मत आती है। हमारे हजार साल के रक्तकण चैन का अनुभव करते हैं। एक संतुलन आ जाता है। उसे निकाल लेने पर खूब वेचैनी लगती हैं, हमें लगता है जैसे आकाश से हवा खत्म हो गयी। हमने वैसे ही भला-वुरा, सच-झूठ के नाम पर और अनेक भूतों की सृष्टि की है, तालिका वनायी है। इतनी पतली हवा में जीना शायद संभव नहीं। इसके नीचे निरावरण सत्य है हमारी ये कुछेक स्नायु, भूख को लेकर उनका तनाव और उन्हीं को लेकर हमारी एकमात्र संभावना यह है कि उनकी आग में खुद को जला-भुनाकर खर्च कर देना।"

"समझा, आपका विद्रोह अन्दर की ओर हो गया है। आपके इस तरह विलकुल नास्तिक होने का यथेष्ट कारण भी है। और कोई भी वैसे ही होता। यही वात तो मैं शुरू से कहता आया हूं।"

जयराम के चेहरे पर वहुत सारा अपनापन लिये हंसी की लहर आ गयी थी।

"मगर जयराम बाबू, आप कुछ भी कहें, हमारे स्नायुमंडल के बाहर और एक सत्य है जरूर—वह है हमारी आत्मा···"

"यह भी तो आप जमाने से प्रचार करते आये हैं।···ठीक है, विद्याधर बाबू, तो आप रहें।"

इसी बीच उस पिल्ले को गोद में लेकर जयराम बाबू उठ गये।

"अरे रे! सचमुच आप तो निकल पड़े! क्या इस घर में ताला नहीं पड़ेगा? ये चीजें कहां जायेंगी? और आपकी किताबें, सामान—अच्छा, इस तरह क्या ''अरे!!···मतलब, जयराम?"···

हड़बड़ाकर क्या कहें, क्या करें विद्याधर कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे। अन्दर अचानक देखा तो सब कुछ वैसेही है—खाट, किताबों की थाक, चादर और अल्यूमूनियम की देग। परिचित आत्मीय की तरह सोया है। उसमें से खिसक गया है छोटे-मोटे अगूठे की तरह वह पुरुष।···वे भी हड़बड़ाकर बाहर झटके से आ गये।

जयराम की दूर जाती पीठ वैसे ही हंसती-सी जा रही थी! अंधेरे में एक पल ठहरकर चली गयी थी वह छाया।···

जयराम ने गोद में पिल्ले को उतारकर नीचे रखा। फिर वे आगे बढ़ गये।

आकाश में उमड़-घुमड़कर मेघ गरज उठे।

अट्ठाईस

निधि दलुई उस कमरे से इस कमरे में आये तब तक बात खत्म होने आयी थी। सिर्फ एक बार छवि के मरे-मरे हाथ-पाव चौंककर छटपटाये। फिर रुई की तरह नरमा गयी सारी देह। बाछा में-में कर रो पड़ा। निधि पागल की तरह छवि का माथा, छाती टटोलकर कहने लगा—"अरे वाह! बुखार उतर गया! बच्ची थककर सो गयी है!" मगर बाछा उसके पैर

पकड़कर सिर पीटे जा रहा था खाट पर। आवाज सुनकर खाडंगा आ गये, भीड़ हटाकर अंदर घुसे। हाथ लगाकर देखा और सिर हिलाया। निधि दलई वहीं निढाल होकर बैठ गये। सारी देह पसीने में भीग गयी। गांव के सारे लोग पागलों की तरह बीच-बीच में चौंककर सोचते—"ओफो! हे हरि! कितना बड़ा अनर्थ! शिशु-हत्या से बड़ा पाप नहीं! होश में तो था नहीं, बूढ़े ने अपने हाथों मार डाला।"

किसी ने याद दिलाया—"अरे उस घर में मुर्दा पड़ा है, दूसरे बच्चे को तो उठा लाओ।"

दो आदमी अंदर गये तो देखा, पास में बांछा सुबक रहा है। दीवार के सहारे टिका निधि दलई पथराया पड़ा है।—छवि पर झुका रवि कागज का मुकुट उसे पहना रहा है। दोनों थमकर खड़े हो गये।

रवि ने पहनाकर धीरे से छवि का हाथ खींचा। खूब धीरे-से झुककर फिसफिसाकर कहने लगा—"तू उठ तो छवि! चलें दादा से दूर चलेंगे, यहां से हम दोनों। अपने जयंत मौसा बहुत अच्छे हैं। मैं अब उन्हें कभी कुछ नहीं कहूंगा···। हमें कोई नहीं चाहता।" अपनी छोटी-छोटी बातें कह रहा था, आंसू टपकाता जा रहा था।

देहली पर खड़े वे दोनों कुछ सुने, कुछ अनसुने रह गये। मगर सब कुछ समझ गये। साहस नहीं हुआ बच्चे को हटाकर ले जाने का।

···बूढ़े को अचानक बुखार ने धर दबोचा। बड़बड़ाना और बढ़ गया। हो-हल्ला कर बुड्ढा घर का सारा मान-सम्मान मिट्टी में मिलाये जा रहा था। वे लोग स्तब्ध हुए सुन रहे थे और सुन रहे थे बाहर कड़कड़ाकर टूटती गड़गड़ाहट। हे दिगंबर मंगराज की तरह का आदमी! गांव की धरती उसके चलने पर हिलती! देखो, कैसे उसका सब कुछ रीता हो रहा है। उजड़ा जा रहा है उसका संसार! ओह! पाप कर कोई छुपा नहीं सकता। सांप के सिर निकालने की तरह ठीक मौके पर वह परिचय दे जायेगा।

किसी ने सहमते-से कहा—"अब हम ही कौन साधू हैं? यह बूढ़ा, उम्र थी तब क्या से क्या कर देता था और जिसके कारण आज नाक में नाथ लग गयी है। कितने लोग कितने पाप कर उछलते-फिरते हैं! इसने

भला तीस वर्ष हुआ, कभी सिर ऊपर उठाकर देखा ? भीतर ही भीतर जल गया है आदमी।—आखिर उसकी यह दशा !"

गू-गा कर दिगवर मगराज ने पैर छटछटाये। सबको लगा कि जबान बंद हो गयी है। मगर आखें टिमटिमाकर कुछ भी तो पूछने के लिए आतुर हैं। जीभ लड़खड़ा जाती थी। हेडमास्टर ठहरा अनुभवी आदमी। उनका दाहिना हाथ-पैर उठाकर खाट पर धीरे-से रख दिया। सांस लेकर बोले—"बूढ़े का एक अंग लाचार हो गया, दाहिना अग पक्षाघात में आ गया। अब प्राणों पर घात तो नहीं है, मगर विषम विपद आ गयी। बूढ़े को उठाना-बैठाना कौन करेगा ?"

अंधेरे से फिर किसी ने कहा—"हे हरि ! यह दुर्दशा दुश्मन को भी न देना। सिंदूरी की मां सात वर्ष खाट में पड़ी-पड़ी कीड़ा हो गयी। इतना बड़ा वंश सूखकर कांटा हो गया। यह रोग तो जीते जी नरक ही समझो। बूढ़े के कर्मों का भोग पता नहीं कितना बाकी है।"

मास्टरजी ने अपना सामान समेटा।

मेघ उमड़-घुमड़कर गरज रहे थे।

सबको लगा उनके पैर में कोई रस्सी डालकर इधर-उधर नचा रहा है। वे न जा पाते हैं, न रह पाते है।

इतना बड़ा पत्थर का घेरा। उमस भरी है। बरस जाते तो चैन आ जाता।'''बूढ़ा मर जाता तो ऐसे ही उसास आ जाती। ये पथरीली दीवार फटकर टूट पड़ती, बिछ जाती तो यह उमस अच्छी लगती। बिजली की रेखा पर यह घना आकाश चिंदी-चिंदी हो जाता तो शायद कुछ बूंद पानी के झरा आता।

उन्तीस

पहाड़ की तीखी चढ़ाई पर हवा की ओर मुंह कर चढ़ गयी गाड़ी। घाट-

मंगला के स्थान के आगे छोटी-सी समतल जगह है वहां पहुंचकर एकदम अटक गयी। जगह कोई अपरिचित नहीं है जयंत परिड़ा के लिए। बायीं ओर कोई अढ़ाई कोस पर मंगराज का गांव है। अंधेरे में उधर कुछ दिखायी भी तो नहीं पड़ता। मगर वह कुष्ठाश्रम तो दीख जाता है और वो उधर गोरा कवर। आसपास वेशुमार वेर की झांड़ियां और अंधेरे में टिम-टिमाती अनेक स्मृतियां। मंगराज बुड्ढा अपने तिजोरीवाले कमरे में ताला लगाये सो रहा होगा।…हरामी…वो हमारा बाप कहलाता है। मुंह की सिगरेट दातों तले आ गयी थी। "कोई बात नहीं। बहुत तो उतार दिया है और उतार दूंगा। सुजाता को क्या और दो-चार मंगराज कुलचंद्र नहीं होंगे? न होता तो सुजाता देवी को वेटा हो जाता—खैर देखा जायेगा! जयंत परिड़ा उस घर में सात पीढ़ी की जड़ लगा देगा। अवकी वो मिस-हैप न होती तो सुजाता को लड़का होता—खैर देखा जायेगा। वो रोगी हो गयी इसलिए माल अब उतना मन नहीं खींचता। फिर भी कर्त्तव्य की अवहेलना न करना ही परम धर्म है। अपने छल पर विद्रूप कर जयंत की भुजाएं फड़क उठीं।…बूढ़े का एक और वेटा मेडिकल में पढ़ता है। उस स्साले के साथ किसी डॉक्टरनी को फंसा देते तो कैसा होता?—मीना कह रही थी कि वह भी वही सब पढ़ रही है।…वाह! चिर काल के लिए जयंत परिड़ा मंगराज के खानदान में पितृकुल का होकर रह जायेगा। मीना डाकवंगले में आयी है, होटल में भी आयी है। वह दीखती तो जोर-दार है। हंसी कटार-सी! बड़े सलीके से गले में बांहें फंसाकर लटक जाती है। सुंदर है मीना! खूब नरम…"

जयंत परिड़ा की नस-नस उत्तेजित हो उठी थी। सारा शरीर एड़ी से चोटी तक मानो तनाव से भर गया।

तेज हवा सारे जंगल को मथती वह रही थी। जयंत परिड़ा की आंखों में सरूर उतर रहा था—एक गहरा नशा, तरह-तरह का नशा, कितने ही तरह के स्वादों का नशा।

हवा इतने जोर से वह रही है। कोई तूफान पहाड़ रूपी गुफा में भर-कर हड़हड़ाकर गरज रहा है। बिजली भी तो पता नहीं क्यों बुझती ही नहीं। आवाज और भी तेज हो गयी—रोशनी भी और अधिक चमक

उठी — जयत के गुम होते होश को शायद कुछ छू गया। उसने आंख टिम-टिमाकर देखा। मुंदते जा रहे बुद्धि के फाटक जरूरी परिस्थिति में पड़कर फिर खुल गये। संतरी फिर जाग उठे। चश्मा लगाकर असंख्य किरानी झुक गये फाइलों के ऊपर।

एक और गाड़ी आकर धीरे-से खड़ी हो गयी उसकी अपनी फियट के पास।

छपाक से कोई काली छाया जयत परिरक्षा की ट्रेजरी के पीछे छिप गयी और तभी सारा प्रकाश बुझ गया।

नीचे से ऊपर तक आग का गोला फिसल गया। माथे पर भर गये पसीने के कण। अचानक खूब जोर से पेशाब लगा। सारी देह में सिहरन-सी भर गयी। जयत विपद में डरता नहीं, सिर्फ तेज नजर से देखता है— चोट करेगा या बिजली की तरह गायब हो जायेगा। फन उठाकर जब देखता है, वह बहुत जोरदार लगता है। भयंकर भी लगता है।

सिगरेट लगाने के कुछ ही क्षणों में हर तरह की संभावना सोच गया जयंत। गाड़ी किसकी है? शायद कृष्णमूर्ति ने भेजी है।—याने मिसेज कृष्णमूर्ति तो मुझे देखे बिना रह नहीं सकती—ये स्साले शायद ठीक से समझ नहीं पाये। ऊहूं। कोई निकलता क्यों नहीं उनमें?···घर्स ने कोई जासूस भेजा है मुझ पर निगाह रखने के लिए?—बास्टर्ड। उसका काम करता हूं या नहीं यही तो जानना चाहता है? स्साले ने कुछ पैसे क्या दिये हैं' 'हरामजादा' सूअर का बच्चा'' वरना यह मूलचंद सोंधी···ओ··· तो फिर बात काफी सीरियस है। खैर देखा जायेगा।

गाड़ी का दरवाजा खोला तो बत्ती जल गयी। और तभी अगली गाड़ी की बत्ती भी जल उठी। अधखुले किवाड़ के पास उचककर आया है मूलचंद सोंधी। आगे कोई अपरिचित आदमी है। बाहर विकराल भयंकर हवा घू-घू कर फाटक को धकेल रही है। जयत ने अपने क्षण तय कर लिया कि अब क्या करना है।

अगले कुछ क्षणों में सुनाई पड़ा—"अमां यार मूलचंद! तुम कैसे इस आंधी में इधर आ टपके?— हम गरीब आदमी, रोटी के लिए सब कुछ कर सकते हैं। मगर तुम साले करोड़पति को क्या गरज पड़ गयी महल से,

बाहर निकलने की ? हुक्म पर तो सब बन सकता है। अंदर कर सकते हैं ?"

"ओर ! चिड़िया एकदम अंदर !" मगर सुनाई पड़ा—"क्यों नहीं, क्यों नहीं ! हां···हां···"

फाटक बंद अंधेरे की काली रेख सांस रोककर थम गयी। कुछेक छाया तैर गयी। टटोलते चले गये कुछ नंगे हाथ। चैन पाकर किसी ने गला खंखारा। रोशनी जल उठी। शायद नया ड्राइवर है। तीन महीने कम तो नहीं होते।

मूलचंद एक कोने में टिका देख रहा था। अचानक उसकी जांघ पर थप्पड़ मारने से सारी गाड़ी कैसे भी तो चौंक उठी। नये ड्राइवर ने मुंह फिराकर देखा। कैसी आंखें।

मगर जयंत ने न देखने के ढंग से कहा—"सच कहता हूं मूलचंद, तुम मुझे गलत समझ गये। शुरू-शुरू में तो तुमने जैसे पीछे हटना जारी रखा। मैंने सोचा यह कोई नखरा है। सब फिर ठीक हो जायेगा। मगर देखा कि तूने सब कुछ तोड़ लिया है। आया तक नहीं। कई चिड़ियां फंसीं, मगर यार, सच कहता हूं, उस दिन जैसा मजा और नहीं मिला। ऐसे वक्त में आकर मिला यह स्साला धर्स। तू तो जानता है कि मैं हरामी बहुत बद-खरच ठहरा। महीने के आखिर तक तीन हजार का पता भी नहीं चलता। और तनख्वाह तो तू जानता ही है। मगर ईमान से कहता हूं, रुपये-पैसे के लिए उस स्साले के पास नहीं जाता। मेरा एक और मतलब है। उसके घर पर एक और बादशाही माल है। सारी दुनिया में कहीं न होगा। स्साले ने ताले में बंद कर रखा है। बैठा है इसी बीच शादी कर भेज देने के फेर में। मैंगलोर में किसी के साथ आधा करोड़ का कारोबार पक्का किया है। सोचा था आज कुछ दौड़-धूपकर उसका काम कर देता तो उसका विश्वास जम जाता। फिर चिड़िया पर हाथ डालना सहज होता। इस महीने भर में उसे न पकड़ा तो उड़ जायेगी। सच कहता हूं फिर तो रस्सी लगा लूंगा। मैं स्साला दुनिया के सारे नामी जहर लाकर काकटेल पर पी जाऊंगा।"

मूलचंद की खंभे जैसी गंभीरता शायद तनिक नरम पड़ गयी। चित्रित-सी आंखें हिल गयीं।

"आज किधर जा रहे हैं ?"

गाडी हर मोड़ पर तनती गयी मनचंगा मे, ड्राइवर की गरदन तक। ···रसिकता नही, आत्मीयता नही। रोकड़ के बंडल गिनते समय का व्यापारी स्साला !

खूब जोर से बिजली चमकी। हवा में खूब मार्गे धूप कांच पर बरस गयी। जयत ने सिगरेट से एक फूंक लेकर कहा—"आता, मगर अब नहीं। घत्त स्साला कोई लाइसेंस पायेगा तो क्या इस वर्षा-तूफान में कौन जायेगा ?"···कुछ क्षण धुआं छोडने के बाद—"न आज जाता और न कभी फिर जाऊंगा।···उसके साथ मतलब सिर्फ उस माल का है। मूल-चद भई, तुम यार कुछ समझो, मदद करो, वरना हम जान दे देंगे।"

"उसकी बडी बेटी खूबसूरत है, मगर तुम स्साले नमकहरामी करेगा।"···तीन महीने का सूखा खोल शायद भर गया।

"हे हें···हें हें।···हसी की प्रगल्भ लहरें लडखडाती बह गयीं नशे मे।···

"अरे रे ! मूलचद भी आखिरकार बेवकूफ बन गया ? अबे नमक-हरामी क्या ? किसने तुझे ये पुराण-सासतर सुना दिये ?—ये सब फालतू कमजोर नामर्दोवाली बातें है। अरे ताकत है तो दात लगाकर चूस ले, मौज कर। जिसने भूख दी है, उस स्साले ने खाने के लिए माल भी रखा है। उसका भोग न कर सके तो निकम्मे हो खुद। इसके बाद क्या है, किसे मालूम है ? बस यही मौका है। छोड दिया तो गये। तू यार मूलचद हाथ मिलाता दोस्त तो बस काम फते। दो ही दिन मे।···तू मुझे कुछ भी कह —जूते मार, मैं कहूंगा ऐसे मामलो मे तू बहुत लजीला है। अरे मरद होकर क्या इस तरह लजाता है ?···दोस्त तुझे गारटी देता हू···एक बार देखकर पागल न हो जाये तो मैं यह उंगली कलम कर दूगा।"

मूलचंद ने जुए के खेल मे अतिम हाथ फेंकने से पहले मुट्ठी कसकर पकड़ी सिगरेट लगाने के बहाने। "अच्छा तुम अगर कहते हो तो देखेंगे।" ···ई···ई···दो-चार बार सी-सी करते समय जयत के हाथ-पैर खुशी मे भिच गये, हवा में नाच उठे।····"इसको सेलिब्रेट करना होगा आज। ठहरो मैं माल लाता हूं।

हाथ झटके से खींचकर उसे विठा लिया मूलचंद ने। पास के एक जोरदार झूले से निकली झिलमिलाती बोतल।

उसे देखते ही जयंत ने बोतल की गरदन पर एक चुंबन आंक दिया और फिर उसे कांख में दबाकर दांत भींचकर सहलाया। "···ही ही ही!!" दांतों के बीच से हंसी छिटकी आ रही थी साथ में मांस के लिए भूखे फेनिल छींटे।

कुछ क्षण छलछलाती शराब के परिचित शब्दों में खुल गये। एक अजीब हंसी।···खूब नरम मांसपिंड को बीच में रखकर दो भूखे मन झूम उठे। खुल गयी सारी गाड़ी की कसी हुई गांठें। ड्राइवर के तने हुए बाल झुक गये। जाग्रत प्रहरी ऊंघ गये। दोनों पिस्तौल रिटायर्ड एस० पी० की तरह मुंह खोलकर सो गयीं। उसकी सारी बारूद गीली, आग पकड़ने की कोई संभावना नहीं। बोतल की बोतल शराब में दोनों डूबे थे।

बाहर झड़ बातास का उफान दोनों विजेताओं को सुनाई पड़ रहा था। उसमें धर्म कर्सन को मिलाकर और बहुत सारे तथाकथित संभ्रांतों की इज्जत का शीराजा बिखर रहा था। मंदिर से देवताओं की मूर्तियां नाबदान में लोट रही थीं। सारी धरती पर केवल जंतु। समाज की दीवारें टूटकर ढेर सारे बाप, भाई, बेटी, बहन, मां, बेटे निषिद्ध इलाकों में, अंधेरे में चार टापू पर नियंत्रण कर रहे हैं। सारा आकाश ढेर सारी मृत राख और कोयले से भरा है। दुनिया कीचड़ का लोंदा है। आदमी की नंगी देह सिर्फ हजार-हजार शिखाओंवाली भूख का घर है। शत्रु का संहार करना ही एकमात्र न्याय है। किस्म-किस्म के भोजन के लिए जिंदा रहना ही एकमात्र धर्म है। हर सुबह सैकड़ों बकरियां कटती हैं, कोई आकाश तो नहीं टूटता। फिर उसी तरह अपनी सुख-सुविधा के लिए निरीह लोगों को मारना-काटना पड़े तो दुनिया पत्थर-मिट्टी नहीं होनेवाली। न्याय इंसाफ के लिए आकाश में किसी भूत से डरने की जरूरत क्या है? बेवकूफी होगी। जो होगा यहीं होगा। बाकी ऊपर-नीचे की सब बातें झूठ हैं। खुद आदमी अपनी मर्जी से शेर की तरह जीने के लिए जो करना पड़े, करो। वह ठीक है। छरहरा मृग धागेदार बाघ के सामने पड़ गया तो उसकी बदकिस्मती। अगर स्वर्ग-फर्ग कही कुछ है तो तेंदूपत्तों की तरह या शराब के ठेके की

तरह उसका लाइसेंस भी मोटी रकम देकर नीलामी में मिल जायेगा। तिलकधारी पंडे-पुजारी को पैसा दिया तो खुद इंद्रपुर की टिकट जुगाड़ कर देगा।···यह सब ठगाई है। ऐसा रामराज का मौका बड़ी तकदीर से कभी मिलता है। कोई किसी के लिए जिम्मेदार नहीं है। खा सकते हो तो इस अंधेरे में मनचाहा खा जाओ।

काच के उस पार वैसे ही टूट रही थी अनेक हरी-हरी डालियां। धरती पर सो जाती हैं ऊंची-ऊंची वनस्पतियां। पेड़ों का हाहाकार किसी के पास नहीं पहुंच रहा। अबाध, निरंकुश रौंदता जा रहा है प्रबल तूफान किसी तेज अश्वारोही की तरह। ऊपर की ओर देखने पर इस अपार तूफान का काली पीठ ठाठ ही सारे जगत को ढके लगता है।

रुक-रुककर बिजली चमकती है और जमाई ले रहा है लछन्ना। लापरवाही से वह शायद कह रहा है— "मैं मार सकता हूं। मैं तार सकता हूं— यह दुनिया मेरे खेल का अखाड़ा है।"

तीस

निर्जन दर्रे में सुजाता को रास्ता ही नहीं दीख रहा। अभी कुछ-कुछ जानती है कि उस भूखे निर्मम इलाके में जीवन किस तरह भाग-दौड़ का संग्राम है। खिले वनफूलों के नैसर्गिक समारोह से अचानक खिसक आयी सूखी, उजाड़ और तपती चट्टानों को सुजाता ग्रहण नहीं कर पाती। दीवार की ओर देखने पर लगता है कि क्षितिज पर शुरू से वहां भी फूल की पंखुड़ी न थी। सदा यह बालू और सूखे झरने का असर। इस तपती धरती पर किसी का सहारा भी संभव नहीं। मा एक पर खूब बेबसी में टिकी हुई है। अब सुजाता के लिए कोई आश्रय नहीं। भाई भी क्या हमेशा उठाये रखेगा? ···तो इस छाया में वह कुछ दिन की मेहमान है। यहां रोटी के कौर गिने जाते हैं। इस माटी पर विवाहित बेटी को कोई अधिकार नहीं। भाई की

कमाई खाने के लिये बहन यहां नहीं रह सकती।···इस घर में वह होती कौन है? दीवारें तक हर दम पूछ रहीं हैं यह सवाल।

सुजाता के सारे आकाश से पवन सिमटता, खत्म होता आया। सारा मेघों का मेला विलीन हो गया। जोर देकर और खड़े रहना संभव नहीं रहा। इसे, इस अपरिचित हार में उसकी जेब खाली है।···वह पेड़ के नीचे खड़ी एकदा परिचित चेहरों को खोजने लगी।···वही कपड़े, वही गाड़ी, उन्हीं नामों के अनेक अपरिचित लोग देखते चले जा रहे हैं, नाम तक पूछते नहीं। ताज्जुब है!···वे क्या इतनी जल्दी भूल गये?··· वैनिटी बैग हिला-हिलाकर वह बीच-बीच में टा-टा करती है—मगर किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं।···मगर वह क्या वैनिटी बैग है? वह तो सिर्फ एक टिन का कनस्तर है जिसमें बारह रकम का चावल झनझनाता है। वह नसों से भरी चमड़ी, सपाट हाथों में कोई घड़ी तक नहीं, न चूड़ी, भांति-भांति की क्रीमों का लेप भी नहीं। हम। अपनी हड्डियों और चमड़ी की ओर देखकर वह घबरा गयी। मगर सत्य अविचल बत्ती के खूंटे की तरह निर्विकार भाव से खड़ा रहा।···सुजाता की देह से पसीना ही पसीना बह रहा है।···मां मुंह पोंछकर पीठ सहला रही है। वह भी तो उसी तरह असहाय और निराश्रय है।

मेघ गड़गड़ा रहे हैं, मगर बूंद भर भी कहीं पानी झराते भला! हवा जब्त कर रुंधे है। उंड़ेल देने को या खोलकर बहा देने के लिए इतने बड़े आकाश में कैसी भी तो कंजूसी आ गयी है। वह इस धरती पर किसी को कुछ भी देना नहीं चाहता। इस आकाश ने ही तो फिर लहरें बरसायी हैं, खूब झुका है धारा प्रवाह शीतल स्पर्श लिये। मगर अब क्यों अपरिचित की तरह एक तरफ इतनी दूर खड़ा है। क्यों?···

मेघ गरजे और कमरे में घुस आया सरोज। शायद इनकी ओर बिना देखे चला गया सीधा। मगर पता नहीं क्यों बीच में एक क्षण खड़ा रह गया। मुड़कर पूछा—"क्या हुआ?"

सवाल जैसे किसी की देह से न टकराकर दीवार से लौट आया। चार आंखें इंतजार कर रही थीं कि किसे देखकर सरोज उस प्रश्न को सजा लेगा। एक बार सुजाता की ओर देखकर मां की ओर देखने

लगा।···

"उसकी देह अभी भी रास्ते पर नहीं आयी। तेरे जाने के बाद ढेर सारी भावनाएं मन ही मन में घिर रही थीं। होश खो जाने की तरह होने लगी।···अब जरा अवस्था संभली है।"

सुजाता की आंखों के नीचे, नाक की अनी पर, ललाट पर पसीने की बूंदें सरोज देख पा रहा था। अचानक सुनाई पड़ा, सरोज कह रहा था—

"अच्छा! इस तरह कब तक चलता रहेगा? आदमी तो फिर हॉस्पिटल से आकर स्वस्थ होते हैं—इसकी दशा इस तरह क्यों चल रही है? ···हां, मैं आज डिसकस कर रहा था—मगराज बुड्ढा मरे या न मरे या उसकी जमीन में से बेटे हिस्सा ले सकते हैं। बेटा न हो तो उस बेटे की बीवी और बच्चे हिस्सा ले सकते हैं।···विश्वंभर का नाम भी न लो। उसने जो नाम कमाया है, शहर से लेकर हमारे गांव के रास्ते पर सब जगह लोग जानते हैं। सिर झुकाकर चलना पड़ता है। उसकी मरे-कटे की कोई खबर आ जाये तो आदमी को राहत मिले।"

"चुप! नालायक, जुआखोर, शराबी कहीं का! शट अप!!" और कुछ कहने लायक हवा सुजाता की छाती में न थी। बहुत सारे उबलते आंसू नाक के रास्ते टप-टप कर बह आये। आंखें खुली रह गयीं। मुंह आं कर रह गया। गले से छाती तक मां सहला रही थीं बार-बार। सरोज पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वैसे निर्विकार ही खड़ा था—

"यह इस तरह क्यों बक रही है? मैं क्या इस सती सावित्री को पहचानता नहीं? या टाउन में कोई है जो इसका चरित्र नहीं जानता? तकदीर में तो था क्लर्क विवाह के लिए। उसे छोड़ क्यों अफसरों पर नजर चलायी। बता! ···जितना नीचा दिखाया, बेइज्जत किया है विश्वंभर को, उसका कोई हिसाब ही नहीं। और क्या मॉडर्न औरतें हैं ही नहीं। लोगों के घर में अकेली जाकर शराब पीना, धुत हो वहीं लोट जाना और दस बेइज्जती के काम करना, उनके लिए अंगूठी किसी से या माला किसी से लेना—यह सब वेश्यागिरी नहीं है?···और अब पतिदेव को मर कह दिया तो तकलीफ हो जाती है।"

"अरे ओ तू बहुत बोलनेवाला बन रहा है। उसकी हालत मुझे दीखती

नहा !"

"तू चुप कर। तूने ही तो उसे बिगाड़ा है। क्या लॉ ग्रेजुएट हो गयी तो साहबानी बन गयी। तेरी देखा-देखी तो बेटी शिरोमणि का इस तरह सिर ऊपर है। जो कुछ मान-अपमान सह, दस बेइज्जती की बातें उठाकर भी वह इस अप्सरा एस० पी० की लड़की की शरण आया था, बहुत पहले ही वह इसे काट डालता, नहीं तो खुदकशी कर लेता।···अब तीन महीने हुए आवारा बगुले की तरह लापता भटक रहा है या कहीं मर-खप गया। पता ही नहीं। इधर राणी सती के तेज का कहना ही क्या ? हूं।"

"इंपॉसिबल।"—यह शायद कोई दुःस्वप्न है। एक हाथ पर बोझ रखे सुजाता ने देखा सरोज की ओर। मां सिर नीचे किये बैठी है पत्थर की तरह। सुजाता की इच्छा हुई कि खाली चप्पल मार-मारकर इस बेलगाम का मुंह बंद कर दे। मगर पता नहीं क्यों पहले की तरह अब फन उठ ही नहीं रहा उसके अंदर। दुर्दमनीय, ठोस पुरुष का रूप पहली बार देखकर शायद झुक गयी—डर से या घृणा से नहीं, वरन संभ्रम से, प्रेम से ! इस तरह पिस जाने को, रुंधने चियने के लिए शायद प्रत्येक नारी की छिपी लालसा होती है। किसी प्रबल पुरुष के आगे हार जाने के लिए वह निरंतर ताकती रहती है। ऐसे मुकाबले में नारी खुद को सार्थक, कृतकृत्य मान लेती है। बहुत ऊंचे गरजते-गड़गड़ाते मेघों को देखकर शून्यगर्भा नदी सचमुच जैसे अपने सूखे पेट के कण-कण में परास्त होने के आनंद की प्रतीक्षा करती है !

सुजाता परास्त है—क्लांत है, मगर खूब राहत मिली है। निर्जन बालू और उजाड़ इलाके में शायद यह कोई ठोस चट्टान है, फिर भी इसकी रूखी पैनी बाहु पर वह सहारा ले रही है। यह रुक्षता, यह मरदानगी यदि पहले आती, इस तरह आमने-सामने परास्त हो पाती तो सुजाता स्वयं को कृतार्थ समझती।

"शट अप ! मैं क्या तेरी दासी हूं ! —अपनी मरदानगी कहीं और दिखाना। मैं चलती हूं।"—पूरा जोर लगाकर सुजाता ने अपना फन उठाया।

सरोज उसी तरह दृढ़ है, रोक ठोक खड़ा है।

तर्जनी में एक चाबी घुमाते हुए कहने लगा—"देख इधर ! ताला बंद है। इस तरह सुजाता देवी भागने पर हमारा गुजारा कैसे होगा ?—सुनो, सुनो मुनू दीदी ! तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा। उस मंगराज से आधी जमीन नालिश कर लानी होगी। मैं सोचता हूं एक बड़ा फॉर्म करूं। तू यहां अच्छी लड़की की तरह रह, वरना फिर अवस्था बिगड़ जायेगी। कहे देता हूं—सावधान ! ससुर साला तो पेट भर नहीं मरा, रस नहीं मरा। धन साले की ! दो सौ एकड़ जमीन के रहते क्या तू भीख मांगती फिरेगी या हम मरेंगे। छाती पर पैर रखकर मैं खींच लाऊंगा। तू साली अगर जरा चूं-चां करने लगी तो देखना।"—कहते हुए सरोज धम-धम सीढ़ियों से ऊपर चला गया।

दोनों नारियां प्रलाप करती-सी रो पड़ीं। स्वर की पहली लहर की तरह। फिर नींद में बड़बड़ाने की तरह हि हि कर हंस पड़ीं—बिना पढ़ा-लिखा, निकम्मा बेटा कहता है फॉर्म करूंगा···सौ एकड़ जमीन लाऊंगा···सचमुच मानो अंधेरे में तैरते-तैरते कोई किनारा मिल गया।

--बेटे को आई० ए० एस० मिल गयी···हि हि हि···

"पागल !" खूब मनोयोग से मां भर गयी।···

···सरोज सबसे ताकतवर है। किसी को कुछ नहीं गिनता। वह जबरदस्ती अपनी दीदी को यहां रखेगा।···आह ! कितना आश्वासन है, कितना मजबूत, कितना निर्भरयोग्य यह बलिष्ठ घेरा है ! आहा ! आधी जमीन हिस्से में आयेगी···सही बात है, मैं क्या भीख मांगती···हा···हा ···हा···हा।···

"देखा ना मुनू ! यह अक्खड़ है, एक बात जो पकड़ी बस वही पकड़े रहेगा। वरना मन में इसके कुछ नहीं। बड़बोला है। जो आया कह डालेगा। आगा-पीछा कुछ नहीं सोचता।" सुजाता की पलकों के नीचे ढुलक गये बहुत सारे आंसू। गहरे चैन की सांस ली। आंखें बंद कर लीं छाती पर। शायद अभी पांच मिनट में सुजाता सो जायेगी···!

मां रसोईघर के लिए उठ गयी।

चारों ओर से बंद इसी डलन के अंदर अनेक पुरखों के चेहरे, यह ठोस चौकोर दीवार। ये पुरानी किवाड़, यह मोटा पीतल का ता

कैसे भी तो मांसपेशियों की तरह घेरे हुए हैं। मक्खी तक अंदर नहीं जा सकती।···ऐसे अपना बनाकर रखा जाता है।···जमीन···कतार में दूर तक, मकानों में सामंतनी, नौकर-चाकर, घर-बारी लोग···क्या सामंत नहीं लौटेंगे।···विश्वंभर के चेहरे पर दाढ़ी बढ़ी हुई—हाथ में वो शायद चाबुक है। दांत किटकिटाकर आंखें तरेरकर हांकता जा रहा है। खच-खच सुजाता की देह लाल पड़ गयी। चोट के लाल-लाल निशान पीठ पर उभर आये हैं।—चोटी पकड़ घसीटता है, उसके हाड़ों को लोहे-सी भुजाओं में कसकर भींच रहा है, चूर-चूर कर देगा···ओह! इस तरह बरसे तब तो। जब्त हो दूर आकाश में खड़े खाली गड़गड़ गरजने से कोई मरदानगी दीखती है।···घर का मालिक, देह से परिश्रम के कारण पसीना झर रहा है-–सुजाता आंचल से पोंछ रही है। उसका रोम-रोम पीड़ा की खुशी···वह प्रतीक्षा कर रही है विश्वंभर खाकर उठे तो वह खुद कुछ खा-पी ले।···ओह तो विश्वंभर नहीं है···तो क्या जयंत है ·· ना ना सरोज है ? ! !···

अब मेघों के गरजने से कुछ फर्क नहीं पड़नेवाला। सुजाता की आदिम नारी गहरी नींद में डुबकी लगा चुकी है। वहां सब कुछ अंधेरा है। सिर्फ छूने से पता चलता है कि कहां कोमल है, कहां कड़ा।

रसोई में सरोज ठहाका मारकर हंस रहा है, शायद मेघ भी कहीं गरज रहे हैं।

इकत्तीस

सोमनाथ छोकरा ही तो ठहरा। एक झोंक में साइकिल चला दी अंधेरे में। इतनी भी फुरसत नहीं देखने की कि कहीं सांप फन फैलाये या कोई उल्लू पेड़ पर पंख फड़फड़ाकर कह रहा है—"जा जा—रो रो।"···बैलगाड़ी की लीक पर नरम धूल काटती साइकिल बढ़ती जा रही है। बीच-बीच में

पास की पेड़ से टकराकर लड़खड़ा जाता है, मगर चला जा रहा है। सोमनाथ के माथे में सब गड़मड़ हो रहा है।—छवि का क्या सचमुच गला भींच दिया पिताजी ने ?···तलुवे तक सिहरन भर गयी। अचानक उसे हाजत होने की तरह कोई जोरों से तलब हो गयी जैसा लगा। धक-धक करता कलेजा मुंह को आ रहा है।—कितनी भयंकर बात है, अगर सचमुच छवि को कुछ हो गया!—साइकिल दोनों ओर टकराकर इधर से उधर होती लड़खड़ा गयी। मगर सोमनाथ पुराना साइकिल चढ़नेवाला जो है। बचा ले गया। उसके जीवन के सारे दुर्योग आकाश में जम गये हैं, घने अंधेरे में।

घाटमंगला के चौराहे की चढ़ाई इन बैलगाड़ों की लीकों से उतनी कठिन नहीं लगती। वहां पहुंचकर वह बायीं ओर मुड़कर उतर जायेगा सरकारी रास्ते पर पांच मील। बाकी रास्ता भी उतना ही सहज है।··· कोई कह रहा था कि भाभी की तबीयत खराब होने पर वह पीहर चली गयी है। —फिर कोई कह रहा था कि भैया भी तीन महीने से दीखे नहीं। कोई कहता है तीर्थ करने चले गये बाबाजी बनकर।···मेडिकल कॉलेज में बाबाजी को नंगा कर पीटने की बात याद आ गयी। सोमनाथ का एक गाल हंसी में सिकुड़ गया।—और कोई कहता है कि वे पागल हो गये। किसी ने उन्हें दाढ़ी बढ़ाकर श्मशान में फिरते देखा है।

अरे, हो! भैया तो टाउन में नहीं हैं, उन्हें क्या मैं इस आंधी-वरखा भरी रात में खोजकर ले जा सकूंगा ? हो सकता है उनके घर पहुंच जाऊं, मगर वो सरकारी मकान कोई और पा गया होगा।—ठहरूंगा फिर कहां ? घर पर रहता तो भला कुछ करता। अब न यह कूल है न वह किनारा।

घने मेघ और गहराये। अंधेरा सोमनाथ की आंखों पर छा गया। उसकी खोपड़ी में भी वे ही मेघ और वही घना अंधेरा। कड़कड़ाकर उतर रही हैं बिजलियां और साथ में तेज हवा। दाहिनी ओर से लगा जैसे धक्का मारकर किसी ने गिरा दिया। आंख-कान सब धूल-माटी में भर गये। सौ डग रास्ता भी बड़ी कठिनाई से सोमनाथ पार कर आया—ईंटों की चिनाई से बना चौकोर मंदिर। वहीं तो वह बीस छात्रों के साथ

वलिप्रथा के विरुद्ध आंदोलन करने आया था। वकरियां उस दिन से उसे अपने आत्मीय की तरह लगतीं। मगर वह इन सवके वावजूद खूव मांस खाता है। मेडिकल में नाम लिखवाने के दिन से दोनों वक्त वरावर। अव वह कहता है--वकरी जरूर काटें क्योंकि मांस वहुत सारवान चीज है, मगर इस तरह धर्म के नाम पर उन्हें यहां वांधकर काटने की कोई जरूरत नहीं।

सोमनाथ साइकिल को दीवार के सहारे टिकाकर ऊपर उठ गया। मंदिर के धर्मगृह में शायद दीपक दक्-दक् चमक रहा है।—घाटमंगला की दोनों चांदी की आंखें उस अंधेरे में भी विल्ली की तरह दीख रही थीं। सोमनाथ को लगा घाटमंगला देख रही है। कितने अंधविश्वासों के ढेर के ढेर पत्थर होकर जम गये हैं इस गुफा में। वेशुमार वकरियां, भेड़ें, कवूतर, मुर्गों के खून से पत्थर जी उठे हैं, शायद पिघल गया है, छू देने पर पिल-पिलाने लगेगा। चेहरे पर लाख-चपड़ी लगा वंद फाटक में कोई रंग-रोगन चढ़ाता है। आंखों को ताकने की तरह चित्रित करता है। चार हाथ विठा-कर खच्चर और तलवार थमा देता है। और इसके आगे फिर लौट जाती हैं भक्तों की टोलियां। देवी के आगे पानी छिड़ककर शराव पी जाती है। वकरी के सिर पर मंदार के फूलों की माला, सिंदूर, कुछ वेल-पत्र और अरवा चावल के साथ कान पकड़ आगे चढ़ा देते हैं पुजारीजी महाराज। उसकी थाली में दो मटमैली आंखें और आसन पर से वैसी ही स्थिर चांदी की आंखें एक-दूसरे को देखती हैं। दोनों अंधी हैं। चारों ओर उनके ईंट की चुपचाप दीवारें। वाहर ढेर के ढेर पत्थर और विराट जंगल।

सोमनाथ फिर चौंककर घर की वात सोच रहा था। नीचे मुंह किये कुछ समय खड़ा रह गया। वाहर वतास वढ़ गया था। सिर ऊपर उठाने तक वह खुल्लमखुल्ला उस इकहरी गोरी लड़की की वात सोच रहा था जिसे एक दिन भी कालेज में देखे विना उसे वड़ा वेकरार-सा लगता।··· मगर क्या किया जाये---इसमें उसका दोष क्या है? झड़ और वतास क्या किसी के हाथ की वात है?

अचानक झप से लगा कोई और वहां अंदर है। सोमनाथ ने चारों ओर निगाह दौड़ायी। विजली भी झिलमिलाकर चमक गयी। मगर कोई

तो नहीं दीला। वह धीरे से जाकर एक खूटे के सहारे टिककर खड़ा रह गया। हाथ दोनों पाकेट में। आंखें अधमुंदी।...मन सिर्फ स्मृतियों से लदा जहाज—कभी इस किनारे कभी उस किनारे लंगर डाल रहा है। ...तो चेमीवाली बात सच है। जयंत परिड़ा तो हमारा सगा भाई है—उसे परिड़ा की बजाय मगराज कहें तो कैसा हो?...हमारी भाभी ही शायद बुरी है। जयंत के साथ उसका पहले से—याने मैरेज के पहले से लव था। अब भी उसके साथ लटर-पटर चल रही है—सबके मुंह पर यही बात। मारो गोली—यह भी कोई बात की बात है जिसमें दुनिया उलट पड़ती है। मेडिकल में क्या कुछ नहीं हो जाता? मगर वो स्साला जयंत दिनदहाड़े आकर यों हमारी इज्जत के साथ खेलेगा? हमारे भैया भी तो शायद वाकई हिजड़े हैं। अदर खाली गरजता होगा, वाहर खुल जाने को बल नहीं। अबकी वो मिलेगा तो कहूंगा। दोनों मिलकर उस बास्टर्ड को एक डोज देंगे।

तभी गाड़ी की रोशनी गरजती-तरजती उधर के ढलान से उठ आयी। मोड़ के पास एक बड़ी चट्टान की ओट में झड़ और बतास से बचने के लिए शायद खड़ी हो गयी। उसके कहने पर दुबारा टाउन लौटती नहीं? इस तरह दो सीरियस केस के लिए अस्पताल जाना है, कहने पर क्या सुनते नहीं? झूठ! आजकल कोई किसी की नहीं सुनता। सब अपने-अपने धंधे में व्यस्त हैं। उसका अपना जरूरी काम न आ पड़ता तो वह भला टाउन से इस झड़-बतास में वाहर निकलता? मान लो राजी हो ही गया लौटने को—कौन डॉक्टर है जो जरा-सी फीस के लिए इस मौसम में देहात का केस देखने जायगा? उसे लूगा फिर कैसे? यह सब होने जैसा नहीं लगता। फिर भी पूछ देखने में क्या हर्ज? हवा और धूल समुद्र की तरह पूछ पटक साथ-साथ गरज उठे। पहाड़ की चोटी शायद झर जायेगी इस घाटमगला सहित। यह तूफान थमे तब तो कुछ हो।—यह तो घड़ी पर घड़ी तेज होता जा रहा है। सोमनाथ आखें मूद वहीं बैठ गया। ऐसे क्षणों में भला आदमी के हाथों कुछ होता है। मक्खी-मच्छरों की तरह वह भी असहाय। प्रतीक्षा करता है।

कड़-कड़-कड़-कड़ झपाक! और एक पेड़ सो गया। देखा

वलिप्रथा के विरुद्ध आंदोलन करने आया था। वकरियां उस दिन से उसे अपने आत्मीय की तरह लगतीं। मगर वह इन सवके वावजूद खूव मांस खाता है। मेडिकल में नाम लिखवाने के दिन से दोनों वक्त वरावर। अव वह कहता है--वकरी जरूर काटें क्योंकि मांस वहुत सारवान चीज है, मगर इस तरह धर्म के नाम पर उन्हें यहां वांधकर काटने की कोई जरूरत नहीं।

सोमनाथ साइकिल को दीवार के सहारे टिकाकर ऊपर उठ गया। मंदिर के धर्मगृह में शायद दीपक दक्-दक् चमक रहा है।—घाटमंगला की दोनों चांदी की आंखें उस अंधेरे में भी विल्ली की तरह दीख रही थीं। सोमनाथ को लगा घाटमंगला देख रही है। कितने अंधविश्वासों के ढेर के ढेर पत्थर होकर जम गये हैं इस गुफा में। वेशुमार वकरियां, भेड़ें, कवूतर, मुर्गों के खून से पत्थर जी उठे हैं, शायद पिघल गया है, छू देने पर पिल-पिलाने लगेगा। चेहरे पर लाख-चपड़ी लगा वंद फाटक में कोई रंग-रोगन चढ़ाता है। आंखों को ताकने की तरह चित्रित करता है। चार हाथ विठा-कर खच्चर और तलवार थमा देता है। और इसके आगे फिर लौट जाती हैं भक्तों की टोलियां। देवी के आगे पानी छिड़ककर शराव पी जाती है। वकरी के सिर पर मंदार के फूलों की माला, सिंदूर, कुछ वेल-पत्र और अरवा चावल के साथ कान पकड़ आगे चढ़ा देते हैं पुजारीजी महाराज। उसकी थाली में दो मटमैली आंखें और आसन पर से वैसी ही स्थिर चांदी की आंखें एक-दूसरे को देखती हैं। दोनों अंधी हैं। चारों ओर उनके ईंट की चुपचाप दीवारें। वाहर ढेर के ढेर पत्थर और विराट जंगल।

सोमनाथ फिर चौंककर घर की वात सोच रहा था। नीचे मुंह किये कुछ समय खड़ा रह गया। वाहर वतास वढ़ गया था। सिर ऊपर उठाने तक वह खुल्लमखुल्ला उस इकहरी गोरी लड़की की वात सोच रहा था जिसे एक दिन भी कालेज में देखे विना उसे वड़ा वेकरार-सा लगता।··· मगर क्या किया जाये---इसमें उसका दोप क्या है? झड़ और वतास क्या किसी के हाथ की वात है?

अचानक क्षण से लगा कोई और वहां अंदर है। सोमनाथ ने चारों ओर निगाह दौड़ायी। विजली भी झिलमिलाकर चमक गयी। मगर कोई

तो नही दीखा। वह धीरे से जाकर एक खूटे के सहारे टिककर खडा रह गया। हाथ दोनो पाकेट मे। आखें अधमुदी।···मन सिर्फ स्मृतियो से लदा जहाज--कभी इस किनारे कभी उस किनारे लंगर डाल रहा है। ···तो चेमीवाली बात सच हैं। जयंत परिड़ा तो हमारा सगा भाई है—उसे परिड़ा की बजाय मंगराज कहे तो कैसा हो?···हमारी भाभी ही शायद बुरी हैं। जयंत के साथ उसका पहले से--याने मैरेज के पहले से लव था। अब भी उसके साथ लटर-पटर चल रही है—सबके मुह पर यही बात। मारो गोली--यह भी कोई बात की बात है जिसमे दुनिया उलट पड़ती है। मेडिकल मे क्या कुछ नही हो जाता? मगर वो स्साला जयंत दिनदहाड़े आकर यो हमारी इज्जत के साथ खेलेगा? हमारे भैया भी तो शायद वाकई हिजड़े है। अंदर लाली गरजता होगा, बाहर खुल जाने को बल नही। अबकी वो मिलेगा सो कहूगा। दोनो मिलकर उस बास्टर्ड को एक डोज देंगे।

तभी गाडी की रोशनी गरजती-तरजती उधर के ढलान से उठ आयी। मोड के पास एक बडी चट्टान की ओट मे झड और बतास से बचने के लिए शायद खडी हो गयी। उसके कहने पर दुबारा टाउन लौटती नही? इस तरह दो सीरियस केस के लिए अस्पताल जाना है, कहने पर क्या सुनते नही? झूठ! आजकल कोई किसी की नही सुनता। सब अपने-अपने धधे मे व्यस्त हैं। उसका अपना जरूरी काम न आ पडता तो वह भला टाउन से इस झड-बतास मे बाहर निकलता? मान लो राजी हो ही गया लौटने को---कौन डॉक्टर है जो जरा-सी फीस के लिए इस मौसम मे देहात का केस देखने जायगा? उसे लूगा फिर कैसे? यह सब होने जैसा नही लगता। फिर भी पूछ देखने मे क्या हर्ज? हवा और धूल समुद्र की तरह पूंछ पटक साय-साय गरज उठे। पहाड़ की चोटी शायद झर जायेगी इस घाटमंगला सहित। यह तूफान थमे तब तो कुछ हो।—यह तो घडी पर घडी तेज होता जा रहा है। सोमनाथ आखें मूद वही बैठ गया। ऐसे क्षणो मे भला आदमी के हाथों कुछ होता है। मक्खी-मच्छरो की तरह वह भी असहाय। प्रतीक्षा करता है।

कड-कड़-कड़-कड़ झपाक! और एक पेड सो गया। देखा जाये इस

खंडप्रलय के बाद कौन रहता है, कौन जाता है !—मगर इतनी बिजली की गड़गड़ाहट—एक बूंद भी बरसा क्यों होती नहीं ?

सोमनाथ तूफान की हांय-फांय गरज में थोड़ा सहम गया। अचानक उसे लगा कि वह अकेला है, उसके पास कोई नहीं। उसे तमतमाहट लगी। वह उस अंधेरे में चारों ओर डरते-डरते देख रहा था। बहुत सारे शब्द झोला खाकर शून्य में उड़ जाते। उसे लगता वे सब उस घाटमंगला की तरह कुछेक भूखे देवता हैं। उन्हें भेड़-बकरी, मुर्गे, कबूतर काटकर खून चढ़ाकर संतुष्ट करना होगा। सोमनाथ का अंतर तक सिहर उठा। उसके तलुवे से नाड़ी सिकुड़ती-सी लगी। बार-बार वह थूक निगलकर मुड़-मुड़ कर देखता जा रहा है।—रह-रहकर छप-छप कुछेक सहमे कदम उस बतास में बिछते लग रहे थे। किसी क्षण ओट से धांय से कोई चढ़ आयेगा, झपट पड़ेगा हिंस्र, लोमश, खूब वजनदार, पैना कुछ भी तो !

"हे। बे गंवार, भोंदू है क्या ? इस तरह डरोगे तो क्या मेडिकल में खाक पढ़ोगे ? वहां तो इस वर्ष मुर्दे काटने शुरू हो गये होंगे। डरोगे तो बाबा आदम के जमाने के अंधे कहे जाओगे। बिना डरे किसी से भी आगे बढ़ते जाना ही आधुनिकता है। परवाह नहीं। स्साला दबाता रौंदता जो आगे बढ़ जाये, कोई टिक नहीं सकेगा। ऐसे ही जयंत परिड़ा इतना बड़ा आदमी बन गया। वह मनचाहा सब कुछ कर डालता है। मगर उसका तो मुकाबला करना पड़ेगा। चोटी पकड़कर घसीटकर उसे खत्म करना पड़ेगा। उसी के लिए तो हमारा घर-परिवार छिन्न-भिन्न हो गया।—उसे ये कोई नहीं कर सकेंगे…मगर मैं उसे सीधा कर दूंगा। मेरे बाइसेप खींच लेने पर कोई मुझे रोक सकेगा ? ठहर जा, यह समस्या जरा ठिकाने पर आने दे, तुझे भी देख लेता हूं।…स्साला बास्टर्ड, गुंडई दिखाता है। भैया को डरा-धमकाकर सब करवा लिया तो क्या वह सब जगह चल जायेगा ? चढ़ बैठेंगे मेडिकल के सारे लड़के। चुन-चुनकर पंद्रह ले आया तो सब ठीक हो जायेगा। उस दिन एक डी० आई० जी० की हगनी-मुतनी बंद कर दी, फिर यह स्साला कौन-सी चिड़िया है ? मेरा भाई उससे नहीं जीत सका, मैं देख लूंगा। वह मेरा भाई है—जो हो आखिर मेरा भाई तो है !!"

उसी तरह छप-छप आवाज। रुक-रुककर लय-ताल। सुरीली बच्चे के गुरुगंभीर संगीत में यह कैसी भी तो बेसुरी-बेताल धमक।···दो गाड़ियाँ साथ-साथ करती ढालू की ओर मुड़कर खड़ी हो गयीं।

"सोमनाथ मंगराज है अच्छा लड़का···वह अवश्य इंग्लैंड में चैम्पियन होनेवाला है।···तू कुछ भी कह, मनोज, तू इस मंगराज की मदद कर रहा है।"···सोमनाथ जमींदार का बच्चा—वह नौकरी की परवाह करता है? वह लाख रुपये लगाकर इस मेडिकल के सामने मकान खड़ा करेगा, क्लिनिक खोलेगा···वह विलायत जायेगा···रिसर्च करेगा···अपनी कॉलेज कार लायेगा··· दुनिया का नामी डॉक्टर बनेगा···इस-इस···अनाथ के ठूँठ-ठूँठ तैर जाते जटा पर बेशुमार सपने।

"और जयंत परिडा?—ज्यादा बातें!— वो बड़ा भाग्य है···उसका पता भी नहीं रहेगा तब तक। देखा जाय। अब दूसे और जाना होगा। डॉक्टर मिलने की कोई संभावना नहीं। उसकी गाल में कोई गड्ढा नहीं होगा। लौट आये। आकर गल्ती कर बैठा। इधर भी हालत निहायत खतरनाक है।"···फिर सबकुछ बिखर गया। अनेक निरीह कट्टगताओं के कोमल कवच इस अँधेरे में लुक-छिपकर विचरण कर रहे थे।

उनमें से एक बिलकुल पास में चिल्ला उठा। चौंक उठा सोमनाथ मंगराज।···अनेक धप छिटपुट बिखर गये इस अँधेरे में। पास ऊर्ध्व-वाला हाथ झपट्टा मारकर मोड़, पत्थर मानो पत्थर पर टकरा गया था कौन सा सिर!!

गया और फिर धम से पटक दिया वह कटा मुंड।

बतास का स्वर बदल गया। शायद वर्षा चढ़ आयी है। आंखों पर घिर आया धुआं हटाकर देखने लगा हांव-हांव करती रोशनी—दो गाड़ियां सांय-सांय गुर्राती नीचे की ओर मुंह कर खड़ी हो गयीं।

कोई भयंकर आदमी घाटमंगला की ओर मुंह कर पैर फैलाये खड़ा हो गया।—विश्वंभर का मंजर मानो झनझनाकर गिर पड़ा।—यही तो जयंत परिड़ा है! इधर मुंह कर चर-चर पेशाब कर रहा है!!···गाड़ी में बैठा सिगरेट के कश खींच रहा है, उधर मूलचंद सोंधी।

रुंध आयी विश्वंभर की सांस। कोई चीख उसकी हजार नाड़ियों के अंधकार में रास्ता न पाकर डुबकी खा मसककर सो गयी। विश्वंभर कुछ तो भी घसीट लाया। मोटर के बिखरे प्रकाश के आगे।···आईने में मुंह लगाकर खुद को वह पहचान नहीं पा रहा—सोमनाथ बिलकुल उसी की तरह तो है।—उसकी जीभ निकल आयी है। बलि के बकरे की तरह उसके कोयों पर पलक नहीं। उसके काटे सिर को वह उठा नहीं पा रहा।

धांय-धांय दो शराबी, ताकतवर उस तूफान की परवाह किये बिना उतर आये। विश्वंभर की तरेरती आंखों से छपाक से प्रकाश बुझ गया···

एक ही स्वर में शायद कई रातों तक वह धूलभरा अंधड़ बहता रहा होगा। वह गया होगा आदमी के गाढ़े खून का चिकना काला सांप घाट-मंगला के गर्भगृह की ओर।

बत्तीस

इतना बड़ा मेघ, इतनी हवा, इतनी बिजली फिर भी बूंद भर पानी इस तपते पहाड़ पर बरसा नहीं। सारे जंगल में बूंद-बूंदकर लसा झरता जा रहा है, ढेर के ढेर डालों-पत्तों के श्मशान में। किसी की और फुनगी नहीं। सारे मयान (चूड़ा) झड़ पड़े हैं। तूफान का प्रागैतिहासिक हाथियों का

झुड रौंद गया है, अंधाधुंध।···चारों ओर केवल निरीह वनस्पतियों का क्रन्दन है, धूल ही धूल है।

आकाश पर चारों ओर उभरे-उभरे निर्जल मेघों के मुखौटे। बेशुमार हड़कंप के थिर होने के बाद तेज ज्वर मानो उस पर चढ़ गया है। वह क्लांत है, निश्चेष्ट, एकदम परास्त है।·· खुल पड़ी बहुत-सी जटा के पीछे से बहुत देर हुई शायद चांद उग आया है। घानी के बैल के चेहरे की तरह क्षीण, निष्प्राण, टुकड़ा भर चांद। उसे एक घेरा घूम जाना पड़ेगा। इस्पात के कारखाने में तांबई गरम भाप पर एक बार सांस रोककर तैर जाना ही होगा।

जयराम को खूब प्यास लगी है। तूफान-अंधड़ में उस पत्थर की खोह ने खूब अच्छी तरह भुजा-पसार उन्हें ढंककर पेट के नीचे सहेजकर रखा। मगर अब उनमें असहनीय प्यास, बहुत सारी ऊष्मा। बाहर प्यासे पहाड़ की सूखी जीभ पसर आयी है— घाट के रास्ते पर सांप-सी ढलान पर। इस सिरे पर वह समूची पहाड़ी चुपचाप हांफ रही है। मैली-सी चांद की रोशनी में भोर की मरीचिका। जयराम के चलने के ढंग में कोई उद्वेग नहीं, समकते किसी संकल्प का जोश नहीं। ऊपर चढ़ने की तरह वे भी उतर जाते।···यह जरा-सा आदमी शायद पिरामिड से भी पुराना है, जो हर कदम पर अनगिनत शताब्दियां पार कर आया।—पार हो आया अनेक अपरिचित कंकालों के स्तूप, बार-बार के क्रूसेड, जिहाद, धर्मयुद्ध की असंख्य दीवारें।···

—जंगली रास्ता।··बाघ-भालू का वन। हिंस्र जंतु होंगे। एक क्यों, अनेक··

—हां। होने दो। वे कहां नहीं हैं। जयराम खुद दो पैर पर चलते हैं तो क्या जंतु नहीं हैं?

—उनमें से एक शायद भूखा है, फिराक में है। मौका तलाश कर झपटेगा और दबोच लेगा।

हे···हे! ··यह भी कोई नयी बात है! सारे जंतु ही तो वैसे होते हैं। भूख-प्यास मिटाते समय झपट्टा तो मारना ही होता है। बल्कि उसे रोकना अस्वाभाविक है।

कड़मड़ चबाकर खा जायेगा। गेरुवा पगड़ी को एक ओर कर देगा शायद—मगर चबाकर जरूर खा जायेगा।

—इसमें भी कोई संदेह है? जयराम के तो वैसे मजबूत दांत नहीं, नाखून भी वैसे पैने नहीं। ऐसे-वैसे अनेक खरगोश, अनेक हिरन चबाकर खा जाता है। वे भी तो दूब कहीं, घास कहीं खाकर झुंड बढ़ा रहे हैं ताकि वह निर्विरोध खा सके। उसे भूख होती है। वह पांच मुंह पसारकर दहाड़ता है। उसकी भूख मिटाना, उसे पाल-पोसकर भयंकर बनाये रखना इन हिरनों और खरगोशों की जिम्मेदारी है।···इतनी बड़ी जीभ में ढेर सारे रक्त का कतरा, आंखों में आग की लपट, पत्थर की मांसपेशियों में खूब ताकत। पत्थर की गुफा में वह पशुओं का राजा है, पशुओं का देवता है!

—हूं। हूं। सर्वशक्तिमानों को भूख लगने पर वे अवश्य ही चबायेंगे। इसमें जयराम को आपत्ति करने के लिए क्या है?—यह तो मौलिक जीवन का धर्म है। वह तो धर्मावतार है, चूंकि वह सर्वशक्तिमान है!!
—रास्ते में बरस सकता है। सारे आकाश में अब भी झुंड के झुंड मेघ पैंतरा मार रहे हैं।

—अरे! हैं! हैं! इन मेघों में पानी है क्या जो बरसेगा? इन मेघों के पेट में खूब भरपेट सूखी धूल है धूल। बरसनेवाले मेघ तो खूब नीचे झुक आया करते हैं। हां, आते हैं। वे अपने मतलब से झुक आते हैं। मगर यहां पर तो डेढ़ लाख जंतु धूप में जल जाने पर भी इनके विचलित होने की कोई बात नहीं। मगर जब आते हैं तब उनके न आने पर कोई उपाय नहीं। उससे औरभी प्रबल हवा शायद उन्हें घेर कर ले आयेगी और पहाड़ की देह में पछाड़ देगी, निचोड़ देगी उसका कस।

प्रबल के आगे झुकना ही पड़ता है। इससे पहले युद्ध करना न करना एक प्रकार की रुचि है। क्षमा, दया, उदारता वगैरह शक्तिशाली तो सामयिक ख्याल हैं। सम्मान, संभ्रम, विनय,विचार बिलकुल परास्त और कमजोर के सहारे हैं। स्वार्थ ही एकमात्र सत्य है। चींटी से हाथी तक। परमार्थ उसकी अपनी कल्पना का छाया बिंब है। खुद को आप हत्या करने में आदमी को एक तरह का सुख मिलता है। उसी तरह सुख मिलता है स्वयं

को विडंबित करने में, अनेक स्वर्ग और ईश्वर की बालू में सिर छिपा लेने में। पराम्त गोष्ठी अपनी हत्या आप कर विजय का स्वाद चखती है, स्वय को दांतों [redacted] काटकर कच्चा खून चूमती है। मगर विजेता गोष्ठी दूसरों को इसी विडंबना में डुबोने में मजा पाती है। नदी की धार में एक-एक कर शिशु फेंक उनका जीने का अंतिम प्रयास होता है जिसे देखकर वह प्रसन्न हो जाता है, अथवा शहर में आग लगाकर बेहला जाता है।···ईश्वर इसी *विजेता गोष्ठी का अधिनायक है।*

ईश्वर का अपमान करना भी कोई खतरे से खाली नहीं है।

सो कैसे होता ? मारवाड़ी मालिक के नाम पर दो बात सच कहने से तो छुटकारा नहीं, यह तो कालसर्प है—जिसे डरते-मरते बुद्धिमान लोग करुणासिंधु कहते रहे हैं। तुम्हारा ईश्वर नाम का पदार्थ शुरू से ही नहीं है, क्योंकि जीवन की अजीब सुरंग के दोनों ओर खुला है, उसके इस तरफ और उस तरफ खाली शून्य है। बीच में एक अंतहीन संग्राम है। वहां हर क्षण लड़ना, और अपनी यथाशक्ति खुद को जिंदा रखना ही आखिरी जिम्मेदारी है। वह भी कभी-कभी अधिकार की तरह दिखता है, पंजे के आगे नाखून चमकते रहने तक। वरना इस कुंठित संसार से जीने के उपादान जुटा लेना भयंकर दायित्व है।—उस पर धर्म, समाज, जाति, सभ्यता और वैसे ही और डेढ़ लाख बहानों से असंख्य दायित्व मढ़ दिये जाते हैं।

··जंतु जी जाता है, आदमी का जीना मगर बहुत कठिन है।

···ऊपर तो फिर कोई देखने वाला है।

··हैं ! हे ! यह ऊपर-नीचे की रेखागणित और कितने दिन चलेगी। नीचे या ऊपर कहीं है। यही एक क्षण मात्र सत्य है, बाकी सब निरर्थक व्यायाम है, फालतू का परिश्रम है। ये तारे खाली जलते अग्निपिंड हैं—जल रहे हैं, घूम रहे हैं और झर जाते हैं ठंडी राख के ढेर बनकर। इन सबको कोई दुर्दांत ताकतवर है जो चबाकर खा जाता है।···एक प्रकांड रक्ताभा कृष्ण जीभ पर खिंचती जाती है सारे विश्व की चिरंतन रक्त धार। इसे हिंस्र कहने का किसी में साहस नहीं। वरन इसकी अकूत विशालता से विह्वल होकर उसे मंगलमय कहकर संबोधन किया जाता है।··· उसमें आलोक नहीं, वह कोई अत्यंत आदिम एक कृष्णबिंदु है।··· निहा-

कड़मड़ चबाकर खा जायेगा। गेरुवा पगड़ी को एक ओर कर देगा शायद—मगर चबाकर जरूर खा जायेगा।

—इसमें भी कोई संदेह है? जयराम के तो वैसे मजबूत दांत नहीं, नाखून भी वैसे पैने नहीं। ऐसे-वैसे अनेक खरगोश, अनेक हिरन चबाकर खा जाता है। वे भी तो दूब कहीं, घास कहीं खाकर झुंड बढ़ा रहे हैं ताकि वह निर्विरोध खा सके। उसे भूख होती है। वह पांच मुंह पसारकर दहाड़ता है। उसकी भूख मिटाना, उसे पाल-पोसकर भयंकर बनाये रखना इन हिरनों और खरगोशों की जिम्मेदारी है।...इतनी बड़ी जीभ में ढेर सारे रक्त का कतरा, आंखों में आग की लपट, पत्थर की मांसपेशियों में खूब ताकत। पत्थर की गुफा में वह पशुओं का राजा है, पशुओं का देवता है!

—हूं। हूं। सर्वशक्तिमानों को भूख लगने पर वे अवश्य ही चबायेंगे। इसमें जयराम को आपत्ति करने के लिए क्या है?—यह तो मौलिक जीवन का धर्म है। वह तो धर्मावतार है, चूंकि वह सर्वशक्तिमान है!!

—रास्ते में बरस सकता है। सारे आकाश में अब भी झुंड के झुंड मेघ पैंतरा मार रहे हैं।

—अरे! हूं! हूं! इन मेघों में पानी है क्या जो बरसेगा? इन मेघों के पेट में खूब भरपेट सूखी धूल है धूल। बरसनेवाले मेघ तो खूब नीचे झुक आया करते हैं। हां, आते हैं। वे अपने मतलब से झुक आते हैं। मगर यहां पर तो डेढ़ लाख जंतु धूप में जल जाने पर भी इनके विचलित होने की कोई बात नहीं। मगर जब आते हैं तब उनके न आने पर कोई उपाय नहीं। उससे और भी प्रबल हवा शायद उन्हें घेर कर ले आयेगी और पहाड़ की देह में पछाड़ देगी, निचोड़ देगी उसका कस।

प्रबल के आगे झुकना ही पड़ता है। इससे पहले युद्ध करना न करना एक प्रकार की रुचि है। क्षमा, दया, उदारता वगैरह शक्तिशाली तो सामयिक ख्याल हैं। सम्मान, संभ्रम, विनय, विचार बिलकुल परास्त और कमजोर के सहारे हैं। स्वार्थ ही एकमात्र सत्य है। चींटी से हाथी तक। परमार्थ उसकी अपनी कल्पना का छाया बिंब है। खुद को आप हत्या करने में आदमी को एक तरह का सुख मिलता है। उसी तरह सुख मिलता है स्वयं

सहज है!

जयराम चले जा रहे हैं। अपराजेय, जरा-सा यह आदमी इन सबके बावजूद चलता रहेगा। अनेक हिरन, खरगोश, भेड़-बकरियों के साथ वह भी शायद घास-पात की तरह जिंदा रहेगा—सृष्टि के शेष तक।

अनेक सफेद वृक उनके काले-काले कोटरों से अपलक देख रहे हैं। आदिम जिघांसा के ऊदबिलाव हैं वे सब। मौलिक क्षुधा के बहुत सारे शून्य गर्त हैं।

मेघाच्छन्न आकाश एक नीरव निस्पंद वधभूमि।

सारा जंगल एक रोयेंदार निश्चल असहायता।

अब और दो मोड़ ऊपर चढ़ जाने पर बाटमगल्ला पहुँच जायेंगे। मगर इतनी भूख, इतनी हिम्मत में एक के लिए भी वक्त कहाँ?

जयराम की वह आदिम प्यास मिटनेवाली नहीं।

लेकिन उनकी वह अजीब हँसी भी मिटनेवाली नहीं।

"*हे पिता! क्षमा करो इन चतुष्पद जीवों को। वे खूब अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कुछ कर रहे हैं!*"

तैंतीस

कचहरी के पास बरगद के नीचे फिर जनता एक बार इकट्ठी हुई है। चनाचूर वाले बेचैनी से चक्कर काट रहे हैं। मौका देखकर आवाज़ लगायेंगे।

"क्या हुआ?"

"कहाँ?"

"कौन?"

"जयराम कौन थे?"

"क्या वे यहीं के आदमी थे?"

यत अगर उसी ईश्वर की संज्ञा निरूपित की जाये तो वह होगी एक अति वृहद श्वेत वृत्त जिसका केंद्र घन तमिस्रा का कृष्णगर्त्त है।

··उफ, इस अकृतज्ञ मानव समाज को क्षमा करो, हे पिता—इस नमकहरामी को क्षमा करो। ये अज्ञ नहीं जानते क्या कह रहे हैं, क्या कुछ कर रहे हैं! ··इन खलकामी जनों को क्षमा करो। क्षमा करो इन निरीश्वरवादियों को!!

—हि, हि, हे, हे!!

खुरदरा आदमी पहाड़ पर चढ़ने के बीच हंस पड़ा। जयराम हंस पड़े। उन्हें सुनाई पड़ा जैसे कोई और हंसा है···इन पत्थरों में से ··शायद उस अंधेरे जंगल में से कोई, इस सांप-संपीले रास्ते या उन तांबई मेघों से कोई हंसी की प्रतिध्वनि खस-खस करती पहाड़ के किनारे-किनारे उनके साथ सहयात्री की तरह चल रही है, सूखे पत्तों पर खूब दबे-पांव चल रही है।

इन मेघों में जैसे पानी नहीं, इस रात में भी वैसे ही भोर की संभावना नहीं। सूरज की तो किस जमाने में मृत्यु हो चुकी है।···तो यही अंतिम बात है? यही सत्य है? यह नीरवता, यह कबर, यह अंधकार?

···सत्य? वाह, उस कुत्ते के पिल्ले को दो घूंट चाय पिला दो तो साथ ही नहीं छोड़ता। तूली लेकर जैसी इच्छा उसे रंग दो, कूं-कूं करता वह हाथ-पैर चाटता रहेगा। कोई प्रतिवाद नहीं करेगा। मगर उसे सदा गोद में लिये चलना बड़ा कठिन है। दूर की यात्रा के समय निर्जन रास्ते के बटोही के लिए बाकी जो कुछ रह जाता है वह शायद यह सन्नाटा, यह अंधेरा ही है।—आत्मा उसकी थिर मृतसागर है—उस पर कोई चिड़िया इस पार से उड़कर नहीं जा सकती।

घना जंगल खूब नीरव रहकर सांस लेता है। उसी तरह नीरव रहकर जीता है। यहां जीने का अर्थ कोलाहल नहीं है।

जंगल फिर धांव-धांव कर गरज उठता है। ज्वालामुखी अचानक सूं-सूं कर आग बरसाता है। धड़ाम-धड़ाम की ध्वनि से कांप उठता है सारा जंगल।

मरना यहां जीने से भी अधिक स्वाभाविक है, और भी अधिक

सहज है !

जयराम चले जा रहे हैं। अपराजेय, जरा-सा यह आदमी इन सबके वावजूद चलता रहेगा। अनेक हिरन, खरगोश, भेड़-बकरियों के साथ यह भी शायद घास-पात की तरह जिंदा रहेगा—सृष्टि के शेष तक।

अनेक सफेद वृत्त उनके काले-काले केंद्रों से अपलक देख रहे हैं। आदिम जिघांसा के ऊदविलाव है वे सब। मौलिक क्षुधा के बहुत सारे सूने गर्त हैं।

मेघाच्छन्न आकाश एक नीरव निस्पंद वधभूमि।

सारा जंगल एक रोयेंदार निश्चल असहायता।

अब और दो मोड़ ऊपर चढ़ जाने पर पाटमगला पहुंच जायेंगे। मगर इतनी भूख, इतनी हिंस्रता में एक के लिए भी वक्त कहां ?

जयराम की वह अहिंस्र प्यास मिटनेवाली नहीं।

लेकिन उनकी यह अजीब हंसी भी मिटनेवाली नहीं।

···हे पिता ! क्षमा करो इन चतुष्पद जीवों को। वे खूब अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कुछ कर रहे हैं ! !

तेंतीस

कचहरी के पास बरगद के नीचे फिर जनता एक बार इकट्ठी हुई है। चनाचूर वाले बेचैनी से चक्कर काट रहे हैं। मौका देखकर आवाज लगायेंगे।

"क्या हुआ ?"

"कहां ?"

"कौन ?"

"जयराम कौन थे ?"

"क्या वे यहीं के आदमी थे ?"

आग्रही लोगों में अपने प्रिय प्रश्न आपस में पूछे जा रहे थे।

किसी ने खड़े होकर विज्ञापन के गले से घोषणा की—"भाइयो! मैं अब परम साधक, आजन्म ब्रह्मचारी, श्रीयुक्त जयंत सुंदर परिड़ा से अनुरोध करता हूं कि वे हमें कुछ उपदेश दें।"

कुछ तालियां। फिर—

"भाइयो, मैं उपदेश देने नहीं आया। यहां कुछ सीखने, उपदेश लेने आया हूं। आप लोग ही बतायें कि आप अपने परमप्रिय महापुरुष की स्मृति बनाये रखना चाहेंगे या नहीं?—महात्मा जयरामजी की साधना आपके कल्याण के लिए, सारी मानव जाति के लिए है। उन्होंने जो नया मार्ग हमें दिखाया है, वह कभी कोई नहीं जानता था। 'नीरव रहो', 'भूख प्यास से विचलित न होना' 'दरिद्रता ही साधना की पहली सीढ़ी है, उसे ग्रहण करो।' ये सब उनकी महान वाणी है।···मैं आप लोगों को जो कुछ दिखाऊंगा, आप उस पर विश्वास नहीं कर पायेंगे।"

एक ट्रे के ऊपर से कपड़ा हटाकर उसे ऊंचा उठा दिया गया। अचानक पता चला एक कटा सिर है। मगर सबने देखा वह तो एक गेरुवा पगड़ी है।

"आप लोगों को शायद विश्वास नहीं होगा—यह महात्माजी की सिद्धि-पगड़ी है। अपने भक्तों पर अनुग्रह कर वे यही हस्ताक्षर छोड़ गये हैं। यह हमारे लिए परम सौभाग्य की बात है। अब आप लोग यथा-शक्ति महात्मा 'जयराम स्मृति मंदिर' के लिए दान करें।"

ऊपर की ओर मुंह किये वह खाली पगड़ी आकाश से भीख मांग रही थी। रास्ते के किनारे जादूगर की टोपी में जो जनता चवन्नी फेंक देती है उसने कुछ दुपैसियां-तीनपैसियां फेंकी। जयंत परिड़ा ने पगड़ी को छिटकाकर कहा—"यह अब नीलाम होगी। किसके भाग्य में है जो महात्मा की सिद्धि-पगड़ी अपने घर रखकर पूजा करेगा। बोली लगायें ···'दो सौ'··· 'कुल दो सौ' ···'चार सौ'····'हां बोलिए कुल चार सौ'····'हजार'··· शाबाश हम जानते हैं भक्त कभी छोड़नेवाले नहीं हैं···हजार···हजार··· हजार एक···दो ··हां कुंठा क्यों? ये रुपये आपके घर में पेड़ बनकर फलेंगे-फूलेंगे। आप इससे प्रत्यक्ष कृपा प्राप्त करेंगे, हजार दो···हजार दो

···एक हजार पांच सौ···"

सभा के अंत में कुछ झोलियां एक-दूसरे के पास सरक आयीं।··· "चलो ना।···यह तो भांड है।···ठगी चल रही है। नीचे बाजार में उधर कद्दू की बैलगाड़ी लग चुकी है।"···

खुस-खास कर अनदेखी करते हुए-से एक-एक कर लोग खिसकने लगे। जनता की पतली पूछ धीरे-धीरे लंबी होती गयी निचले बाजार में खड़ी कद्दू की गाड़ी तक।

"किलो आठ आना!···सिर्फ पचास पैसे किलो! ··पेठा···मीठा ···इतना सस्ता कभी न था।···ले लो···पेठा···!"

चौंतीस

ठोंगा व्यापारी दामा साहू गमछा झाड़कर उठ खड़ा हुआ। आगे मुटिया किताबों का बोरा उठाकर चल पड़ा।

"अच्छा कालू, इस घर में बुहारी देकर किवाड़ उढ़का देना। मैं घर के मालिक को बुला देता हूं, दे देंगे।"

विद्याधर राय की आंखों में, बेताल उस हवा में और कुछ बहुत सारा अनबूझ उफन रहा है।

उनके खद्दर के कमीज के नीचे गंजी नहीं। गले में बोताम नहीं। चेहरे पर बहुत सारे सफेद बाल। चश्मे के दोनों कांच छलछलाये-से।···

वे मुड़कर चले गये।

कालू सोच रहा था कि वह जुलूसवाला बुड्ढा आजकल और झोला क्यों नहीं उठाता? वह उन आठ-दस वर्ष के अनेक नरम दिनों पर बुहारी फेरता साफ कर रहा था। उसका अंदर में समूचे सरोता जा रहा था।

उसने सुना, बापू पूछ रहे हैं—"क्यों रे, तेरी भात की पारी कब है?"

वह वुहारी फेंककर उठाता है वह काली अलमूनियम की डेगची।
उसमें मुंह डालकर कुछ देखता है—उसमें कहीं छेद तो नहीं हो गये ?
अरे, ऐसे यह मुंह ढांपकर यों रो रहा है !
घर में वहुत सारी धूल, अंधकार और सन्नाटा !
वाहर वही आदिम सत्य, वही आदिम क्षुधा—किसी को फुरसत
ीं जीने की या मरने की—उफ।